

सुश्रुत-शल्य-मालिका प्रथम पुष्प

M1363

# शल्यतंत्र में रोगी परीक्षा

( *Clinical Methods in Surgery* )



लेखक—

डॉ० प्रभाकर जनार्दन देशपांडे

A. M. S., Z. A. & Th. S.; C. S. R. ( Vienna )

Lecturer in Surgery, Ay. College, B. H. U.

सर्जन तथा इमर्जन्सी मेडिकल ऑफिसर, सर सुंदरलाल चिकित्सालय,  
का० वि० वि०



प्रकाशक—

विजय कुमार गुण्ड ब्रदर्स

R. M. O's Quarter,

S. S. Hospital, B. H. U.

प्रथमवार ]

सन् १९५५

[ मूल्य ७ रु०

प्रकाशक—

विजय कुमार एण्ड ब्रदर्स  
R. M. O's Quarter,  
S. S. Hospital, B. H. U.

LB:4:7

N55

549

( सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा सुरक्षित )

KLE UNIVERSITY  
BMKAM LIBRARY



00549

LB:4:7 N55

प्राप्तिस्थान

चौखम्भा विद्या भवन,  
चौक, बनारस ।

मुद्रक—

वासुदेव कृष्ण पावगी,  
अशोक प्रेस,  
टाउनहाल, बनारस ।



पूज्य पिताजी के

करकमलो में

सादर समर्पित

— प्रभाकर



## भूमिका

श्री विश्वनाथजी की असीम कृपा से पाठकों के सामने मैं यह अपना प्रथम प्रयास प्रस्तुत कर रहा हूँ। शल्य-विज्ञान में मैं यह विषय पिछले ६ वर्षों से पढ़ाता आया हूँ और पढ़ाते समय विद्यार्थियों की दृष्टि से सामने आई हुई कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए मैंने क्लिनिकल सर्जरी पर पुस्तक लिखने का प्रयास किया है।

शल्य-तंत्र एक गहन विषय है और क्लिनिकल सर्जरी, या रोगी-परीक्षा उस सम्पूर्ण शास्त्र की नींव है। सर्वसाधारण चिकित्सक को भी इसका ज्ञान नितांत आवश्यक है। विशेषतः शल्यशास्त्र के पुस्तक को लिखने में परिभाषिक शब्दों के न होने से अतिशय कठिनाई का सामना करना पड़ता है। मैंने इस पुस्तक में जहाँ तक संभव है, सुश्रुत के शब्दों का ही चयन किया है। सुश्रुत संहिता में वर्तमान शल्य-शास्त्र में वर्णित अधिकांश रोगों का वर्णन आया है और सुश्रुत के शब्द अत्यंत सरल तथा स्ववर्णित ( Self Explanatory ) हैं और मुझे आशा है कि पाठक तथा चिकित्सक इन्हें आनाने का प्रयत्न करेंगे।

पुस्तक को लिखने में मुझे पं० रमानाथ द्विवेदीजी से स्फूर्ति मिली तथा पुस्तक का वर्तमान रूप भी उन्हीं के अथक परिश्रम का फल है। स्थान २ पर दिये हुए आयुर्वेदोक्त उद्धरण भी उन्हीं के परिश्रम से मैं संकलित कर पाया हूँ। हिन्दी भाषा-प्रवाह में भी उनसे मुझे जो सहायता प्राप्त हुई है उसके लिए मैं द्विवेदीजी का कृतज्ञ हूँ। द्विवेदीजी ने अपना अमूल्य समय देकर मेरी सहायता की है। इसीलिये मैं इस कठिन कार्य को पूरा करने में समर्थ हुआ हूँ। कुछ अनपेक्षित कारणों से पुस्तक प्रकाशन में विलम्ब हुआ है परन्तु मुझे आशा है कि पाठक-गण मुझे क्षमा करेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक शल्य-तंत्र की कई पुस्तकों का, मेरे अनुभवों का तथा प्रमाणित संस्थाओं के शल्य-परिक्षा के व्याख्यानों का एक प्रतिरूप है। इसलिए मैं उन लेखकों का तथा मेरे इस विषय के गुरुजनों का अत्यन्त आभारी हूँ। समय की कमी तथा चित्रों की कमी के कारण मैंने इस पुस्तक में इच्छा होते हुए भी चित्रों को नहीं दिया है। शल्यतंत्र के मुख्य-मुख्य अध्यायों का ही विचार मैंने

इस पुस्तक में किया है, कुछ विषय अनावश्यक समझकर छोड़ दिये हैं। प्रत्येक अध्याय में उसका आधार प्रथम दिया है जिससे शल्यतंत्र के प्रारंभी विद्यार्थी तथा शल्य-ग्रह के परिचारक वर्ग परीक्षा-सिद्धांत को सुलभता से समझ सकें। समय की कमी तथा पुस्तक लिखने का प्रथम प्रयास प्रभृति बातों को ध्यान में रखते हुए पाठकगण पुस्तक की त्रुटियों को उदार मन से देखेंगे यह विश्वास है, तथा जो त्रुटियों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करेंगे उनका भी मैं आभारी हूँगा।

पुस्तक को वर्तमान रूप में प्रस्तुत करने में मुझे जिनसे सहायता मिली है वे सब लोग धन्यवाद के पात्र हैं जिनमें विशेषतः डा० वर्मा, पं० शिवदत्त शुक्ल, डॉ० पटवर्धन, डॉ० खन्ना तथा मेरे वर्तमान हाउस सर्जन डॉ० गोरखनाथ चतुर्वेदी और डा० सुरेन्द्रनाथ त्रिपाठी उल्लेखनीय हैं।

सुश्रुत-शल्य-मालिका का यह प्रथम पुष्प है। इसके पश्चात् शल्यतंत्र में सापेक्ष निदान पर पुस्तक लिखने का मेरा विचार है। मुझे आशा है कि वह पुस्तक लिखने में भी मुझे पाठकों से उत्साह मिलेगा।

पुस्तक को सुचारु रूप से मुद्रित करने में अशोक प्रेस के व्यवस्थापक श्री जनार्दन वासुदेव पावगीजी ने जो परिश्रम किये हैं उसके लिए मैं उनका भी आभारी हूँ।

काशी  
गणेश चतुर्थी २०१२ वि० स० }

प्रभाकर जनार्दन देशपांडे

## प्राक्थन

शल्य-चिकित्सा अति प्राचीन है। यह आदिकाल से आयुर्वेद का प्रधान अंग रहा है। इसकी शिक्षा प्रत्येक आयुर्वेद के विद्यार्थी के लिये अनिवार्य थी। प्रत्येक वैद्य को शल्य-विद्या में भी दीक्षित किया जाता था। इसकी विशेष शिक्षा प्राप्त करके वैद्य शल्यकोविद् बनते थे और इस विषय के कोविद् कहलाते थे। उस समय में जब प्रायः युद्ध हुआ करते थे इन शल्य-विशेषज्ञों का विशेष उपयोग होता था। आजकल की भाँति प्रत्येक सेना के साथ ये अपने उपकरणों से सुसज्जित रणभूमि में जाते थे और वहाँ आहतों को सुश्रूषा करते थे। आवश्यक होने पर उनको शल्य-कर्म भी करने पड़ते थे। महाभारत में कितने ही स्थानों पर इसका वर्णन मिलता है। अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी ऐसे कितने ही उदाहरण मिलते हैं। इसके कितने ही प्रकार उदाहरण मिलते हैं और अब सभी विद्वान् इस बात पर सहमत हैं कि शल्य-विशेषज्ञों का एक सम्प्रदाय ही पृथक् था जिसके प्रवर्तक स्वयं धन्वन्तरि थे।

आधुनिक समय में इस शास्त्र ने असीम उन्नति की। संसार के दो महायुद्ध इस विद्या के उत्कर्ष का विशेष कारण हुए हैं। युद्ध के समय में शल्य-क्रिया का विशेष उपयोग होता है। अंग-भंगों की संख्या में उस समय अति वृद्धि हो जाती है। उनके जीवन की रक्षा का प्रश्न उपस्थित हो जाता है। उस समय अन्वेषण-कर्म भी बढ़ जाता है। भिन्न-भिन्न प्रश्न जो युद्ध में उपस्थित होते हैं उन पर सारे देश के अन्वेषणकर्त्ता जुट जाते हैं। उन सबों के सामूहिक परिश्रम का यह फल होता है कि शल्य-कर्मों की नई-नई विधियाँ निकल आती हैं। रक्त-प्रवाह से जीवन-रक्षा के उपाय मालूम होते हैं तथा जीवन-नाश का सबसे बड़ा कारण जो संक्रमण (infection) होता है और जिसके भयंकर रूप से फैलने के लिये युद्ध में सब दशायें अनुकूल होती हैं, उनको नष्ट करने के नये-नये सफल उपाय उपलब्ध हो जाते हैं।

दैनिक चिकित्सा में भी शल्य का उपयोग बहुत महत्वशाली है। शल्य रोगों से पीड़ित रोगियों की संख्या भी बहुत होती है। प्रत्येक चिकित्सक को प्रतिदिन ऐसे कितने ही रोगियों को देखना पड़ता है जो शल्य रोगों से आक्रान्त होते हैं। उनका जीवन चिकित्सक के रोगी की दशा को तुरन्त पहिचानने, रोग का शीघ्र ही निदान करने और उपयुक्त चिकित्सा के शीघ्रान्तिशीघ्र उपलब्ध होने पर निर्भर करता है। चिकित्सक को इस योग्य होना चाहिये कि वह रोग को तुरन्त ही पहिचान ले और पहिचान कर रोगी की उपयुक्त चिकित्सा करे। यदि वह स्वयं न कर सके तो उसको ऐसे स्थान पर भेजे जहाँ रोगी की उपयुक्त चिकित्सा हो सके। कितनी ही दशाओं में तुरन्त शल्य-कर्म आवश्यक

हाता है, उसके बिना रोगी का जीवन नहीं बच सकता। ये शल्य-कर्म केवल बड़े अस्पतालों में ही हो सकते हैं और उनको करने के लिये भी विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। प्रत्येक चिकित्सक ये कर्म नहीं कर सकता न उसके पास कर्म को करने के साधन और उपकरण ही होते हैं। किन्तु प्रत्येक चिकित्सक को इस योग्य तो होना ही चाहिये कि वह रोग को पहचान ले और रोगी को उचित मार्ग-प्रदर्शन करे। डाक्टर पी० जे० देशपांडे ने प्रस्तुत पुस्तक लिखकर विद्यार्थियों और चिकित्सकों की बड़ी सेवा की है और उनका पथ-प्रदर्शन किया है। रोग का निदान उचित परीक्षा पर निर्भर करता है। रोगी की पूर्ण और उचित परीक्षा करके ही चिकित्सक रोग को पहचानता है। डाक्टर देश पांडे ने इस पुस्तक में उन सब विधियों का पूर्णतया विवेचन किया है जिनके द्वारा शल्य-रोग का निदान किया जा सकता है। डाक्टर देशपांडे ने वियेना (Vienna) जाकर विख्यात विद्वानों के अधीन रहकर, जिनमें प्रोफेसर डेन्क (Professor Denk) का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है, इस विषय का बड़े परिश्रम से अध्ययन किया है और कई वर्षों से वे शल्य चिकित्सा के बड़े-बड़े कर्म कर रहे हैं तथा विद्यार्थियों की शिक्षा का काम कर रहे हैं। अतएव उन्होंने अपने अध्ययन और अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान के फलस्वरूप इस पुस्तक को लिखा है। प्रत्येक विषय का उन्होंने पूर्ण विचार किया है तथा इस प्रकार से लिखा है कि विद्यार्थी सरलतापूर्वक विषय को ग्रहण कर सकें।

शल्य-परीक्षा तथा कर्मों की विधियों को समझने तथा उनमें दक्ष होने के लिये दो बातों की आवश्यकता है, एक शरीर की रचना का पूर्ण ज्ञान और दूसरे अभ्यास। कौन परीक्षा किस प्रकार और क्यों की जाती है, उसकी भिन्न क्रियाओं द्वारा क्या ज्ञान प्राप्त होना चाहिये, यह सब उस अंग की रचना (Anatomy) के पूर्ण ज्ञान के बिना न समझा जा सकता है न परीक्षा का निष्कर्ष ही निकाला जा सकता है। दूसरे, परीक्षा में दक्ष होना सदा अभ्यास पर निर्भर करता है। जितना अभ्यास किया जायगा, जितने अधिक रोगियों की परीक्षा की जायगी उतनी ही कर्म में दक्षता प्राप्त होगी। इसके ही द्वारा अनुभव प्राप्त होगा। शल्य विषय क्रियात्मक है। इसका ज्ञान और शल्य-क्रिया में दक्षता अभ्यास से प्राप्त हो सकते हैं। यह केवल पुस्तकमात्र का विषय नहीं है।

मुझे आशा है कि विद्यार्थी तथा चिकित्सक इस पुस्तक से पूरा लाभ उठायेंगे और लेखक के परिश्रम को सफल करेंगे।

**मुकुन्द स्वरूप वर्मा**

बी० एस० सी०, एम० बी० बी० एस०

प्रिन्सिपल आ० कालेज रीडर इन सर्जरी तथा चीफ सर्जन का० वि० वि०

## विषय-सूची

सामान्य योजना—विशिखानु प्रवेश		पृष्ठ
आधार	....	१
विस्तार	....	४
प्रथम योजना—विविध अभिघात, सद्योघात एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार		
आधार	...	२१
विस्तार	....	२३
द्वितीय योजना—विविध व्रण-शोफ तथा तत्सम्बन्धी विशेष विचार		
आधार	...	३१
विस्तार	...	३२
तृतीय योजना—विविध अबुद एवं उत्सेध (उभार) एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार		
आधार	...	३६
विस्तार	...	४२
चतुर्थ योजना—विविध वंक्षण-फलकोपीय व्रण या वृद्धियाँ:		
तत्सम्बन्धी विशेष विचार		
आधार	...	५२
विस्तार	....	५४
पञ्चम योजना—आंत्रवृद्धि तथा तत्सदृश विविध विच्युतियाँ:		
तत्सम्बन्धी विशेष विचार		
आधार	...	६१
विस्तार	...	६४
षष्ठ योजना—उदरात्यय तथा तत्सम्बन्धी विशेष विचार		
आधार	....	७१
विस्तार	...	७४
परिशिष्ट	...	८६
सप्तम योजना—आंत्रपुच्छ, शोथ, तीव्र तथा जीर्ण, तत्सम्बन्धी विशेष विचार		
आधार	...	९५
विस्तार	....	९७

अष्टम योजना—गुदा के रोग व तत्सम्बन्धी विशेष विचार			
आधार	...	...	१०८
विस्तार	...	...	११०
नवम योजना—शल्यतन्त्रीय अजीर्ण एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचारः			
आमाशय पकाशय विचार			
आधार	...	...	१२१
विस्तार	...	...	१२४
दशम योजना—विविध अश्मरियाँ तथा तत्सम्बन्धी विशेष विचार			
आधार	...	...	१३३
विस्तार	...	...	१३५
एकादश योजना—मूत्र-संस्थान या मूत्र-पथ के रोग एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार			
आधार	...	...	१४२
विस्तार	...	...	१४५
द्वादश योजना—विविध स्तन-रोग या स्तनगत उत्सेध एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार			
आधार	....	....	१५८
विस्तार	....	....	१६०
त्रयोदश योजना—ग्रीवा के उत्सेध एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार			
आधार	...	...	१७१
विस्तार	...	...	१७५
परिशिष्ट	...	...	१८२
चतुर्दश योजना—जिह्वागत रोग एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार			
आधार	...	...	१८७
विस्तार	...	...	१८८
पंचदश योजना—विविध अस्थि या काण्डभग्न एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार			
आधार	....	....	१९६
विस्तार	...	...	१९८
षोडश योजना—अस्थि के रोग एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार			
आधार	...	....	२०७
विस्तार	...	....	२०९

## सामान्य योजना

### विशिखानु प्रवेश ( NOTE TAKING )

#### आधार

नाम.....	आयु.....	लिंग.....
धर्म एवं जाति.....	व्यक्तिगत व्यसन एवं सामाजिक-परिस्थिति.....	
पूरा पता.....	व्यवसाय या धंधा.....	
सम्बन्धियों का पता.....	चिकित्सक.....	
प्रवेश तिथि.....	रोगी के अपने शब्दों में उसकी व्यथा..... ।	

#### इतिवृत्त ( History )—

**वर्तमान वृत्त ( Present Illness )**—सर्व प्रथम कौन सा लक्षण उत्पन्न हुआ ; तदन्तर कौन-कौन से व्यञ्जन हुए जहाँ तक सम्भव हो तिथि के साथ व्यौरेवार ।

**पूर्ववृत्त ( Previous illness )**—तत्सदृश या अन्य असुख ।

**कुलवृत्त या पारिवारिक वृत्त ( Family History )**—तत्सदृश या अन्य रोग । उदाहरणार्थ क्षय, दीर्घायुत्व, कुलज रक्त-पित्त ( Haemophilia ) आदि ।

- विशिखा शब्द का प्रयोग आचार्य सुश्रुत ने अपनी संहिता में शल्य तन्त्र ( Surgery ) के अभ्यासियों के लिये किया है । विशिखा का शाब्दिक अर्थ होता है प्रशस्त मार्ग या राज मार्ग ; परन्तु आचार्य ने उसका व्यवहार स्वीय कर्म मार्ग के अर्थ में किया है । शल्य चिकित्सा का प्रशस्त कर्म मार्ग :

**दैहिक या शारीरिक परीक्षा ( Physical Examination )**

**सार्वदैहिक**—आकृति, सामान्य स्वास्थ्य, नेत्र, तारक, जिह्वा, ताप, नाड़ी, फुफ्फुस, मलमूत्र प्रवृत्ति, रक्तकी दशा, नाड़ी संस्थान।

**स्थानिक**—दर्शन ( Inspection ) के साथ साथ तुलना।  
स्पर्शन ( Palpation )।  
अंगुलिताडन ( Percussion )।  
श्रवण ( Auscultations )।

**विशेष परीक्षायें— ( Special Examinations )**

क्षकिरण ( X Ray )।  
वस्तिदर्शक यंत्र ( Cystoscope )।  
नेत्रदर्शक यंत्र ( Ophthalmoscope )।  
नासावीक्षण यंत्र ( Nasal speculum )।  
कर्णवीक्षण यंत्र ( Aural speculum )।  
गलान्तः दर्शक यंत्र ( Pharyngoscope )।  
स्वरान्तः दर्शक यंत्र ( Larygoscope )।  
श्वसनिकान्तः दर्शक यंत्र ( Bronchoscope )।  
अन्न नलिका दर्शक यंत्र ( Oesophagoscope )।  
आमाशय दर्शक यंत्र ( Gastroscope )।  
फुफ्फुसावृत्ति दर्शक यंत्र ( Pleuro-scope )।  
गुदा वीक्षण यंत्र ( Rectal Speculum )।  
गुदान्तः दर्शक यंत्र ( Sigmoidoscope )।

विशिखानु प्रवेश ( विशिखा में प्रवेश करने की विधि ) का विस्तृत उल्लेख एक स्वतन्त्र अध्याय के रूप ही में पाया जाता है। इस पूरे अध्याय में चिकित्सक के वेप-भूषा एवं व्यक्तित्व ( Personality ) राजानुज्ञा ( Registration or Recognition of the Physician by the state ) आतुर गृहाभिगमन ( Method of attendance of calls ) रोगी परीक्षा पद्धति ( Clinical Method or case taking ) रोग विज्ञानोपाय ( Diagnosis of a disease ) साध्यासाध्य विवेक या शुभाशुभ विनिश्चय ( Prognosis ) चिकित्सा का मार्ग निर्णय ( Line of treatment ) तथा अन्तःपुरचारी स्त्रियों के साथ के व्यवहार आदि का उपदेश ( Ethics ) का वर्णन मिलता है।

विविध अन्तःदर्शक यंत्र ( Endoscopes )।

विविध वीक्षण यंत्र ( Speculums )।

आहार या जरण कसौटी ( Test meal etc )।

**निदान ( Diagnosis )**—प्राक् शल्य कर्मीय ( Preoperative )  
सार्वदैहिक ( General )  
स्थानिक, एकदैहिक ( Local )

**साध्यासाध्यता या शुभाशुभ ( Prognosis )—**

प्राक् शल्य कर्मीय—

सार्वदैहिक

स्थानिक

**चिकित्सा ( Treatment —**

सार्वदैहिक—

स्थानिक—अप्रैधि-साध्य ( Non-operative )

शस्त्र-साध्य ( Operative )

तिथि, पूर्वकर्म ( Date & preparations )

शल्यहर्त्ता-शल्यकर्त्ता ( Surgeon )

संज्ञाहारक या संमोहक ( Anaesthetic )

शल्य कर्म का वर्णन ( Description of operation )

विकृति का वर्णन ( Descriptions of Pathological Conditions ) तथा यदि

हो तो उस अङ्ग का नाम जिसका विच्छेद किया गया हो ( Part removed if any. )

**निदान—पश्चात् कर्मीय ( Post operative )—**

फलतः विशिखानु प्रवेश शब्द से व्यापक अर्थ में चिकित्सा का मार्गोपदेश ( Laws of Professional Ethics ) कह सकते हैं, परन्तु विशिष्टार्थ में वह रोग विज्ञानोपाय ही है ( Clinical Methods )। इस अध्याय के साथ सुश्रुतोक्त विशिखानु प्रवेशनीय अध्याय का बहुत कुछ साम्य है। एतदर्थ ही “नोट टोकन” के पर्याय में विशिखा शब्द का प्रयोग हुआ है।

स्थूल वीक्षणत्मक ( Macroscopic )  
अणु वीक्षणत्मक ( Microscopic )  
वृणान्विक ( Bacteriological )

**शुभाशुभ—** पश्चात् कर्म—सार्वदैहिक  
स्थानिक

**परवर्ती वृत्त—**( Subsequent History )

ब्रण बन्ध ( Dressing )  
सीवन ( Stitching )  
ब्रण का रोपण ( Healing )  
परिणाम ( Result )—  
(१) तात्कालिक ( Immediate )  
(२) दूर कालिक ( Remote )  
मृत्यु की परिस्थिति में मृत्युत्तर  
परीक्षा का वर्णन, यदि हुई हो।  
( In the case of death  
description of post  
Mortem examination if  
such has been carried  
out. )

**शाल्मिक इतिवृत्त लेखन या सामान्य योजना के  
सम्बन्ध में विस्तार से विचार**

शाल्मिक ( सर्जिकल ) रोगियों के इतिहास लिखते समय निम्नलिखित  
बातों की जानकारी आवश्यक है। इसी को अंग्रेजी में “नोट टेकिङ्ग, या  
केस टेकिङ्ग” कहते हैं। उसकी सामान्य रूपरेखा इस प्रकार की होती है।  
भाषा में संक्षेप में इसे कार्य मार्ग विशिखा या रोगी परीक्षा की पद्धति कह  
सकते हैं।

**नाम**.....

**आयु—**शाल्मिक रोगियों में आयु का बहुत बड़ा महत्व है। कई रोगों  
में आयु के साथ अनिष्ट सम्बन्ध पाया जाता है। उदाहरण के लिए

भग्न को लें। बाल्यावस्था में प्रायः अस्थि छल्लित ( ग्रीनस्टिक ) मध्यम आयु  
में पूर्ण भग्न और वृद्धावस्था में मज्जानुगत ( Impacted ) भग्न एक ही  
प्रकार के अभिघात से हो सकते हैं। ठीक उसी तरह मध्यमायु में एक ही प्रकार  
के अभिघात से उर्ध्व मणिबन्ध का ‘कालिज’ भग्न और बच्चों में क्रीकसाग्रीय  
वियोग ( Epiphysial sepration ) हो जाते हैं। इसी तरह मूत्राव-  
रोध बच्चों में प्रायः निरुद्धप्रकश और अश्मरी के कारण युवकों में मूत्रमार्ग  
सन्निरोध और वृद्धों में छीला गन्धि की वृद्धि से होता है।

**लिंग—**सापेक्ष निदान करते समय कुछ रोगों में लिंग का ज्ञान परमा-  
वश्यक हो जाता है, जैसे दक्षिण जघन खात में होने वाली पीड़ा, स्त्रियों में  
अधिकतर तीव्र वीज वाहिनी शोथ के कारण होती है परन्तु पुरुषों में वह तीव्र  
प्रांत्र पुच्छ शोथ के कारण हुआ करती है। कुछ रोग विशिष्ट लिंगों में ही  
मिलते हैं जैसे मूत्राश्मरी तथा श्वासनलिका गत “कैन्सर”, अधिकतर पुरुषों  
में ही मिलते हैं तथा पित्ताशय शोथ अथवा पित्ताश्मरी स्त्रियों में ही बहुलता से  
पाई जाती है।

**धर्म एवं जाति ( Race )—**कई जातियों में कुछ विलक्षणताय  
मिलती हैं जैसे शोपस ( Penis ) का कैन्सर नुसलमानों और यहूदियों में  
नहीं पाया जाता। मधुमेह एवं कुलजरक्तपित्त ( Haemophilia ) यहू-  
दियों में देखने को मिलता है।

**व्यसन—**व्यक्तिगत आदतें एवं व्यवसाय—व्यक्तिगत आदतों का भी  
प्रभाव रोगों के उत्पादन में पाया जाता है। जैसे क्ले पाईप स्मोकर्स ( सिट्टी  
के पाईप से धूम्रपान करने वालों में ) ओष्ठगत कैन्सर, सीसे की फैक्टरी में  
काम करने वालों को शूल ( Colic ) और मणिबन्धखंस ( Radial  
Palsy ) मद्यपियों में अस्थि भग्न के अन्तर सकम्प उन्माद ( Delirium  
tremens ) होते पाया जाता है। नील के फैक्टरी में काम करने वालों में  
मूत्राशय का कैन्सर तथा फैक्टरी की चिमनी साफ करने वाले बच्चों में फलकोष  
के कैन्सर बहुधा मिलते हैं।

**पूरा पता—**इसके पश्चात् रोगी की प्रवेश तिथि तथा उसका पूरा पता  
लिख लेना चाहिये।

रोगी के इतिवृत्त के लेखन में पूरे पते के लिखने का महत्व कम नहीं है।  
क्योंकि बहुत से रोग होते हैं जो देश भेद से मिलते हैं। जैसे हिमालय के  
तराई क्षेत्रों में गलगण्ड, उत्तर प्रदेश के पूर्वीय जिलों में श्लीपद और मूत्र वृद्धि,

राजस्थान से आने वाले रोगियों में मूत्राशमरी, गुजरात के नाडियल जिले से आने वाले रोगियों में नहरवा, दक्षिण भारत में बल्मीक (मदुरापाद) एवं आमाशय के व्रण (अन्नद्रव शूल) और कश्मीर से आने वालों में आमाशय का घातकार्बुद पाया जाता है।

### वृत्त (History)

**वर्तमान वृत्त एवं काल मर्यादा, काल प्रकर्ष या अवधि—** सर्व प्रथम रोगी से उसकी व्यथा और काल मर्यादा को पूछ कर पता लगावें। कुछ रोगों में काल मर्यादा का विशेष महत्व रहता है। कई बार कुछ घण्टों का भी इतिहास चिकित्सा के मार्ग निर्णय करने के लिए आवश्यक होता है जैसे सम्मृद्ध आंत्रवृद्धि (Strangulated Hernia) का रोगी यदि ४ घण्टे के पूर्व आता है तो उसमें कर्परण (Taxis) का प्रयत्न कर सकते हैं अन्यथा शल्यकर्म ही एकमात्र उसकी चिकित्सा का उपाय है। तीव्र आंत्र पुच्छ शोथ में कुछ विद्वानों के मतानुसार यदि रोगी ४८ घण्टे तक संशमन (Conservative) चिकित्सा से लाभ न पाया हो तो उसमें शल्यकर्म से ही चिकित्सा करें। घातकार्बुदों में काल मर्यादा का छोटा होना और व्यथा का तीव्र होना यही प्रधान लक्षण मिलता है। इसके विपरीत सौम्य अर्बुदों में काल मर्यादा लम्बी और रोगी की व्यथा अल्प रहती है।

**पूर्व वृत्त—**बहुत रोगों में वर्तमान व्यथा का सम्बन्ध किसी पूर्ववर्ती रोग के साथ होता है जैसे पित्ताशमरीजन्य शूल के साथ मथरज्वर (Typhoid) का पूर्ववृत्त का मिलना; नाड़ी व्रणों में विद्रधि का पूर्ववृत्त; आमाशयिक व्रणों में अश्लपित्त (Dyspepsia) का पूर्ववृत्त; यकृत विद्रधि में कामरूपीय प्रवाहिका (Amoebic Dysentery) का वृत्त का पाया जाना। इसी प्रकार पूयमेह तथा फिरङ्ग का भूतकालीन उपसर्ग भी विविध रोग पैदा कर सकता है। अतः उसका भी रोगी से अप्रत्यक्ष रीति से पूछ कर ज्ञान कर लेना चाहिये।

**पारिवारिक वृत्त—**कई रोगों में पारिवारिक वृत्त भी निदानकर होते हैं अतः इनका ज्ञान भी चिकित्सक के लिये आवश्यक है। जैसे कुलज रक्तपित्त

(Haemophilia) में रोगी के ऊपर शस्त्रकर्म करने के पूर्व उसके रक्त स्रवण एवं स्कन्दन काल का पता लगा लेना चाहिये एवं शस्त्र कर्म करते समय इस बात की सावधानी रखनी चाहिये। रोगी के माता-पिता भाई एवं बहनों के स्वास्थ्य के विषय में भी पूछना चाहिये। वे जीवित हैं या मृत इसका पता लंगाना चाहिये। यदि मृत हैं तो उनके मृत्यु के कारण का पता लगावें। इससे लूय, फिरंग, प्रभृति, संसर्गज (Contagious) तथा संक्रामक (Infectious disease) रोगों के विषय में पता लग सकता है तथा इसका रोगी के वर्तमान परिस्थिति के साथ क्या सम्बन्ध है इसका भी पता लगाया जा सकता है।

### शारीरिक परीक्षा (Physical)

**सार्वदेहिक (General) अङ्ग स्थिति तथा आकृति (Decubitus and Facial Expression)—**सर्व प्रथम चिकित्सक को चाहिये कि वह रोगी के चेहरे एवं लेटने की स्थिति की परीक्षा करे। केवल अंगस्थिति (Decubitus) बहुत सी बातों की जानकारी हो जाती है। जैसे आंत्रपुच्छ शोथ का रोगी अपने दाहिने पैर को मोड़ी हुई स्थिति में रखकर विस्तरे पर लेटता है। त्रैवेयक पृष्ठ कसेरुक के भ्रम में रोगी को लेटे हुए देखने से ही रोग का निदान हो जाता है। धनुर्वर्त में रोगी के चेहरे को देखने से (Rhisus Sardonicus) रोग का ज्ञान हो जाता है मर्माभिघात (Shock) के रोगियों में चेहरा का फीकापन (Palour) व्यक्त रहता है। शूल के रोगियों में शूल की तीव्रता का ज्ञान उसके मुखमण्डल के परिवर्तनों से ही जाना जा सकता है।

**सामान्य दशा—**रोगी के शरीर का गठन आयु के अनुरूप है या नहीं तथा रोगी के किसी अंग में सूजन या रक्ताल्पता या दुःस्वास्थ्य प्रभृति बातों का पता लगाना चाहिये। उसकी त्वचा का वर्णन प्रकृत है या नीलिमा (Cynosis) या पीलापन (कामला) में लिये है।

(क) **तारक (Pupils)**—इस इन्द्रिय का मुख्य सम्बन्ध विशेषतः शिरोभिघात तथा विषयुक्त रोगियों के साथ है। अहिफेन विष के रोगियों में दोनों कनीनिकायें संकुचित मिलेंगी। शिरोभिघात में अभिघात की ओर की कनीनिका अतिविस्तृत और दूसरे ओर संकुचित मिलेगी। फिरङ्ग में कनीनिकाओं में एक विशेष प्रकार का परावर्तन मिलता है। जिसमें तारक की प्रकाश प्रतिक्रिया तो प्रकृत रहती है। परन्तु अनुकूलन प्रतिक्रिया (Aecomodation Reflex) अनुपस्थित रहती है।

१. उसको क्या तकलोफ है, कितने समय से है प्रत्येक व्यथा की अवधि का स्वतंत्रतया स्पष्ट उल्लेख करना चाहिये।

(ख) जिह्वा—में उसकी शुष्कता (जलांश के नष्ट होने पर) मलाढ्यता (मल बढ़ता में) विदार (जीवितिक्रिहीनता में) श्वेतवर्णता (पांडु में) काले दाग का होना (अक्रुशमुख कृमि तथा एडिसन के रोगों में) प्रभृति बातों का ज्ञान करना चाहिये।

(ग) दन्त एवं तुण्डिका (Tonsils) इनकी परीक्षा करते हुए दाँतों की मलाढ्यता, दन्तशर्करा (Tartars) कृमिदन्त, प्रशीताद, पुण्डुट (विद्रधि) प्रभृति बातों तथा तुंडिका में उसकी स्वाभाविकता या वृद्धि (Enlargement) का भी ज्ञान कर लेना चाहिये।

(घ) लसिका ग्रंथियाँ—ग्रीवा, कक्षा, वंक्षण की ग्रंथियों की अवस्था का भी ज्ञान आवश्यक है। ज्वर, फिरङ्ग, घातकार्बुद, श्लीपद, हाजकिन का रोग इन अवस्थाओं के निदान में इसकी परीक्षा सहायक होती है।

(ङ) ताप एवं नाड़ी—ताप तथा नाड़ी तीव्र रोगों में चार-चार घण्टों पर नोट करना आवश्यक होता है। कुछ अवस्थाओं में इनका पन्द्रह-पन्द्रह मिनट आधे-आधे घण्टे पर नोट करना निदान की दृष्टि से महत्व रखता है। क्रमिक वर्धनशील नाड़ी की गति एक तीव्र आंत्रपुच्छ शोथ के रोगी में खतरे की सूचना (Danger Bell) देती है। वैसे ही जिस रोगी में शिर का अभिघात हो, क्षीण एवं बढ़ती हुई नाड़ी मस्तिष्कगत रक्तस्राव की सूचना देती है। नाड़ी की गति से मर्माभिघात की अवस्था तथा चिकित्सा से होनेवाले लाभ को भी जाना जा सकता है।

इसी प्रकार ताप के सम्बन्ध में उसके लेखन से कई बातों का पता लग जाता है। आंत्रपुच्छ शोथ के रोगी में यदि तापक्रम अचानक कम हो जाय अथवा स्वाभाविक से नीचे आ जाय, परन्तु नाड़ी की गति बढ़ती जाय तो आंत्रपुच्छ छिद्रण की निश्चिति रहती है।

(च) सांस्थानिक परीक्षा—काय चिकित्सा से सम्बन्ध रोगियों में इस परीक्षा का बहुत मूल्य होता है। शल्य चिकित्सा के रोगियों में अपेक्षाकृत इसका कम महत्व होता है। तथापि इस परीक्षा को विस्मृत न करें कारण यह है, कुछ ऐसे रोग होते हैं जिनमें बिना इस परीक्षा के किये हुए स्थानिक विकारों का ठीक निर्णय नहीं हो सकता। उदाहरण के लिये आंत्रपुच्छ शोथ का निश्चित निदान करने के पूर्व आधारीय फुफ्फुसपाक (Basal Pneumonia) अथवा मध्यप्राचीरीय फुफ्फुसावृति शोथ (Diphragmatic Plurisy) का पार्थक्य कर देना आवश्यक होता है।

फिर शाल्यिक रोगियों में इस परीक्षा को करते समय इस बात का ध्यान रखें कि जिस संस्थान से रोग का सम्बन्ध हो उसकी विशद परीक्षा करें और इतर संस्थानों का संक्षेप में करें। साथ ही रोगी की जरणशक्ति, पाखाने जाने की आदत (Bowel habit) मूत्रत्याग आदि बातों की भी जानकारी कर लेनी चाहिये।

**स्थानिक परीक्षा—दर्शन—**यदि विकार (Lesion) एक पार्श्व में हो तो दोनों तरफ अंगों की तुलना करते हुए उसका ज्ञान करना चाहिये। यदि सूजन है तो उसका विस्तार कहाँ से कहाँ तक है। वह सूजन एक स्थान में परिमित (Localised) है या व्यापक (Diffuse) जैसे विद्रधि में शोफ एक स्थान में परिमित मिलेगा परन्तु अधसत्वक पाक (Cellulitis) वह सूजन (व्यापक) फैली हुई मिलेगी (Diffuse)। तत्पश्चात् ऊपर के चमड़े का निरीक्षण करें। इसमें त्वचा का वर्ण चमकता हुआ है या फीका (Shines or Dull) उसके ऊपर सिरायें तो नहीं हैं, चमड़ी ढीली है या तनावयुक्त (tense or Loose) जैसे विद्रधी में शोफ के ऊपर का चमड़ा चमकता हुआ और तनावयुक्त रहेगा। यदि उभार किसी अर्बुद के कारण हो तो नाभि के ऊपर पाई जाने वाली शिरायें उभरी एवं स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं, यदि साकॉमा हो तो उसके ऊपर की शिरायें विस्फारित मिलेंगी। यदि चर्म की लसिका वाहिनियों में अवरोध हो, तो चमड़ी का रूप सन्तरे के छिलके जैसे होगा (Psuedo orange) जैसे स्तन के कैंसर में।

यदि उस सूजन में स्पन्दन (Expansile) और सिकुड़ने (हीमैजियोभा एन्युरिज्म) अथवा ऊपर नीचे होने की गति हो [रक्त वाहिनियों के ऊपर अथवा उनसे सम्बन्धित अर्बुदों में जैसे अग्न्याशयिक ग्रंथि (पैक्रियाटिक सीस्ट) का औदरीय महाधमनी (एवडोमिनल एरोटा) से सम्बन्ध] उसका इतिहास लिखने में ध्यान रखना चाहिये। वैसे ही यदि कोई विकार (Lesion) उदर, गुहा या वक्ष से सम्बन्धित हो तो वह उन अंगों की स्वाभाविक गतियों के साथ चलायमान है कि नहीं इसका भी ध्यान रखें।

#### प्राक्कालीन रोगों परीक्षा पद्धति—

रोग के ज्ञान कराने वाले (६) ही साधन हैं :—पॉचों ज्ञानेन्द्रियाँ (Senseorgans of Purseption) तथा प्रश्न (Interrogation) जैसे श्रात्रेन्द्रियविज्ञेय (Auscultation) अंगुलिताडन, श्रवण, स्पर्श-

१. प्राकृतिकनेत्र से या विविध वीक्षण या दर्शन यन्त्रों की सहायता या विभन्न चक्रिय चित्रों से।

नेन्द्रिय विज्ञेय परीक्षा ( **Palpation** ) स्पर्शन ; चक्षुरिन्द्रिय विज्ञेय परीक्षा ( **Inspection** ) दर्शन ; रसनेन्द्रिय विज्ञेय परीक्षा ( **Direct or Indirectly by Chemical method of Litmus Paper** ) दो प्रकार की होती है । प्रत्यक्ष एवं अनुमान ( **Direct perception or inference** ) घ्राणेन्द्रिय विज्ञेय परीक्षा ( **Smell** ) विविध प्रकार के व्रणों ( **Ulcer** ) के स्रावों ( **Discharge** ) के गन्ध । प्रश्न के सम्बन्ध में रोगी से पूछकर उसका देश ( **Area, Region** ) काल ( **Season** ) जाति ( **Race** ) सात्म्य ( **Sensitivity** ) आतंक समुत्पत्ति ( **Present illness** ) वेदना समुच्चय ( **Chief complaints** ) वल ( **General Conditions** ) अन्तराग्नि ( **Digestion** ) मल-मूत्र प्रवृत्ति अप्रवृत्ति ( **Bowel and urine** ) काल प्रकर्ष ( **Duration** ) का ज्ञान करना चाहिये । संक्षेप में इतिहास का प्रथम भाग ( **Subjective** ) प्रश्न, नाम, आयु, लिंग, जाति, व्यवसाय, पता, वेदना, वर्तमान वृत्त, पूर्ववृत्त तथा कुलवृत्त द्वारा ही जाने जाते हैं, शेष भाग पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के ( **Objective** ) देखे जाते हैं । पश्चात् इन्हीं विशिष्ट क्षणों एवं चिन्हों के आधार पर रोग विनिश्चय तथा चिकित्सा का मार्ग निर्णय किया जाता है ।

( सु० सु० १० )

**स्पर्शन**—साधारणतया जिन बातों का दर्शन से अनुभव किया गया है उसकी निश्चिति स्पर्शन द्वारा की जाती है । जैसे सूजन की सीमा, त्वक्सवर्णता, गति आदि का स्पर्शन के द्वारा सूजन के गठन का ज्ञान तथा उसका समीपवर्ती धातुओं के साथ सम्बन्ध का निश्चित ज्ञान प्राप्त करते हैं । इसी प्रकार इस परीक्षा से विकार युक्त स्थल की स्पर्शासह्यता का भी ज्ञान होता है । यदि वह विकार-युक्त स्थल, नीचे की धातुओं के साथ संसक्त है ( **Adherent** ) तो वह किस विशिष्ट धातु से सम्बद्ध है इसका भी निश्चित ज्ञान इस परीक्षा से सम्भव है । यदि विकार-युक्त स्थल पर आकुञ्चन विस्फारण ( **Expansile Impulse** ) की गति मिलती है तो उसका नाड़ी की गति के साथ सम्बन्ध है कि नहीं । स्थान की सूजन दबाव से कम हो जाती है या नहीं ? यदि कम होती है तो उसमें किसी प्रकार का शब्द ( आंत्र वृद्धि ) होता है या नहीं ? इन बातों का भी ध्यान रखें ।

**अँगुलिताडन**—इस परीक्षा का वक्ष एवं उदर ( उदरगुहा एवं उरोगुहा ) के रोगों में ही विशेष महत्व है । इसके लिये इन गुहाओं के विभिन्न प्रदेशों में किस प्रकार की प्राकृतिक ध्वनि मिलती है जानना आवश्यक है । यदि वह प्राकृतिक ध्वनि किसी प्रकार से कम ज्यादा या सम्पूर्णतया नष्ट हो जाय तो विकार की शंका उत्पन्न करता है । जैसे यदि विकृत प्रदेश की प्राकृतिक मन्द ध्वनि ( **Normal Dullness** ) अनुपस्थित हो और उसके स्थान पर वहाँ यदि निनादित ( **Resonant** ) ध्वनि सुनाई पड़े तो आमाशय व्रण के फटने का निश्चित निदान होता है । यदि अधो नाभि प्रदेश में सूजन हो और अँगुलिताडन करने पर वहाँ निनादितध्वनि मिले, तो वंदांत्र की और यदि मन्द ध्वनि मिले तो वस्ति के मूत्रावरोध के कारण उत्पन्न ( **Retention of urine in the Bladder** ) स्थानिक विद्रधि ( **Localised Abscess** ) की सम्भावना अधिक रहती है ।

इसी प्रकार आंत्र-वृद्धि में कोषों में ( **Omentum** ) है या आंत्र की उपस्थिति है इसका भी निश्चित निदान अँगुलिताडन के द्वारा हो सकता है ।

**श्रवण**—रक्तवह संस्थान के रोगों के अतिरिक्त औदरिक रोगों में भी इसका सात्म्य है । इस परीक्षा से आंत्रों की प्राकृतगति तथा हृदयध्वसन रक्त-वह संस्थान के रोगों में मर्मरध्वनि का ज्ञान होता है । कई बार वंदांत्र के रोगियों में आंत्रावरोध या आंत्रशैथिल्य का सापेक्ष निदान करने में सहायता मिलती है । आंत्रावरोध में स्वाभाविक आंत्रिक गति बढ़ी रहती है जिसके परिणाम स्वरूप श्रवण के द्वारा आंत्रकूजन ध्वनि अधिक मिलेगी । इसके विपरीत आंत्र शैथिल्य में उन ध्वनियों का पूर्णतया अभाव पाया जायेगा ।

### विशेष परीक्षायें

**यांत्रिक परीक्षायें**—रक्त एवं मूत्र की सामान्य परीक्षाओं तथा रक्त निपीड एवं शारीरिक भार के लेखन के अतिरिक्त भी कई अन्य परीक्षाओं की आवश्यकता, शल्योपचार वाले रोगियों में होती है । यद्यपि इनका व्यवहार-विकार की स्थिति के ऊपर निर्भर रहता है । इनका उद्देश्य रोग दर्शन अर्थात् रोग को प्रत्यक्ष देखना होता है । इस कर्म में विभिन्न प्रकार के यंत्र उपयोग में आते हैं । विभिन्न संस्थान के रोगों में भिन्न-भिन्न प्रकार के यंत्र उपयोग में आते हैं । इनकी उपयोगिता का संक्षेप में एकैकशः वर्णन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा

है। इन परीक्षाओं को सामूहिक रूप में यांत्रिक परीक्षाएँ कहें तो अधिक संगत है।

**क्षकिरण यन्त्र परीक्षा**—क्षकिरण चित्र से कई विकारों की जानकारी ठीक-ठीक हो जाती है। इसीलिये इसका उपयोग विभिन्न चित्रों के लिये किया जाता है जैसे गुद भगंदर की सीमा रेखा के ज्ञान के लिये विभिन्न नाड़ी व्रणों ( Sinuses ) के गति ज्ञानार्थ कुथित ( Necrosed ) अस्थि से सम्बद्ध किसी नाड़ी युक्त व्रण के लिये अथवा मूत्रवह संस्थान के विभिन्न रोगों में ( वृकाश्मरी, वृकक्षय, जलवृक, अर्बुद ) में।

**मूत्रवह संस्थान चित्रण ( Pyelography )**—मूत्रवह चित्रण, मूत्र संस्थानचित्रण, वस्तिचित्रण ( Cystography ) प्रसक चित्रण ( Urethography ) प्रभृति चित्रणों से विकार का विनिश्चय तथा शल्य कर्म के मार्ग भी प्रशस्त हो जाता है। इन चित्रणों से न केवल अङ्ग की स्थानिक विकृतियों का ही ज्ञान होता है प्रत्युत इनकी कार्यक्षमता का ज्ञान हो जाता है। इन कार्यों में जम्बु की ( आयोडीन युक्त ) द्रव्यों को प्रवेश करा करके पश्चात् चित्र लिया जाता है।

इसी प्रकार प्रजनन संस्थान के विकारों में उनके मार्गों का पूर्ण चित्रण भी किया जाता है जैसे कोष बीज वाहिनी चित्रण ( Hysts-Salpingography ) तथा शुक्र कोष चित्रण ( Seminal Vesiculography ) जैसे पचन संस्थान के विकारों में ( गलनलिका ) के विविध अर्बुद, आमाशय के व्रण एवं अर्बुद, लघु एवं बृहदंत्र के अर्बुद, व्रण, सन्निरोध एवं अन्य प्रकार के स्थानिक विकृतियों में तथा अन्न स्रोत में अन्न की प्राकृत गति का ज्ञान, रोगी को बेरियम दूध ( Barium meal ) देकर या बेरियम को वस्ति के द्वारा देकर, संस्थान के विभिन्न भागों का चित्रण करते हैं।

१. क्षकिरण से उपवृक के चित्रण के एक विशेष विधि है जिसका नाम पश्चात् उदरावृत्ति परावकाश पूरण ( Posterior Aero-Lenography ) है इसमें गुदा के पार्श्व भाग से एक लम्बी सूई के द्वारा उदरावरण के पीछे परावकाश ( Post. Retro Peritoncal Space ) में वायु या प्राण-वायु ( आक्सीजन ) २००-३०० सीसी की मात्रा में भर कर चित्रण किया जाता है। इसके द्वारा उपवृक के अर्बुदों का निश्चय करने में सहायता मिलती है।

**पित्तवह संस्थान चित्रण ( Cholecystography )**—इस चित्रण से पित्ताशय एवं पित्त नलिकाओं की स्थानिक विकृतियों ( अश्मरी ) मार्गावरोध, विस्फार, अर्बुद शल्य का निश्चय कर सकते हैं।

**सौषुम्निक चित्रण ( Mylography )**—इसका उपयोग सुषुम्ना के अर्बुद, अवरोध, क्षय अथवा शोथ के उपरान्त होने वाले संश्लेषों ( Neucleus Palposus ) में निदान के लिये किया जाता है।

**श्वास नलिका वृक्ष चित्रण**—अन्तः श्वास नलिका दर्शक यन्त्र ( Bronchography ) के द्वारा क्षकिरणामेद्य ( Radio opaque ) द्रव्य को भीतर प्रविष्ट करके चित्रण करते हैं जिससे श्वास नलिका जन्य रोगों ( अवरोध, विस्फार अर्बुद, शल्य ) का विनिश्चय कर सकते हैं।

**मस्तिष्क चित्रण**—तृतीयकटि कशेरुकान्तर स्थल पर ( III lumbr space ) वेध करके वहाँ से सौषुम्निक जल निकाल कर वहाँ पर हवा भर के क्षकिरण द्वारा चित्र लिया जाता है। इससे मस्तिष्कावर्बुद, मस्तिष्क गत जीर्ण रक्त सञ्चय ( Hoematoma ) मस्तिष्क विद्रधि का ज्ञान सम्भव है। ऐसे ही पाश्चादस्थ पर दो छिद्र करके उनके द्वारा मस्तिष्क कोष्ठों में हवा भरके उनका भी चित्रण किया जा सकता है। जिससे स्थान गत विकृतियों का ( अवरोध, अर्बुद, रक्त संचय, रक्त स्राव या वाहरी दबाव ) का पता लग जाता है।

**धमनी चित्रण**—इसका महत्व शिरोगत रोगों में तथा धमनियों के स्थानिक रोगों में है [ धमनी विस्फार ( Aneurysm ) अन्तः शल्यता ( Embolism ) तथा रक्तवाहिनी स्कन्दन ( Thrombosis ) ] धमनियों के जरिये क्षकिरणामेद्य द्रव्यों का अन्तःप्रवेश करके चित्र लेते हैं।

**शिरा द्वारा हृदय चित्रण ( Angio Cardiography )**—इसमें कूर्पर की शिरा द्वारा एक लचकीली नलिका को हृदय तक पहुँचाया जाता है ( Cardiac Catheterization ) और उससे क्षकिरणामेद्य द्रव्य का अन्तःक्षेप करके हृदय का चित्रण किया जाता है। इससे हृदय की जन्मजात स्थानिक विकृतियों का जैसे हृच्छिद्र खुला रह जाना ( Patent Foramen ovale ) फुफ्फुसीय धमनी का सहज संकोच तथा दोनों नलियों के मध्य का दोष अथवा कपाटों के विकार का निश्चय किया जाता है।

ऊपर में मृदु अङ्गों के क्षकिरण द्वारा चित्रण विधि का संक्षेप में उल्लेख हुआ। इन अङ्गों में कुछ को छोड़ कर शेष सभी अङ्ग का साधारणतया चित्रों से

भी आकृति स्पष्ट हो जाती है। साधारण चित्रणों में भी वृक, यकृत, प्लीहा, हृदय, फुफ्फुस व अस्थियों एवं वायु की छाया रेखा स्पष्ट मिल जाती है।

अस्थि एवं सन्धि के विकारों में क्षकिरण द्वारा चित्र में किसी विशेष विधि की आवश्यकता नहीं होती, इनके चित्रणों में केवल रोगी की स्थिति का ही महत्व होता है। शारवास्थियों के चित्र दो दिशा में या स्थितियों (Planes) में लेने होते हैं। आगे से पीछे (Antero-Post.) तथा पार्श्व से (Lateral)। करोटि के अस्थियों के चित्रों में जिस अस्थि का चित्र लेना हो तदनुकूल रोगी के सिर की स्थिति रखनी चाहिये।

\* **अन्तःदर्शक यन्त्र (End scopes)**—रोगी के दर्शन में व्यवहृत होने वाले यन्त्र दो प्रकार के होते हैं। साधारणतया इन यन्त्रों को स्पेकुलम कहा जाता है। इनका प्रवेश आन्तरिक अंगों में दो या तीन इञ्चों तक ही हो सकता है। यदि विकार की स्थिति इतने तक ही सीमित हो तो इन साधारण वीक्षण यन्त्रों से काम निकल सकता है। विशेष प्रकार के यन्त्रों को स्कोप कहते हैं। इनकी लम्बाई साधारण यन्त्रों से बहुत अधिक होती है फलतः इनका प्रवेश इनकी अपेक्षा अधिक गहराई तक हो सकता है। इनके साथ वैद्युतिक प्रबन्ध (Electrical Arrangement) रहता है जिसकी सहायता से

\* अंतःदर्शन यन्त्र (Endoscopes)

१. वीक्षण यन्त्र (Speculums)

सुश्रुत के वर्गीकरण के अनुसार इन यन्त्रों का नाड़ी यन्त्रों में समावेश है। यन्त्रों (Blunt Instrument) के छः प्रकार हैं। स्वस्तिक (Cruciform Forceps) संदेश (Forceps whether with or without catch) ताल (Scoop or Spoon like Instruments, नाड़ी (Tubular Instrument and varieties of speculum & scope) शलाका (Rod like Instrument, Sound Probes Bougies dilators & Hook) उपयन्त्र (Accessory instruments Bandages, Gauze, snares, hammars etc.) इनमें नाड़ी यन्त्रों के अनेक प्रकार बताये गये हैं। एक मुख (Open from one side) या द्विमुख (Opened from both the ends) हो सकते हैं इनके तीन कार्य बताये गये हैं—१. रोग दर्शन (Speculum and scopes) २. आचूषण (Suctions) ३. क्रिया सौकार्य इनको सहायता से अन्तस्थित विकारों के शल्य कर्म में आसानी रहती है।

( सु० सु० ७ )

भीतर के गहराई के अङ्गों में स्थित विकारों को प्रकाशित करके आँखों से देखा जाता है। सरल मार्गों के अतिरिक्त स्रोतों या गुहाओं के देखने वाले यन्त्रों में (वस्ति एवं आमाशय) प्रिस्म की व्यवस्था रहती है। जिससे भीतर के दृश्य से निकली हुई किरणें इन प्रिस्मों द्वारा परावर्तित होकर उनकी आभा आँखों से देखी जा सकें। कुछ यंत्रों में इन्हीं दृश्यों को बड़ा करके देखने के साधन (Magnifying attachment) होते हैं तथा इन विकारों के छाया चित्र भी लिये जा सकते हैं। संक्षेप में रोग दर्शन में व्यवहृत होने वाले स्पेकुलम को वीक्षण यन्त्र तथा स्कोप को दर्शन यन्त्र कह सकते हैं।

**अन्तःनेत्रदर्शक यन्त्र (Ophthalmoscope)**—इसको आँख के भीतर प्रविष्ट करने की आवश्यकता नहीं होती। इस यन्त्र की सहायता से आँख के अंतस्थ पटल (Retina) के ऊपर की धमनियों का दृष्टि नाड़ी तथा दृष्टि नाड़ी नाभि (Optic Disc) का ज्ञान हो सकता है जिससे नेत्र रोगों के साथ-साथ मस्तिष्कगत कुछ विकारों का भी ज्ञान होता है। जैसे अंतःशरीय पीडन (Intracranial) की वृद्धि में दृष्टि नाड़ी नाभि उभरी हुई एवं शोथयुक्त (Papilloedema) दिखलाई पड़ती है। इसी प्रकार उच्च रक्त निपीड़ अथवा कुछ जीर्ण वृक रोगों में अंतस्थ पटल की धमनी उभरी हुई टेढ़ी, मेढ़ी, कुटिल (Tartous) दिखलाई पड़ती है।

**नासा वीक्षण यन्त्र (Nasal) : कर्ण वीक्षण यन्त्र (Aural Speculum)**—इन यन्त्रों की सहायता से नासा गुहा, तथा बाह्यकर्ण की स्थानिक विकृतियों का निरीक्षण किया जाता है जैसे ब्रण, अर्श, प्रभृति।

**गलान्तःदर्शन यन्त्र (Pharyngoscope) : स्वरान्तःदर्शन यन्त्र (Laryngoscope)**—इन यन्त्रों की सहायता से गले एवं स्वर यन्त्र के विकारों के दर्शन एवं विनिश्चय करने में तथा स्वरान्तःदर्शन यन्त्र का एक अन्य उपयोग संज्ञानाशन के लिये श्वास नलिका (Trachea) के भीतर नाड़ी (ट्यूब) को प्रविष्ट करने में तथा (Intra Tracheal Intubation) स्वरयंत्र से विनाजीय द्रव्यों के निर्हरण में भी होता है।

**श्वसनिकान्तः दर्शन यन्त्र (Bronchoscope)**—के दो विभाग हैं। इनमें से एक के द्वारा श्वास नलिका विभाजन तक के विकारों को देखा जा सकता है। इससे अधिक दूरी पर स्थित श्वसनिका विकारों को देखने के लिये इसी यन्त्र में 'प्रिज्म' लगी हुई नली को जोड़ कर विकार को

देखते हैं। प्रिज्म लगी हुई नलिका में इस प्रकार की व्यवस्था रहती है जिससे विकार की स्थिति के अनुसार उसे क्रमशः ६०°, १३५° और १८०° अंशों के कोणों पर रखकर ऊर्ध्व, मध्य और अधो श्वसनिका विकारों को देखा जा सके। उपर्युक्त अंशों के कोणों के अनुसार तीन प्रकार की नलिकायें यन्त्र सम्भार में रहती हैं। आवश्यकतानुसार इनका संयोजन करके विकारों को देखा जाता है।

इस यन्त्र के द्वारा श्वसनिका के विभिन्न भागों में स्थित विकारों (विद्रधि, व्रण, अर्बुद, शल्य) का निरीक्षण किया जाता है। इस कर्म के अतिरिक्त कई रोगों में रोग निश्चिती के लिये वहाँ के धातुओं को निकाल कर अणु वीक्षण यन्त्र की सहायता से देखने (Biopsy) में भी व्यवहृत होता है। जैसा कि ऊपर में बतलाया जा चुका है श्वसनिका चित्रण में इस यन्त्र का उपयोग होता है।

**अन्न नलिकान्तः दर्शन यन्त्र (Oesophagoscope)**—इस यन्त्र की रचना श्वसनिकान्तः दर्शन यन्त्र सदृश होती है केवल इसकी लम्बाई उसकी अपेक्षाकृत अधिक होती है। इस यन्त्र के द्वारा अन्न नलिका के व्रण, अर्बुद, विद्रधि, सन्निरोध तथा अर्शों के दर्शन किया जाता है तथा मार्गावरोध में संशमन चिकित्सा में भी इसका उपयोग होता है।

**अन्तःफुफुसा वृत्ति यन्त्र (Pleuro-scope)**—इस यन्त्र को पर्शु-कान्तरीय स्थान के भीतर से प्रविष्ट करके फुफुसावृत्ति का सम्पूर्ण दर्शन किया जा सकता है। जिससे क्षय आदि फुफुसीय रोगों की चिकित्सा में तथा शल्य कर्म में सहायता मिलती है जैसे (Apico lysis)।

**आमाशयान्तः दर्शन यन्त्र (Gastroscope)**—यह एक लचकीला यन्त्र है जिसको आमाशय के भीतर प्रविष्ट करके उसके अन्दर के प्राकृतिक और वैकारिक स्थितियों का प्रत्यक्ष दर्शन किया जा सकता है। जैसे तत्स्थान गत व्रण, अर्बुद, शोथ या रक्तस्राव, सन्निरोध प्रभृति बातों का ज्ञान करना। इसके अलावे इस यन्त्र की सहायता से आमाशय गत रोगों की साधनासाध्यता का पूर्व-ज्ञान तथा चिकित्सा का मार्ग सरल हो जाता है।

**गुदा वीक्षण यन्त्र (Roctal speculum) : गुदा अन्तः दर्शन यन्त्र (Sigmoidoscope)**—गुदा वीक्षण की सहायता से गुदा के अन्तिम भाग में होने वाली कुछ विकृतियों का (अर्श, व्रण, सन्निरोध, नाड़ी व्रण) का दर्शन किया जा सकता है। इससे

अधिक भीतर के विकारों को देखने के लिये (Sigmoidoscope) का प्रयोग करना पड़ता है, जिसकी सहायता से चार इञ्च से लेकर बारह इञ्च तक उपस्थित विकृतियों का दर्शन किया जा सकता है। उदाहरण के लिये अर्बुद, मांसार्श, तृणाणुजन्य होनेवाली प्रवाहिका के व्रण और क्षय जन्य सन्निरोध।

**अंतःवस्ति दर्शक यन्त्र (Cystoscope)**—इसका आकार मूत्र नाड़ी (Catheter) की तरह का होता है, इसके दो अङ्ग होते हैं। पहले बाहरी अङ्ग को प्रविष्ट करते हैं। उसके जरिये वस्ति में पानी भर दिया जाता है। तत्पश्चात् प्रिज्म-युक्त नलिका को ऊपर निर्दिष्ट नलिका के भीतर प्रविष्ट करके उसके द्वारा मूत्राशय की भीतरी रचना का दर्शन किया जा सकता है जिससे निम्नलिखित रोगों के निदान में सहायता मिलती है। छीलाग्रन्थि की वृद्धि, अश्मरी, शोथ, अर्बुद, व्रण, स्थाली (Diverticula), मूत्रवह छोटों के मुखों की दशा एवं उसके विकार। वैद्युतिक दाह कर्म में भी इस यन्त्र की सहायता अपेक्षित है। इसके बीच से वैद्युतिक दाह कर्म शलाका का प्रवेश कराके विकारयुक्त स्थल का दहन किया जाता है। जैसे अर्बुद, दहन या छीलाग्रन्थि का दहन।

उपर्युक्त-विमार्ग-वृक्क चित्रण (Retrograde Pydography) में इस यन्त्र का उपयोग होता है। इसकी सहायता से क्षकिरणामेव्य द्रव्यों का मूत्रवह नलिका (Ureter) के भीतर प्रवेश कराते हैं। इसके अलावे वृक्क विकारों में दोनों पाशवों के वृक्कों से निकले हुए मूत्र का अलग-अलग संग्रह किया जा सकता है जिससे निदान, चिकित्सा एवं साध्या-साध्यता का विवेक हो सकता है।

इन परीक्षाओं के अतिरिक्त विभिन्न संस्थानों के लिये निर्दिष्ट कर्म सम्बन्धी विशिष्ट परीक्षाओं को भी यथासाध्य करने का प्रयत्न करना चाहिए। इन परीक्षाओं से रोग की निश्चिती में सहायता मिलती है। आमाशयिक विश्लेषण (आमाशय व्रणों में) मिहीय घनत्व परीक्षा (Urea Concentration & non-protien Nitrogen Estimation test) मूत्र-संस्थान के रोगों में कर लेना चाहिये।

**निदान**—ऊपर निर्दिष्ट परीक्षाओं द्वारा (इतिहास, स्थानिक तथा विशिष्ट परीक्षाओं से) जो अस्त्यात्मक (Positive) चिन्ह या बातें मिलती हैं, उससे रोग का विनिश्चय हो ही जाता है। परन्तु विद्यार्थी को उस अंग की या समीपवर्ती इतर अङ्गों को ध्यान में रखते हुए उनके विशिष्ट लक्षण तथा चिन्ह (Cardinal points) का संग्रह कर लेना चाहिये। पुनः उसके आधार

पर अपना निश्चित निदान करना चाहिये। इसे प्राक्शस्त्रकालीन निदान (Pre-Operative Diagnosis) कहा जाता है। इस निदान में तथा शस्त्र कर्म करते समय किये गये निदान में कभी-कभी अन्तर हो सकता है। ऐसी अवस्था में शल्य-कर्म पूर्व निदान को संदिग्ध-निदान, सम्भाव्य निदान, 'प्रोवि-जनल डायग्नोसिस' कहते हैं। इसके पश्चात् कुछ ऐसी भी विकृतियाँ होती हैं जिनका निश्चित निदान शल्यकर्म करने पर भी नहीं हो सकता। उस समय वहाँ के धातुओं को लेकर अणुबीक्षण यन्त्र के द्वारा देखकर किया जा सकता है। इसे फलकीय निदान (Diagnosis through Table Biopsy) कहा जाता है। कई बार रोगी के मृत्यु के पश्चात् उसके विभिन्न अङ्गों की परीक्षा करके और उसमें मृत्यु-पूर्व पाये गये लक्षणों को ध्यान में रखते हुए जो निदान किया जाता है उसे ( Post. Mortem Diagnosis. ) मृत्यु-त्तर निदान कहा जाता है। इन विभिन्न निदानों की उपयोगिता किसी विशिष्ट रोग के मृत्यु प्रमाणों के जानने के लिये तथा यदि आवश्यक हो तो चिकित्सा में परिवर्तन के लिये तथा अनुसंधान के लिये होती है।

**शुभाशुभ ( Prognosis )**—वर्तमान शल्य तन्त्र में इसके दो विभाग होते हैं। १. शल्यकर्म के पूर्व (Pre-operative) तथा २. शल्यकर्म पश्चात् ( Post. Operative )। इन द्विविध शुभाशुभों का ज्ञान रोगी को अथवा उसके संरक्षकों को करा देना आवश्यक होता है। जिससे रोगी को शल्यकर्म न करने पर या करने पर होनेवाली विविध परिणामों का विस्तृत बोध हो जाय। जैसे कूर्पर सन्धि भग्न हो एवं उसमें अस्थि का एक भाग सन्धि के भीतर चला गया हो, ऐसी अवस्था में यदि रोगी शल्यकर्म नहीं कराता तो वह सन्धि अचल एवं शोथयुक्त हो जायेगी। यदि शल्यकर्म द्वारा उस अस्थि के भाग को निकाल दिया जाय तो वह सन्धि चलायमान तो होगी, परन्तु सब प्रकार की क्रिया-शीलता नहीं आ पायेगी। यदि कई बार अधोशाखागत धमनियों में से विष-शोफ, (Nicotin poisonous) के कारण उनके मार्ग रुद्ध हो जाते हैं ( Thrombo agitis Obliterans ) ऐसी अवस्था में उनमें रक्त-संवहन-क्षम विस्तार पैदा करने के लिये इसमें इडा स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल छेदन ( कटिक सेरुकों के पास—२, ३, ४, नाड़ी फन्दों का काटना ) ( Lumbar Sympathectomy & ii iii iv ) किया जाता है। इस शस्त्रकर्म के परिणामस्वरूप में पुरुषों में नपुंसकता आ आती है। ऐसी स्थिति में रोगी को इस बात की पहले ही से सूचना दे देना आवश्यक है। इसी प्रकार धीलाग्रन्थि की वृद्धि होने पर यदि शस्त्रकर्म न किया जाय तो रोगी को बार-बार मूत्रावरोध

की तकलीफ बनी रहती है तथा धीलाग्रन्थि की वृद्धि का कुपरिणाम सम्पूर्ण सूत्र-वह सस्थान के ऊपर पड़ता है जैसे वस्ति, विस्कार, जल गवीर्ती ( Hydro ureter ) तथा जल वृक्क। परन्तु यदि रोगी में शस्त्रकर्म किया जाय तो क्लीवता आ जाती है।

**चिकित्सा**—के दो उपविभाग हैं, स्थानिक एवं सार्वदैहिक। तथा शामक चिकित्सा तथा रोग निर्मूलन चिकित्सा। १. सार्वदैहिक चिकित्सा में रोगी के पथ्य, सुश्रुषा, स्वास्थ्य के हितकर बातों का ध्यान रखते हुए उसके संस्थानिक विकृतियों के अनुसार चिकित्सा करनी होती है। जैसे यदि रोगी में रक्ताल्पता हो तो रक्त-वर्द्धक द्रव्यों के प्रयोग या रक्तदान, जल, क्षार एवं लवण की कमी होने पर तद्विष द्रव्यों के प्रयोग तथा विविध प्रकार के पोषणों का ध्यान रखना चाहिये। यदि व्याधि किसी प्रकार के उपसर्ग के परिणामस्वरूप हो तो तदनुकूल विशिष्ट भूतघ्न ( एण्टि बायोटिक्स ) के प्रयोग करना चाहिये।

शल्य तन्त्रीय चिकित्सा में स्थानिक चिकित्सा की प्रधानता है। इसमें विकृत अङ्ग को विश्राम, स्थानिक स्वेदन, उपनाह या व्रण-वन्धन आदि की व्यवस्था करनी होती है ( Immobilization, Fomentation & Dressing )। स्थान के अनुसार विश्राम की विधि में परिवर्तन होता है। विश्राम का लक्ष्य उनके प्राकृतिक क्रिया को बन्द करना ही होता है—विभिन्न अंगों में यह विभिन्न प्रकार से सम्भव है। जैसे अस्थियों के विश्राम में उनका स्थिरीकरण, पचन संस्थान के रोगों के विश्राम के लिये रोगी को अन्न, मुख द्वारा न देकर पर्याप्त कैलोरीज से परिपूर्ण द्रव शिरा-द्वारा दिया जाता है। मस्तिष्क विकारों में विश्राम के लिये संशमन द्रव्यों का प्रयोग करते हैं।

**शल्य चिकित्सा (Operative treatment)**—पूर्वकर्म—इसमें शस्त्र-कर्म की तिथि, शल्यकर्म के पूर्वकर्म की तैयारी प्रभृति बातों का ध्यान रखते हैं, जिसमें संज्ञानाशन के लिये जिस द्रव्य का उपयोग करना होता है उस प्रकार से उसकी विशेष तैयारी करनी पड़ती है। शल्यकर्म के पूर्व पचन संस्थान का शुद्ध

१. प्राचीन शल्यतन्त्र के आचार्यों ने पूरे शल्य कर्म को तीन भागों में विभाजित किया है।  
१. पूर्व कर्म २. प्रधान कर्म ३. पश्चात् कर्म  
पूर्व कर्म का तात्पर्य आधुनिक Preparation of the patient, sterilization of the instruments in operation and preparation of operation theatre है। कर्म में Actual operation का वर्णन तथा पश्चात् कर्म में Post-operative treatment तथा Post-operative care का उल्लेख मिलता है।

रहना अत्यावश्यक है इसलिये विरेचन एवं वस्ति का भी प्रयोग आवश्यकतानुसार कर सकते हैं। जिस अङ्ग पर शल्यकर्म करना है उसकी स्थानिक सफाई का भी महत्व है इसलिये लोम आदि का निर्हरण तथा जन्तुप्र द्रव्यों के प्रयोग से शल्यकर्म स्थल का विशोधन किया जाता है।

प्रधान कर्म—शल्य चिकित्सक का नाम, संज्ञानाशक का नाम तथा संज्ञानाशन में प्रयुक्त होने वाले द्रव्य का नाम तथा शल्यकर्म के प्रारम्भ तथा उस पूरे समय का भी उल्लेख होना चाहिए। तत्पश्चात् सम्पूर्ण शल्यकर्म का उत्तरोत्तर (Step by step) वर्णन तथा शल्यकर्म के समय प्राप्त वैकारिक परिवर्तन (Pathological condition) तथा छेदन किये हुए भाग का भी उल्लेख करना चाहिये।

पश्चात् कर्म—इसमें रोगी को शल्यकर्म के पश्चात् होनेवाले उपद्रवों का तथा उनकी की हुई चिकित्सा का विस्तार से उल्लेख होना चाहिये। जैसे रोगी कब होश में आया, उसे कितनी बार वमन हुआ, रोगी शान्त है या बेचैन, उसके रक्त भार की स्थिति तथा पीड़ा की तीव्रता का भी ध्यान रखे। इनकी उपस्थिति या अनुपस्थिति और किये उपचारों का विस्तृत विवरण लिखना चाहिये। शल्यकर्मयुक्त स्थल के स्थानिक उपद्रवों में आध्मान, मूत्रावरोध एवं निद्रा-नाश प्रभृति बातों का भी ध्यान रखना चाहिये।

रोगीके सुधार का दैनिक वृत्त—उपर्युक्त उपद्रवों का ही विचार करते हैं। यदि व्रण बन्धन शिथिल या गाढ़ हो तो उससे उत्पन्न चिन्हों को ध्यान में रखकर तदनुकूल व्यवस्था करे। व्रण बन्ध के खोलने पर व्रण की स्थिति, उसमें सुधार की प्रगति, यदि टाँके लगे हों तो उनकी दशा प्रभृति बातों का ध्यान रखना चाहिये। यदि रोगी की शल्यकर्म के बाद मृत्यु हो जाती है तो मृत्यु के समय मिले हुए लक्षणों को तथा की गई चिकित्सा को विस्तृत रूप से लिखे। यदि मृत्यु के पश्चात् रोगी की मृत्युत्तर परीक्षा हुई हो तो उसका भी उल्लेख करते हुए सम्पूर्ण विवरण लिखे।

## प्रथम योजना

विविध अभिघात, सद्योघात ( Injuries )

एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार

आधार

इतिवृत्त—

वर्तमान दशा—आघात के पूर्व की स्थिति।

घटना की अवधि ( Duration since occurrence )।

सद्योघात की तीव्रता ( Severity of injury )।

तात्कालिक प्रभाव ( Immediate effect )।  
स्थिति ( Situation )।

मर्माहत, मर्माघात, मर्महत, मर्माभिघात ( Shock )  
कोटि ( Degree ) तत्काल हुआ या देर से  
( Occurring atonce or later )।

व्रण की ( Wound ) उपस्थिति या अनुपस्थिति।  
रक्तस्राव : कोटि, यदि उपस्थिति हो, तो उसका  
प्रकार ( Type )।

पूति ( ( Sepsis )।

कर्म-गुण-हानि या बाधा ( Functional Disturbance )।

**दैहिक या शारीरिक परीक्षा—**

**सार्वदैहिक**—मुखाकृति से अवसाद ( Shock ) की कोटि ( Degree ) का निर्धारण, नाड़ी, ताप तथा रक्त-निपीड ( Blood pressure ) आदि ।

**स्थानिक**—अंग की ( क ) बनावट ( Structure ) तथा (ख) कर्म ( Function ) के ऊपर निर्भर करता है ।

( क ) बनावट : दर्शन—व्रण है या नहीं ।

व्रण की उपास्थिति में : स्थिति ( Situation ), परिमाण ( Size ) तथा प्रकृति ( Nature ) गहराई के अंगों की क्षति ( Involvement of deeper parts ) जैसे नाड़ी ( Nerves ) कण्डरा ( Tendons ), आन्तरिक अवयव ( Viscera ) आदि ।

रक्तस्राव : मात्रा ( Amount ), सक्रिय या अन्यथा ( Active or not ) ।

व्रण की अनुपस्थिति में : रक्तस्राव, रक्तसञ्चय ( Ecchymosis ) या अंतः रक्तस्राव के प्रमाण ( Evidences of Internal Haemorrhage ) ।

गहराई के अंगों की क्षति ( अस्थि, नाड़ी, रक्तवाहिनी, आन्तरिक अवयव आदि ) ।

पूति का प्रमाण ( Evidence of sepsis ) ।

**स्पर्शन**—पीडनाक्षमता, स्पर्शनासह्यता या स्पर्शनाक्षमता ( Tenderness ), जाड्य या काठिन्य ( Rigidity ), अस्थि का घात ( Bone injury ), वातस्त्वृति ( Emphysema ) आदि ।

**अङ्गुलिताडन**—वक्ष एवं उदर ( Chest & Abdomen ) जल या वायु ( Fluid or gas extravasation ) की आस्त्वृति ।

**श्रवण**—वक्ष ।

( ख ) सम्पूर्ण वातनाडी संस्थान ( Nervous system ) ।

**दर्शन  
स्पर्शन  
अङ्गुलिताडन  
श्रवण**

हृदय तथा रक्तवह संस्थान ( Cardiovascular system ) ।  
श्वसन संस्थान ( Respiratory system ) ।  
पचन संस्थान ( Alimentary system ) ।  
प्रजनन एवं मूत्र संस्थान ( Genitourinary system ) ।  
अस्थि एवं सन्धि संस्थान ( Osseous system ) ।  
मांस पेशी संस्थान ( Muscular system ) ।

**विविध अभिघात-सद्योवात एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार**

( Injuries in General : Special feature )

**विस्तार**

**इतिहास —**

**वर्तमान दशा**—रोगी के चोट लगने के पूर्व की स्थिति का सम्यक् ज्ञान करना चाहिए । इसके लिए रोगी तथा उसके सम्बन्धियों से आघात के पूर्व-स्थिति का विशद विवरण लेना चाहिए । कई बार रोगी का वर्तमान आघात

१. प्राचीन ग्रन्थकारों ने “इजूरोज इन जेनरल” के अर्थ में सद्योव्रण शब्द का प्रयोग किया है । सद्योव्रण के अव्यय में व्याख्या करते हुए लिखा है—नाना आकार के शखों से शरीर के नाना स्थानों पर लग जाने से नाना रूप के जो व्रण ( आकस्मिक दुर्घटनाओं में ) हो जाते हैं उन्हें सद्योव्रण कहते हैं :—

नाना धारा मुखैशखैर्नाना स्थान निपातितैः ।

नाना रूपा व्रणा ये स्यु स्तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ सु० चि० २ ।

उसके पूर्ववर्ती रोग के परिणामस्वरूप होता है। जैसे अपस्मार के रोगी में दौरे के समय में अचेतन अवस्था में उसको आग, पानी या अन्य भौति के आघातों की सम्भावना रहती है।

वैसे ही यदि रोगी के आघात से पूर्व किसी विषाक्त या मादक द्रव्य से अस्वाभाविक स्थिति हुई हो तो उसका भी चिकित्सक को पूर्व ज्ञान कर लेना चाहिए। जैसे मद्यपान के पश्चात् रोगी यदि किसी सवारी से गिरकर चोट खाये हो तो उसके अभिघात के उपचार के साथ उसके मद्यजन्य विष की भी चिकित्सा करनी चाहिए।

इस सद्योत्रण के अध्याय से पृथक् करके दग्ध ( Burn ) का वर्णन स्वतन्त्र अन्यत्र सु० सू० १२ में पाया जाता है। आधुनिक वर्गीकरण के अनुसार बंजुरीज में इन सभी प्रकार के अभिघातों का एक ही संज्ञा के मोतर समावेश कर लिया गया है। अतएव "इंजुरीज इन जेनरल" के पर्याय रूप में इस पुस्तक में एक अभिनव शब्दसद्योघात या अभिघात का व्यवहार किया गया है।

सद्योत्रण ( Accidental Injuries Physical ) का ही बड़ा विशद वर्णन तथा व्यावहारिक उपचारों का उल्लेख सुश्रुत संहिता में मिलता है। यहाँ पर संक्षेप में इन संज्ञाओं का दिग्दर्शन कराया जा रहा है। सद्योत्रण ६ प्रकार के होते हैं :—

— छिन्न-भिन्न तथा विद्धं क्षतं पिच्चितमेव च।

घृष्टमाहुस्तथा षष्ठं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥

छिन्न ( Injury by sharp instruments resulting in partial or complete amputation ), भिन्न ( Deep punctured wound ), विद्ध ( Superficially punctured wound ), क्षत ( Incised wound ), पिच्चित ( Contused wound or Contusion ), घृष्ट ( Lacerated wound ), इन विभेदों के अतिरिक्त कई अन्य अभिघातों का विशिष्ट देह ( Multiple dislocations ), मथित ( Crushed or Blunt injury ), पतित ( Due to fall from height ) का उल्लेख मिलता है। इन अभिघातों के साथ मिलने वाले प्रमुख उपद्रवों जैसे मर्माभिघात या मर्माघात या मर्माहत ( Shock ) तथा कोष्ठगत रक्तस्राव ( Internal Hemorrhage ) का भी वर्णन एवं चिकित्सा का उल्लेख पाया जाता है। आधुनिक शाल्यतन्त्र में प्रचलित शब्द 'शाक' के लिये सुश्रुतोक्त मर्माघात या मर्माहत शब्द ( सु० चि० ३ ) का ही प्रयोग अविकल रूप से इस पुस्तक में हुआ है। क्योंकि लक्षण एवं चिकित्सा के उल्लेखों का आधुनिक विचारों के साथ साम्य है।

इसके अतिरिक्त सद्योत्रण के अध्याय में अन्यान्य नेत्रगत, आन्त्रगत, मुष्कगात्र ( Testes ) तथा शिरोगत ( Brain Injury ) का भी विशद उल्लेख मिलता है, जिनका विस्तारभय से उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

अभिघात की कालमर्यादा का पता रोगी से या उसके अभिभावकों से ले लेना चाहिए। क्योंकि इस समय के ज्ञान के ऊपर ही चिकित्सा के मूल सिद्धान्त निर्भर हैं। जैसे यदि कोई अस्थिभग्न का रोगी तुरन्त आ गया हो या कुछ दिनों के अनन्तर आया हो तो उस स्थिति में चिकित्सा की प्रणाली द्विविध हो जाती है।

जैसे तुरन्त आए हुए रोगी में आघात के परिणामस्वरूप मर्माहत के लक्षण उपस्थित रहते हैं। ऐसी अवस्था में चिकित्सक का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह सर्वप्रथम मर्माघात ( Shock ) की चिकित्सा करे तत्पश्चात् स्थानिक अभिघात की। यही सावधानी यदि रोगी जल कर आया हो तो भी रखनी चाहिए। यदि अभिघात का रोगी कुछ दिनों के बाद आया हो तो उसमें तत्स्थानगत विकृति का निरीक्षण करके यथायोग्य चिकित्सा की व्यवस्था करनी पड़ती है।

हेतु की प्रकृति ( Nature of cause )—साधारणतया मर्माभिघात मुख्यतया दो प्रकार के हैं। ( १ ) भौतिक ( Physical ) चोट लगने से ( विभिन्न प्रकार के यन्त्र शस्त्रों से ) या आकस्मिक दुर्घटनाओं से होनेवाले सद्योघात। ( २ ) रासायनिक, वैद्युतिक, उष्णद्रव्य तथा अग्नि से उत्पन्न दग्धव्रण।

१. 'एक्सिडेंटलबर्न' के प्राचीनों ने इतरथा दग्ध या प्रमाद दग्ध शब्द का प्रयोग किया है। इतरथा दग्ध के दो प्रकार बतलाये गये हैं—स्नेहदग्ध ( Burn ) तथा रुद्धदग्ध ( Scalds )। पुनः दग्ध की चार अवस्थाओं ( Stages ) का भी उल्लेख किया है—प्लुष्ट ( Ist Stage ), दुर्दग्ध ( IInd Stage ), सम्यक्दग्ध ( III Stage ) तथा अतिदग्ध ( IV, V and VI Stages ) का विशद वर्णन तथा चिकित्सा का विस्तृत विधान किया है।

इसके अतिरिक्त अग्नि-व्यतिरिक्त दाहों का भी विशद वर्णन पाया जाता है। जैसे रासायनिक द्रव्यों के द्वारा जल जाने से उत्पन्न दग्ध व्रण जैसे :—( १ ) तीव्र चार या अम्लों से उत्पन्न दग्ध व्रण—चार दग्ध ( Chemical Injuries )। ( २ ) अति तेज दग्ध या इंद्र वज्रदग्ध, प्राकृतिक आकाशीय विद्युद्दाह या कृत्रिम विद्युद्दाह। इनमें अति तेज दग्ध को ( Electrical Burn ) तथा इंद्र वज्र दग्ध को ( Lightning ) कह सकते हैं। तथापि प्रचलित शब्दों में वैद्युतिक दाह नामक शब्द का ही प्रयोग ( Electrical Burn ) के पर्याय रूप पुस्तक में किया गया है। ( ३ ) धूमोपहत—धूम से जलना ( Carbon Dioxide or Monoxide Poisoning )। ( ४ ) ऊष्ण वातातप दग्ध—सूर्य या अग्नि उष्णता मात्र से जल जाना ( Sun Burn, Heat Burn, Sun Stroke and Heat Stroke )। ( ५ ) शीत वर्षा निलदग्ध ( Frost Bite )—शीतल वायु या बर्फीली हवा से जल जाना। सु० सू० ११, १२।

(Trauma due to Chemical & Electrical agents)। यदि सद्योघात प्रथम वर्ग का हो तो उसमें विकृति प्रत्यक्ष आघात से हुई है या नहीं इसका अनुमान कर लेना चाहिए, जैसे सवारी से गिरने पर अक्षक (Clavicle) बाहु या कशेरुक के भ्रम अत्रत्यक्ष आघात जन्य होते हैं। तथा डण्डे या लाठी या किसी शस्त्र की चोट से या ऊपर से सिर के बल गिरने पर होने वाले कपोलास्थियों का या करोटि की अस्थियों का भ्रम प्रत्यक्ष आघात के उदाहरण हैं।

**आघात का स्थान, तात्कालिक परिणाम तथा तीव्रता (Severity)**—इसमें आघात यदि दूसरे वर्ग के कारणों से हुआ हो तो उसमें वह किस अवस्था का है इसका ज्ञान कर लें। जैसे दग्ध व्रणों में दग्ध का प्रभाव ऊपर के चमड़े से लेकर हड्डी तक हो सकता है। वैसे ही वह शरीर के किस भाग में व्याप्त है, सम्पूर्ण शरीर का कितना भाग उसके द्वारा आच्छादित है इससे रोगी की साध्यासाध्य विवेचना में सहायता मिलती है। जैसे दग्ध यदि साधारण भी हो तो प्लुष्ट प्रकार (साधारण चमड़े का झुलस जाना), परन्तु वह यदि शरीर के तृतीयांश भाग से ज्यादा व्याप्त हो तो रोग की गम्भीरता सूचित होती है। यदि दग्ध भाग शरीर के मुखमण्डल, वक्ष, गला और पेट पर हो तो वह भी गम्भीरतासूचक ही है। यदि दग्ध सम्पूर्ण मांस पेशियों को नष्ट करके अस्थि तक पहुँच गया हो तो वह सीमित क्षेत्र में रहते हुए भी गम्भीर होता है।

साधारण भ्रम या आघात यदि शाखाओं के हों तो वे भयंकर नहीं समझे जाते; परन्तु यदि वक्ष, उदर, शिर के हों तो इनके अन्दर के अवयवों का मूक आघात हो सकता है। जैसे पशुकास्थियों के विद्ध (Penetration) भ्रम से वक्ष गुहा के अन्दर फुफ्फुसावृति, फुफ्फुस और हृदय को, वैसे ही उदरस्थित यकृत, प्लीहा तथा महाप्राचीरा प्रभृति मर्माङ्गों को हानि पहुँच सकती है।

श्रोण्यस्थि के भ्रमों में भीतरी अङ्गों को जैसे मलाशय, वस्ति, अन्त्र आदि को हानि पहुँच सकती है। वैसे ही कपालस्थियों के अवनत (Depressed), भ्रम शिरो गुहागत मस्तिष्क मस्तिष्कावरण, धमनी और शिरा कुल्याओं (Sinuses) को हानि पहुँचा सकती है।

आघातजन्य होने वाले तात्कालिक प्रभावों को भी ध्यान से देखना चाहिए। शिरोभिघात के पश्चात् रोगी का वेहोश हो जाना तथा मुख, नासा, नेत्र एवं कान से रक्तस्राव का होना। कशेरुकाओं के भ्रम या विच्युति में

तत्क्षण अङ्गघात का पाया जाना। पशुकास्थियों के भ्रमों में श्वास कृच्छ्र का होना, बाहु के भ्रम में मणिबन्ध संस (Radial palsy) या शाखाओं के भ्रम में उन अङ्गों का कार्य में अक्षमता स्वकर्मगुणहानि।

**मर्माहत (Shock) की उपस्थिति एवं उसकी तीव्रता**—साधारणतया आघात के पश्चात् रोगी में यह अवस्था पाई जाती है। जिसका निदान निम्न लक्षणों से होता है—

१—रक्त निपीड़ का कम होना। यह साधारण व्यक्तियों में जब ८० मिलीमीटर से नीचे हो जाता है तो वह गम्भीरतासूचक होता है। यह रक्तस्राव, केशिकाओं में रक्त का इकट्ठा हो जाना, शिरा द्वारा रक्त का हृदय में पूर्ण मात्रा में न पहुँचना या हृदय के स्थानिक रक्त सञ्चार में बाधा उत्पन्न होने से होता है। इसका कारण आघात जन्य स्थान में उत्पन्न होने वाले धातुनाश जन्य विष (Histamins)।

२—नाड़ी गति की तीव्रता तथा यति (Volume) एवं तति (Tension) की कमी। नाड़ी की गति यदि १४० से ऊपर हो तो यह गम्भीरतासूचक होती है।

३—श्वास—रोगी श्वास जल्दी-जल्दी एवं अनियमित स्वरूप का लेता है। उच्छ्वास और निःश्वास की काल मर्यादा की कमी एवं दोनों के बीच के समय का लम्बा हो जाना भी पाया जाता है।

४—मुख की आकृति बदल जाती है। उसका वर्ण फीका पड़ जाता है। आँखें अन्दर की ओर धँस जाती हैं तथा आँखों का तेज (Lusture) जाता रहता है। आँखें उलट जाती हैं। हन्वस्थि नीचे लटक जाती है और मुख-विवर अपूर्ण तथा खुला रहता है। ओष्ठ श्वेत पड़ जाते हैं और नाक मुरभा जाती है।

५—त्वचा—चमड़ी का फीकापन, हाथ पैर का डण्डा पड़ जाना और रोगी के शरीर से पसीना आने लगता है।

६—ताप—शरीर का तापक्रम प्राकृत से कम हो जाता है।

७—मस्तिष्क संस्थान—गात्र शैथिल्य, अर्ध चैतन्य शारीरिक प्रतिक्रियाओं (Reflexes) की मन्दता।

अपर निर्दिष्ट लक्षणों की विवेचना के आधार पर मर्माघात (Shock) के तीव्रतातीव्र होने का निश्चय किया जाता है। इसका निश्चय करते समय

निम्नवातों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। जैसे एक सप्ताह तक के बच्चों में मर्मघात की तीव्रता कम रहती है। बड़े बच्चों में मर्मघात की तीव्रता अधिक पाई जाती है। परन्तु जैसे जैसे आयु बढ़ती जाती है उसकी तीव्रता भी अपेक्षाकृत क्रमशः घटती जाती है और वृद्धों में बहुत ही कम पाई जाती है। इसका कारण यह है कि धमनियों की कठिनता के कारण से रक्त-निपीड़ उनमें अधिक क्रम नहीं हो पाता। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में मर्मघात की तीव्रता कम होती है। संस्कृत जातियों में असभ्य जातियों की अपेक्षा मर्मघात की तीव्रता अधिक होती है। उत्तर रात्रि में होने वाले अभिघातों में दिन में होने वाले अभिघातों की अपेक्षा मर्मघात की तीव्रता अधिक रहती है। क्योंकि शारीरिक सभी धातु दिन के परिश्रम के अनन्तर रात्रि में पूर्णतया शिथिल से रहते हैं। यदि रोगी आघात से पूर्व किसी प्रकार के दुःस्वास्थ्य से पीड़ित हो तो उस अवस्था में भी मर्मघात तीव्र स्वरूप का होता है।

ऊपर किए हुए वर्णन को प्राथमिक मर्मघात ( Shock ) कहते हैं। और आघात के सात या आठ रोज के पश्चात् यदि उपर्युक्त लक्षण मिलें तो उसे औपद्रविक मर्मघात ( Shock ) कहा जाता है।

औपद्रविक मर्मघात (Shock) का हेतु साधारणतया स्थानिक रक्तसाव, जीवाणु-जन्य विषमयता अथवा शल्यकर्म से उत्पन्न अभिघात होता है। व्रण (Wound)—आघात के स्थान पर व्रण की उपस्थिति है या नहीं, यदि है तो उसकी गहराई, लम्बाई और चौड़ाई का मान तथा उससे उत्पन्न धातुओं की विकृति का अनुमान कर लेना चाहिए। व्रण से या आघात स्थल से रक्तसाव हो रहा है या रोगी के पहुँचने के पूर्व कितना हो चुका है इसका अनुमान लगा लेना चाहिए तथा उसमें पूति जीवाणुओं का उपसर्ग हुआ है या नहीं इसकी भी निश्चित कर लेनी चाहिये।

**स्वकर्मगुणहानि ( Functional Disturbances )**—जिस स्थान पर आघात हो उस स्थान के अनुसार अथवा आघात के समीप या दूरवर्ती अंगों पर पड़े हुए विकृत प्रभावों के ऊपर अवलम्बित है। उसका वर्णन ऊपर संक्षेप में हो चुका है। पर अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरणों का देना असंगत नहीं। जैसे मूलाधार के प्रादेशिक आघातों में प्रसेक के कलामय भाग ( Membranous portion of the urethra ) के फट जाने की सम्भावना रहती है। ऐसी दशा में रोगी मूत्र त्याग करने में असमर्थ रहता है।

**दैहिक परीक्षा (Physical Examination)**—आघात के रोगियों में सर्व प्रथम यह देखना आवश्यक होता है कि उसमें मर्मघात ( Shock ) की उपस्थिति है कि नहीं। इसका निदान तथा तीव्रता का ज्ञान ऊपर बताया गए लक्षणों से हो सकता है। इसके लिए रोगी की मुखाकृति, नाड़ी, श्वास, रक्तनिपीड़, ताप प्रभृति बातों पर ध्यान देना चाहिए। और रोगी की स्थिति के अनुसार उनका प्रति घंटे के माप का उल्लेख अवश्य करना चाहिए। जैसे शिरोभिघात में यदि रोगी के आघात के पश्चात् बेहोश होने का इतिहास मिलता है तो उसमें अन्तः रक्तसाव (Internal Haemorrhage) की सम्भावना रहती है। ऐसे रोगियों में प्रति १५ मिनट पर नाड़ी, श्वास, निपीड़ आदि का नोट करना आवश्यक है।

**स्थानिक परीक्षा (Local Examination)**—में आघातित अंग की विकृति और उसकी गुण कर्म हानि को देखना चाहिए। वह अंग अपने विशेष कर्म में समर्थ है या असमर्थ है।

**दर्शन**—व्रण की उपस्थिति या अनुपस्थिति ( Situation ), विस्तार ( Extention ), आकार, गहराई, साव ( Discharge ) प्रभृति बातों का वर्णन करना चाहिये। प्रत्येक व्रण को अलग-अलग इञ्चों में नाप कर लिखना चाहिए। आघात से यदि किसी विशिष्ट धातुओं को क्षति पहुँची हो तो उसको भी नोट कर लेना चाहिए। जैसे कण्डराएँ ( Tendons ), धमनी, नाड़ी, सिरा, अस्थि अथवा अन्य आघात, समीपवर्ती आन्तरिक अङ्गों की क्षति।

यदि रक्तसाव हुआ हो तो वह कितनी मात्रा में हुआ है, किस कोटि का है इसका भी लिखना जरूरी है। यदि आघात से व्रण उत्पन्न न होकर उस भाग में केवल सूजन आई हो और वहाँ की त्वचा की सवर्णता ( वर्ण-आकृति ) में परिवर्तन हुआ हो तो उसका आकार, स्थान एवं परिमाण (Size, shape & situation ) को भी लिख लेना चाहिए।

यदि व्रण से साव हो रहा हो तो वह किस प्रकार का है और कितनी मात्रा में है उसे भी लिख लें। साव का वर्ण, गंध, एवं परिमाण का ठीक ठीक यथा-संभव पता लगाना चाहिये।

**स्पर्शन**—यदि आघात शाखाओं पर स्थित है तो सन्धियों की गतिशीलता या उनकी किसी विशेष गति से जाड्य ( Rigidity ) उपस्थित है या नहीं इस बात का ज्ञान भी तत्स्थान गत सन्धियों को चलाकर कर लेना चाहिए और

उसे अंशों में नोट कर लेना चाहिए । जैसे कूर्पर सन्धि के समीप के आघातों में वह कितने अंशों तक में फैल या मुड़ सकता है इसे देख लेना चाहिए ।

आघात जन्य स्थान में दबाने से रोगी पीड़ा का अनुभव करता है और कई बार बहुत जोर से दबाने से पर ही रोगी को पीड़ा का अनुभव होता है ( Tenderness on deep pressure ) ।

यदि आघातका स्थान वक्ष पर या उससे सम्बन्धित स्थान पर हो तो समीप-वर्ती त्वचा को दबाकर देखना चाहिये कि वहाँ पर किसी प्रकार की स्पर्शिक अनुभूति या चुर्चुराहट तो नहीं है, यदि मालूम हो तो उसे सावधानी से देखना चाहिए कि उसका विस्तार कहाँ तक है ( Surgical emphysema ) ।

**अंगुलिताडन**—विशेषतः वक्ष एवं उदर के आघातों से उत्पन्न हुई अन्तरिक अवयवों की स्थिति इस परीक्षा से ठीक ठीक ज्ञात होती है । जैसे उदर गुहा या वक्ष गुहा में द्रव या वायु की उपस्थिति का ज्ञान ।

**श्रवण**—इस परीक्षा का भी महत्त्व सार्वदैहिक परीक्षा के अतिरिक्त आघात से उत्पन्न हुई उदर एवं वक्ष की विकृतियों के निदान में है । इस परीक्षा के आधार पर इन अङ्गों के विकारों का विनिश्चय किया जाता है ।

उपर्युक्त परीक्षाओं के अतिरिक्त विभिन्न संस्थानों की सम्पूर्ण परीक्षा कर लेनी चाहिए जिससे कभी कभी आघात से उत्पन्न स्थानिक उपद्रवों के अलावे होने वाले दूरवर्ती स्थानों के उपद्रवों की उपस्थिति का निदान हो सकता है ।

**वातनाड़ी संस्थान**—प्रतिक्रियाओं ( Reflex ) की परीक्षा तथा आघातजन्य स्थान से सम्बन्धित नाड़ियों ( Nerves ) के कर्मों की परीक्षा :—

हृदय एवं रक्तवह संस्थान, श्वसन संस्थान, पचन संस्थान, मूत्र एवं प्रजनन संस्थान, अस्थि सन्धि संस्थान और स्नायु कण्डरा संस्थान ।

**चिकित्सा ।**

## द्वितीय योजना

### विविध ब्रणशोफ तथा तत्संबन्धी विशेष विचार

#### आधार

इतिवृत्त—

वर्तमान दशा या वृत्त—अवधि ।

हेतु यदि कोई हो ( Cause assigned if any ) ।

**सार्वदैहिक**—ज्वर : लुधा, तृषा, शिरःशूल, मलमूत्र प्रवृत्ति आदि ।

**स्थानिक**—स्थिति

पीडा—आत्मलिङ्ग ( Character ); तीव्रता, अङ्ग के उठाने या लटकाने पर उसका प्रभाव ( Effect of dependency or elevation), विशेषतः रात्रि में या दिन में ।

उत्सेध या सूजन—आत्मलिङ्ग ।

लालिमा ( Redness ) ।

ऊष्मा, उष्णता ( Heat ) ।

स्वकर्म गुणहानि ( Impairment of Function ) ।

**पूर्व वृत्त**—पहले के दौरे या आक्रमण ( Attack ) का इतिहास ।

**दैहिक परीक्षा**—

**सार्वदैहिक**—ब्रण शोथ जन्य ज्वर का प्रमाण ( Evidence of inflammatory fever ) ।

**स्थानिक—****दर्शन**—लालिमा ( विस्फारित शिरायें ) ।

उत्सेध या सूजन ।

कर्म गुण-हानि ।

**स्पर्शन**—ऊष्मा ।पीडनात्मता या स्पर्शनात्मता ( *Tenderness* ) ।

कर्म-गुण-हानि ।

शोफ ( *Oedema* ) ।तरङ्ग प्रतीति ( *Fluctuation* ) ।**अंगुलिताडन तथा श्रवण**—विशेष अवस्थाओं में ।**दृश्य-परीक्षणें ( Special Examinations )—**रक्त-सकल तथा सापेक्ष श्वेत कायानुगणन  
( *Differential and total Leucocyte count* ) ।तृणान्विक परीक्षा ( *Bacteriological* )—  
रञ्जन विधि या कृत्रिम सम्बर्द्धन विधि से  
( *Stained film or blood-culture* ) ।कान या वाशरमैन की कसौटी ( *Test* )  
क्ष-किरण ( *X-Ray* ) ।**विशेष लक्षण तथा चिह्न ( Cardinal points )—****विविध व्रण-शोफ तथा तत्सम्बन्धी विशेष विचार****इतिवृत्त**—शोफ की अवधि एवं कारण यदि रोगी बता सकता है तो इसका उल्लेख करना चाहिये । अवधि के ऊपर शोफ की तीव्रता या जीर्णता

१. शोफ या शोथ का शाब्दिक अर्थ है फूलना या सूजन होना । यह दो प्रकार का होता है । सक्रिय ( *Active* ) तथा निष्क्रिय ( *Passive* ) । सक्रिय स्वरूप के शोफों को व्रण शोफ तथा अन्य विविध हेतुओं से उत्पन्न निष्क्रिय शोफों ( *Oedema* ) । को केवल शोफ शब्द से व्यञ्जित किया जाता है । प्राचनों ने इनके दो प्रधान भेद बतलाये हैं । ( क ) एक देश में स्थिर रहने वाला । ( ख ) सर्वसर ( एकाङ्ग, अर्धाङ्ग या सर्वाङ्ग में एक स्थान से प्रारम्भ होकर क्रमशः फैलने वाला ) ।

निर्भर होती है । गहराई में स्थित शोफों में उभार कुछ समय के पश्चात् व्यक्त होता है । जीर्ण शोफों में अवधि ज्यादा रहती है एवं तीव्र शोफों में वह कम रहती है । जैसे क्षय और फिरङ्गजन्य शोफों की अवधि लम्बी, परन्तु पूयजनक जीवाणुओं के उपसर्ग से होने वाले शोफों में अवधि कम होती है । कठिन अङ्गों में होने वाले तीव्र शोथों में अवधि, मृदु अंगों में होने वाले शोथों की अपेक्षा ज्यादा रहती है । इनमें स्थानिक लक्षणों के अतिरिक्त सार्वदैहिक लक्षण अधिक तीव्र होते हैं । जैसे अस्थिमज्जापाक तथा अस्थ्यावरण शोथ में ।

शोफ युक्त अंग के कार्यों के अनुसार कारण का पता लगा सकते हैं जैसे

एक स्थान में स्थिर रहने वाले शोफ का दूसरा नाम अवयव समुत्थ भी है । दोषों के भेद से इसके छः प्रकार बतलाये गये हैं; परन्तु सर्वसर शोफों के केवल पाँच ही भेदों का उल्लेख हुआ है । सर्वसर शोफों का वर्णन कायचिकित्सा ( *Medicine* ) के ग्रन्थों का लक्ष्य है, प्रस्तुत विषय ( शल्यतन्त्र ) में अवयव समुत्थ या एकदेशोत्थिक शोफों का ही वर्णन प्रासङ्गिक है । अवयव समुत्थ शोफ के लिये एक स्वतन्त्र शब्द व्रण-शोफ का ग्रहण अधिक समाचोन है । अतएव *Inflammatory Oedema or Inflammation* के पर्याय रूप में व्रणशोफ का ही ग्रहण प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है ।

व्रण-शोफ की सौश्रुतीय व्याख्या इस प्रकार की है—“त्वचा और मांस में स्थित रहने वाला दोष सङ्घात; जो शरीर के किसी एक स्थान पर मोटा या गॉंठदार, सम या विषम उत्सेध ( उभार ) पैदा करे और जिसके परिणामस्वरूप ग्रन्थि ( *Adenitis* ), विद्रधि ( *Abscess* ), अलजो ( *Furunculosis* ) प्रभृति रोग प्रायः हो जावें; व्रण शोफ कहलाता है ।”

शोफ में स्थानिक तथा सार्वदैहिक लक्षण पाये जाते हैं । स्थानिक लक्षणों में दोष निरपेक्ष पाँच लक्षण-रक्त वर्णता या लौहित्य ( लाली ), ऊष्मा, वेदना, उत्सेध ( सूजन ) तथा स्वकर्म गुणहानि ( *Loss of Function* ), इनमें तीन अवस्थायें आभावस्था ( *Inflammatory Oedema* ) पच्यमानावस्था ( *Stage of Pus formation* ) तथा पक्वावस्था विद्रधि ( *Abscess* ) पाई जाती है ।

( सु० सू० १७ )

हेतु भेद से शोफों के पुनः दो प्रकार प्राचनों ने बतलाये हैं । निज तथा आगन्तुक । इनमें आगन्तुक कारणों की प्रधानता व्रणशोफोत्पत्ति में रहती है । आधुनिक विज्ञान व्रणशोफों में आगन्तुक कारणों को उत्पादक मानता है । “गह्वर स्वचो दूषयिता-भिघातः काष्ठाश्म शस्त्राग्नि विषायसाद्यैः आगन्तु हेतुः ।”  
च० चि० १२ )

आमाशयशोथ अधिक गर्म एवं मसालेदार भोजन से, यकृतच्छोथ मेदयुक्त पदार्थों के सेवन से, अस्थियों के आघात के पश्चात् या त्वचा में होने वाले शोथ किसी प्रकार से कटने या चुभने के पश्चात्, अँगुलियों में होने वाले शोथ किसी शल्य के प्रविष्ट हो जाने से, अथवा मस्तिष्कगत शोथ बहुधा औपद्रविक स्वरूप के होते हैं। उनमें कभी-कभी आघात से ( *Infected Haematoma* ) या दूरवर्ती स्थानों से लाये गये पूयकणों के द्वारा ( *Metastatic brain abscesses* ) शोफ उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार ठण्ड लग जाने से ( *Exposure to cold* ) कई शोफजनक व्याधियाँ जैसे फुफ्फुस, हृदय, अस्थियों के वायुविवर, यकृत प्रभृति अंगों की उत्पन्न हो जाती हैं।

**सार्वदैहिक लक्षण**—स्थानिक शोथ के परिणामस्वरूप सार्वदैहिक लक्षण पाये जाते हैं। इनकी तीव्रता शोफ की दशा के अनुसार कम या अधिक हो सकती है। जिन अङ्गों पर शोफ स्थित होता है उन अंगों के विशेष लक्षण पाये जाते हैं। इसलिए स्थानिक शोफ का रोगी के सम्पूर्ण शरीर पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ा है इस बात को देखना आवश्यक होता है, जिसमें निम्नलिखित बातों का विचार करना चाहिये। जैसे ज्वर, लुधा, तृषा, शिरःशूल, अंगमर्द, विबन्ध आदि का।

**स्थानिक परीक्षा**—स्थान-रोगी के किस अंग में शोफ की उपस्थिति है? उस स्थान का समीपस्थ तथा दूरवर्ती स्थानों से क्या सम्बन्ध है इस बात का ज्ञान करे। जैसे फुफ्फुसावृत्ति शोथ में फुफ्फुस के ऊपर दबाव से होने वाले चिह्न तथा श्वास कृच्छ्र, उदरशूल प्रभृति लक्षणों एवं चिह्नों का रोगी से पूछ कर पता लगाना चाहिये। जैसे यकृत विद्रधि में स्थानिक लक्षणों के अतिरिक्त यकृत के कार्य में बाधा पड़ने से कामला रोग हो सकता।

**पीड़ा**—विशिष्ट प्रकार - सुइयों के वेध के समान, चीटियों के रेंगने के

१. ब्रणशोफ को पच्यमानापस्था में वेदना या पीड़ा का अनुभव रोगी को होता है। इस वेदना का व्यञ्जन रोगी कई शब्दों में करता है। उसकी विस्तृत विवेचना प्राचीन ग्रन्थों में की है। *Type or Nature or Characteristic of Pains* के इतने प्रकारों का वर्णन किसी आधुनिक ग्रन्थ में भी सम्भवतः उपलब्ध नहीं है। पाठकों के कुतूहल के निवारण के लिये यहाँ पर अविकल रूप में उसी का समुद्रण प्रस्तुत किया जा रहा है :—

“सूत्रोभिरिव निस्तुद्यते, दश्यत इव पिपीलिका भिस्ताभिश्च संसर्पत इव, भिद्यत इव

समान, चीटियों के काटने के समान, डण्डे से चोट लगने के समान, हाथों या अँगुलियों से मरोड़ने के समान, अग्निचार से जलाये जाने के समान या टपक प्रभृति वेदनाओं का सम्यक् ज्ञान रोगी से पूछ कर करे।

विद्रधि से उत्पन्न पीड़ा में टपक अधिक रहती है, यकृतच्छोफ में निरन्तर होने वाली मन्द स्वरूप की वेदना यकृत प्रदेश में रहेगी। आमाशयिक शोफ में जलन रहेगी। अस्थि शोफों में गहराई में स्थित तीव्र स्वरूप की फड़कने की सी ( *Throbbing* ) वेदना मिलेगी। फुफ्फुसावृत्ति शोफ में घर्षणवत् वेदना ( *Rubbing pain* ) और मस्तिष्कगत शोफों में दबाया जा रहा है—उस प्रकार का अनुभव रोगी को होता है। स्तन विद्रधि में टपकन के साथ स्थानिक गुरुता ( भारीपन ) का अनुभव होगा।

इसके पश्चात् रोगी से यह पूछना चाहिये कि उस भाग के लटकाने से पीड़ा की वृद्धि होती है और ऊपर उठाने से कमी होती है या नहीं? जैसे शाखाओं में स्थित मृदु अंगों के शोफों में रोगी को उस शाखा को ऊपर उठा कर रखने में आराम मिलता है और उसे लटकाने पर पीड़ा की वृद्धि होती है ( गुरुत्वाकर्षण से होने वाले स्थानिक रक्ताधिक्य के कारण )। पीड़ा दिन में अधिक होती है या रात्रि में इस बात की भी जानकारी रोगी से पूछ कर लेनी चाहिये। सन्धि एवं अस्थियों के शोफों में रात में पीड़ा अधिक होती है।

रोगी से यह पूछ कर पता लगाना चाहिये कि शोफ के कारण उसे किस क्रिया में बाधा उत्पन्न हुई है। साधारणतया जिस अंगका शोथ हो उस अंग का कर्म गुण-हानि का होना शोथ का विशिष्ट लक्षण है। सन्धियों के शोथों में उनके आकुञ्चन और विस्तार की असमर्थता, बस्ति तथा मूत्र प्रेषक शोथ में मूत्र त्याग की असमर्थता या पीड़ा तथा गुदा के शोफों में मल त्याग करते समय पीड़ा का होना पाया जाता है।

**पूर्ववृत्त**—रोगी को इसी प्रकार का शोथ या उसी अंग में पहले किसी और प्रकार का शोथ हुआ था या नहीं पूछकर पता लगाना चाहिये। जैसे आंत्रपुच्छ विद्रधि में आंत्रपुच्छ शोथ का वृत्त मिलता है, जीर्ण अस्थिमज्जापाक में अस्थि-

शस्त्रेण, भिद्यत इव शक्तिभिः, ताड्यत इव दण्डेन, पीड्यत इव पाणिना, घस्यत इव चांगुल्या, दह्यते पच्यत इव चाग्निचाराभ्यां, ओषचोष परीदाहाश्च भवन्ति, वृश्चिक विद्ध इव च स्थानासनशयनेषु शान्ति मुपैति। आध्मायवस्तिरिवाततश्चशोफो भवति।”

( सु० सू० १७ )

मजा विद्रधि का इतिहास और मस्तिष्क विद्रधि में फुफ्फुस विद्रधि का इतिहास मिलना सम्भव है। रोगी क्षय, फिरङ्ग आदि से पीड़ित तो नहीं रहा है, यह पूछ कर वृत्त लेना चाहिये।

### शारीरिक परीक्षा

**सार्वदैहिक**—प्रथम रोगी की सांस्थानिक परीक्षाओं को कर लेना चाहिये। जिसमें मुख, दाँत, ताप, श्वास, नाड़ी, मलमूत्र प्रवृत्ति, नेत्र, आकृति इत्यादि की परीक्षा कर लेनी चाहिये, जिससे शोफ के परिणामस्वरूप होने वाले सार्वदैहिक प्रभावों का ज्ञान हो सकेगा।

### स्थानिक परीक्षा

**दर्शन**—सर्वप्रथम रोगी ने शोफयुक्त अंग को किस स्थिति में रक्खा है उसको नोट करे। पश्चात् त्वचा का वर्ण, सूजन, तेज, तनाव, भ्रुर्रियाँ तथा इनकी उपस्थिति को नोट करे। इसके अतिरिक्त त्वचा के ऊपर की शिराओं की स्थिति तथा शोफयुक्त स्थान से जाने वाली लसीकावाहिनियों की स्थिति को भी ध्यानपूर्वक देखें। साधारण विद्रधि में त्वचा रक्तवर्ण की उभरी हुई तनावयुक्त रहेगी तथा विद्रधि की सीमा परिमित होगी। परन्तु विस्तृत पाक ( Cellulitis ) में शोफ विस्तृत एवं फैला हुआ मिलेगा। पाक स्थान के ऊपर के चर्म का तनाव किसी एक विशेष स्थान पर नहीं रहेगा। लसीकावाहिनी शोथ में शोफयुक्त स्थान से निकली हुई लसीकायै रक्त वर्ण की तथा उभरी हुई मिलेंगी। शिराओं में होने वाले शोथ के परिणामस्वरूप उसमें आकर मिलने वाली शिरायें विस्फारित रहेंगी।

**स्पर्शन**—ऊपर निर्दिष्ट निरीक्षणों की निश्चित स्पर्शन परीक्षा द्वारा की जाती है। स्थानिक तापक्रम, स्थानिक स्पर्श-जन्य पीड़ा का अनुभव, स्थानिक कार्य गुण-हानि, सूजन तथा तरंगप्रतीति प्रभृति बातों की परीक्षा करे। स्थानिक तापक्रम को परीक्षक अपने दाहिने हाथ की अँगुलियों के पृष्ठ भाग से शोफयुक्त स्थान का स्पर्श करके पश्चात् स्वस्थ भाग पर रखकर दोनों की तुलना के पश्चात् विनिश्चय करता है।

स्पर्शजन्य पीड़ा का स्वरूप क्या है? वह सामान्य स्पर्श मात्र से ही होती है या जोर से दबाने पर? लसीका वाहिनियों तथा शिराओं के शोथ में रोगी को स्पर्श मात्र से ही पीड़ा होती है। विद्रधि में स्थान को थोड़ा सा दबाने

पर पीड़ा होती है। गहराई में स्थित विद्रधि तथा अस्थिविद्रधि की पीड़ा का अनुभव उस स्थान पर काफी जोर से दबाव डालने पर होता है। यदि शोफ-युक्त स्थान चलायमान है तो रोगी को उस अंग की गति कराने से पीड़ा का अनुभव होता है या नहीं, इस बात का भी ध्यान रखे। पश्चात् विकृत अङ्ग से समीपवर्ति लसीका ग्रन्थियों की परीक्षा स्पर्शन द्वारा करे जिससे उनकी सूजन, उभार, वृद्धि, पीड़ा आदि का ज्ञान हो सके।

**उत्सेध, शोफ या सूजन**—व्रण-शोफों के परिणामस्वरूप वहाँ के चारों ओर की धातुओं में सूजन हो जाती है। इसका परिणाम विभिन्न अंगों के अनुसार विविध हो सकता है। जिस अंग के धातु शिथिल रहेंगे, जहाँ पर उत्तान और गम्भीर कलायें ( Fascias ) आपस में संसक्त नहीं हैं, वहाँ पर यह अधिक व्यक्त मिलेगा। इसके विपरीत दूसरे संसक्त धातुओं पर कम व्यक्त रहेगा। जैसे—फलकोष ( Scrotum ) में होने वाली विद्रधि में वहाँ समीपवर्ती चर्म पर अधिक सूजन मिलेगी; परन्तु अँगूठे और अँगुलियों में होने वाली ( Deep palmar abscess ) विद्रधियों में सूजन अपेक्षाकृत कम पाई जाती है। हाथ के तलवे में होने वाली विद्रधि में विद्रधि सामने की ओर होते हुए भी सूजन पीछे के भाग में अधिक पाई जाती है।

**तरंग-प्रतीति**—दोनों हाथों से की जाती है जिसमें उभार के ऊपर एक एक इञ्च के अन्तर पर दोनों तर्जनी अँगुलियों को रक्खा जाता है। पुनः दाहिने तर्जनी से दबाने पर वाम तर्जनी को तरंग की प्रतीति होती है। शाखाओं में होने वाली विद्रधि में तरंग प्रतीति दो दिशाओं में करके देखना चाहिये।

( १ ) लम्बाई की दिशा में (Longaxis) तथा (२) चौड़ाई की दिशा में। दोनों दिशाओं में तरंग की प्रतीति होने पर विद्रधि का निश्चित निदान हो सकता है। क्योंकि बहुत बार साधारण अवस्था में भी चौड़ाई की दिशा में तरंगप्रतीति मिलती है। जैसे उरु प्रदेश में।

**अँगुलिताडन एवं श्रवण**—वक्ष एवं उदर के शोफों में इनका विशेष महत्त्व है, अतएव उन्हीं शोफों में अँगुलिताडन के द्वारा परीक्षा करनी चाहिये।

**दृष्यादिकों की परीक्षा**—रक्त-परीक्षा में शोफ की अवस्था में सकल श्वेत कायाणु तथा उनका सापेक्षकण गणन कर लेना चाहिये। साधारणतया शोफों में श्वेतकायाणुत्कर्ष के साथ उनमें बहुकेन्द्रीय कणों के सापेक्ष वृद्धि मिलती है।

**पूय-स्त्राव**—इनकी साधारण रञ्जन ( फिल्म द्वारा ), कृत्रिम संवर्द्धन के ( Culture ) द्वारा परीक्षा कर लेनी चाहिये जिससे कारणभूत जीवाणु का निश्चित पता लग जावे ।

**वाशरमैन या कानकसौटी**—जिन शोफों में फिरंग की शङ्का हो उनमें सन्देह को इस परीक्षा द्वारा दूर कर लेना चाहिये ।

**क्षकिरण परीक्षा**—स्थानानुसार यदि आवश्यकता हो तो क्षकिरण चित्रण से परीक्षा कर लेनी चाहिये ।

**विशेष लक्षण एवं चिह्न ( Cardinal points )**—  
लालिमा, औष्ण्य-उष्मा, पीड़ा, सूजन और स्वकर्म गुण-हानि ।

## तृतीय योजना

### विविध अर्बुद एवं उत्सेध ( उभार ) एवं तत्संबन्धी विशेष विचार

#### आधार

#### इतिवृत्त—

- वर्तमान दशा** १—कव और कैसे इसका सर्वप्रथम अनुभव हुआ, अवधि ।  
२—अभिघात का वृत्त अथवा अन्य कारक हेतु ( Other assignable cause ) ।  
३—पीड़ा या वेदना—स्थिति एवं आत्मलिङ्ग ( Character and situation ) ।  
४—वृद्धि की प्रगति ( Rate of growth ) अथवा परिमाण में परिवर्तन, घटाव या बढ़ाव का इतिहास ( or fluctuation in size ) ।

**पूर्व वृत्त**—सदृश सूजन या उभार ( Similar swelling ) ।  
बढ़ी हुई ग्रन्थियाँ ( लसीका ) ( Enlarged glands ) ।  
विद्रधियाँ ( Abscesses ) ।  
जीर्ण अर्दन ( पुरानी रगड़ ) ( Chronic irritation ) ।

**पारिवारिक या कुलवृत्त—****दैहिक परीक्षाएँ—**

**उत्सेध—**सूजन या उभार है ? यदि है तो इस विधि से आगे बढ़ें :—

**स्थानिक दर्शन १—**उभार की स्थिति, परिमाण एवं आकार ।

२—चल या स्थिर ( *Mobile or fixed* ) उदाहरणार्थ श्वसन के साथ ।

३—उत्सेध के ऊपर के चमड़े का आत्म-लिंग ( *Character* ), लालिमा, विस्फारित वाहिनियाँ, व्रण एवं शोफ ।

४—स्पन्दन ( *Pulsation* ) ।

५—प्रकाश परीक्षा या पारदर्शी परीक्षा ( *Trans lucency* ) ।

**स्पर्शन—**ऊष्मा, स्पर्शनात्मता ।

१—ग्रथन या गठन ( *Consistency* ) ।

२—तल या पृष्ठ तल ( *Surface* ) ।

३—व्रणान्त या किनारे ( *Edge* ) ।

४—समीपवर्ती या चारों तरफ के धातुओं के साथ सम्बन्ध ( *Relation to surrounding parts* ) ।

( क ) त्वचा ।

( ख ) पेशी ।

( ग ) गम्भीर धातु-रक्त-वाहिनि तथा नाड़ियाँ ।

( घ ) चलायमानता या चलता ( *Mobility* ) उसकी दिशा ( *Direction* ) ।

( ङ ) खौंसने पर स्यान्दन ( *Impulse* ) or कम्प ( *Thrill* ) ( *On caughing* ) ।

**आंगुलिताड़न—**वक्ष एवं उदर अर्बुदों ( *Tumours* ) में मन्द ध्वनि ( *Dullness* ) या निनादित ( *Resonance* ) ।

**श्रवण—**मर्मर ( *Bruit* ); गर्भहृच्छब्द ( *Foetal heart* ); गुडगुडायन ( *Gurgling* ) या ( *Splashing* ) ।

**अध्यर्बुदन—**( *Dissemination* ) ।

१—सातत्य से ( *Continuity* ) ।

२—सारल्य से ( *Contiguity* ) ।

३—लसीका वाहिनियों में ( *Lymphatics* ) ।

४—रक्तवह स्रोत से ( *Blood stream* ) ।

यदि अर्बुद किसी द्वार या छिद्र ( *Orifice* ) से सम्बद्ध हो या पेशी निर्मित अवकाश या गुहा ( *Hollow muscular system* ) का हो तो निम्नलिखित विशिष्ट परीक्षाओं को करे—

१—अन्तःदर्शक यन्त्र—मुख, गला, स्वर यन्त्र, श्वसनी ( *Trachea* ) श्वसनिका ( *Broachia* ), अन्न नलिका, गुदा, प्रसेक ( *Urethra* ) वस्ति, गर्भाशय, योनि, ग्रीवा ( *Cervix* ), फुफ्फुसावृत्ति, उदरावृत्ति अवकाश आदि ।

२—क्षकिरण—किरणामेघद्रव्यों का प्रयोग करके पित्ताशय, हृदय, वक्ष एवं श्वसनिका चित्रण आदि ।

## विविध अर्बुद एवं उत्सेध (उभारों) एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार

### विस्तार

#### इतिवृत्त—

**वर्तमान दशा**—कत्र एवं कैसे रोगी को इसका पता लगा, रोगी से यह पूछना आवश्यक होता है कि उभार जन्म से तो नहीं है। जन्मजात उभारों में मस्तिष्कावरण वृद्धि (Meningocele) फिरङ्ग वृद्धि (Syphilocele) अंतस्त्वक्द्रव ग्रन्थि (Dermoid cyst) जलार्बुद (Cystic Hygroma)। कुछ उभार चोट लगने के बाद एकाएक दिखाई देते हैं जैसे लोहितार्बुद (हीमैटोमा) या भग्न से उत्पन्न उभार। जो उभार क्रमशः वर्द्धनशील होते हैं प्रायः जीवाणुओं के उपसर्ग से उत्पन्न होने वाले होते हैं। बहुत मन्द गति से बढ़ने वाले उभार सौम्य अर्बुदों में पाये जाते हैं।

कभी कभी उभार भौतिक आघात के अतिरिक्त धातुओं में होने वाले रासायनिक आघातों के द्वारा होते हैं जैसे दग्ध के पश्चात् व्रण-वस्तु में दग्ध प्ररोह (केलायड) का उत्पन्न होना।

१. इस वर्ग के भीतर आचार्य सुश्रुत ने ग्रंथि (Cyst), अपचो (Adenitis), अर्बुद (Tumours) तथा गलगण्ड (Goitre) का एक ही अध्याय में उल्लेख किया है। जैसे “अथातः ग्रन्थ्यपच्यर्बुदगलगण्डानां निदानं व्याख्यास्यामः।”

ग्रन्थियों के कई प्रकार बतलाये गये हैं; परन्तु उनमें सर्वसाधारण लक्षण उनके भीतर द्रव का भरा रहना है। ग्रन्थि वह रोग है जिसमें वृत्ताकार, गाँठदार उभार हो, और जिसके वेधन करने पर जल, रक्त, पूय या मेद का स्राव हो।

अर्बुद—शास्त्रकारों ने उस उत्सेध या मांस वृद्धि को अर्बुद कहा है, जिसमें शरीर के किसी एक अवयव पर दोष सम्मूहित होकर मांस को दूषित करके वृत्ताकार, स्थिर, मन्द पीड़युक्त, महान्, अनल्प मूल (तन्नी मूलवाला), चिरकाल में वृद्धि करने वाला और न पकने वाला शोफ या उभार हो।

निश्चित रूप से यह वर्णन सौम्य अर्बुदों (Benign Tumours) का है—ये अर्बुद दोषमेद से चार प्रकार के वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और भेदोज) होते हैं। इनके भीतर आधुनिक सम्पूर्ण (Simple Tumours) आ जाते हैं। इनके लक्षण ग्रन्थि रोग के सदृश ही होते हैं और सभी साध्य हैं।

इन चारों के अतिरिक्त दो और अर्बुद हैं, मांसावर्बुद तथा रक्तावर्बुद। ये दोनों ही घातक हाँते हैं और चिकित्सा में भी असाध्य होते हैं। इनमें जीर्ण अर्दन (Chronic Irritation) का वृत्त मिलता है। इनमें रक्तावर्बुद का वर्णन पूर्णतया

**उभार का स्थान एवं आकार**—के बारे में रोगी से पूछना आवश्यक होता है। आकार एवं स्थान—इस सम्बन्ध में पता लगाने से उभार का स्थान शरीर के किस विशिष्ट भाग में है यह जानकारी हासिल हो सकती है।

**पीड़ा**—यह शोफयुक्त उभारों का लक्षण है। अन्य उभारों (सौम्यार्बुद प्रभृति में) से इसका प्रारम्भ में अभाव रहता है। ऐसे कुछ घातकार्बुद भी होते हैं, जो प्रारम्भिक अवस्था में पीड़ाहित होते हैं (स्तन, उदर, गुदा, शोफस गर्भाशय), परन्तु बाद में चलकर वेदनायुक्त हो जाते हैं। जब ऐसे अर्बुदों में पीड़ा की उत्पत्ति हो जाती है—तो उस अवस्था में ये शस्त्र-कर्म के अयोग्य हो जाते हैं। क्योंकि इन अर्बुदों में पीड़ा व्रण से समीपवर्ती अंगों में दूर तक फैलने से, या समीपवर्ती नाड़ियों के प्रभावित होने (Infiltration) से होती है। कुछ ऐसे भी उभार मिलते हैं जिनमें पीड़ा उभार उत्पन्न होने के पहले से ही विद्यमान रहती है जैसे अस्थियों के घातकार्बुद (Osteogenic Sarcoma)।

**बढ़ने की प्रगति तथा आकार में परिवर्तन (Fluctuation)**—इसमें रोगी से यह पूछना आवश्यक होता है कि सृजन लगातार बढ़ती जा रही है या कुछ समय तक उसमें कोई परिवर्तन नहीं भी हुआ। सौम्य अर्बुद धीरे धीरे बढ़ते हैं और बहुत काल तक अपनी वृद्धि में परिवर्तन नहीं करते (Stationery)। कुछ काल तक आकार सीमित रहने पर एकाएक उसमें बढ़ाव का शुरु होना यह लक्षण उन अर्बुदों में मिलता है जिनमें सौम्य अर्बुद घातक का रूप धारण करते हैं।

‘कार्सिनोमा’ से तथा मांसावर्बुद का वर्णन सम्पूर्णतया ‘सारकोमा’ से मिलता जुलता है। मांसावर्बुदों के सम्बन्ध में मांस भक्षण शीलता को हेतु रूप में कहा है “प्रदुष्ट मांसस्यनरस्य बाढं मेतत् भवेत् मांस परायणस्य।” रक्तावर्बुदों के सम्बन्ध में उसकी (Cachexia) का वर्णन भी दिया है “रक्तक्षयोपद्रव पीडितत्वात् पाण्डुर्भवेद्वर्बुद पाडितस्तु।”

मांसपरायणता के साथ सम्भव है (Scirrhous Cancer) का कुछ सम्बन्ध हो क्योंकि इस व्याधि की अधिकता मांस परायण या गोमांस परायण देशों में विशेष है? इन दोनों ही व्याधियों को शास्त्रकारों ने असाध्य घोषित कर दिया है; फलतः आचार्य सुश्रुत ने इसकी कोई चिकित्सा भी नहीं लिखी है। (सु० नि० ११)

‘कैंसर’ की प्राचीन संज्ञा रक्तावर्बुद है; परन्तु ‘कैंसर’ शब्द का अति प्रचलन होने के कारण उसे इस पुस्तक में रक्तावर्बुद के स्थान पर ‘कैंसर’ का ही प्रयोग किया है। परन्तु साकोमा के पर्याय में सर्वत्र ‘मांसावर्बुद’ का ही प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार ‘सोस्ट’ के पर्याय में ग्रन्थि या द्रव-ग्रन्थि शब्द का प्रयोग हुआ है।

निरन्तर वृद्धि का पाया जाना घातकार्बुदों के विशिष्ट लक्षण हैं। उभार प्रथम बड़ा होने पर जब एकाएक उसके आकार में कमी हो जाय तो ऐसे उभारों को जीवाणुजन्य समझना चाहिये। कुछ उभार परिश्रम के पश्चात् ज्यादा बढ़े हो जाते हैं जैसे आंत्र-वृद्धि, शिराकुटिलताजन्य-वृद्धि, या रक्तज-वृद्धि ( Varicocele )।

**पूर्ववृत्त**—रोगी से पूछ ले कि ऐसे ही उभार इसके पहले उसे किसी अंग में हुए या नहीं? ( घातक अर्बुद एक से दूसरे अङ्ग में फैल सकते हैं )। साथ ही लसीका ग्रन्थियों के वृद्धि के बारे में रोगी से पूछ कर ज्ञात कर लेना चाहिये ( कैंसर में लसीका ग्रन्थियों की वृद्धि का वृत्त मिलता है )। रोगी को उसके व्यवसाय के बारे में भी पूछे जिससे उत्पन्न उभार का जीर्ण अर्दन ( Chronic irritation ) के साथ सम्बन्ध हो तो उसका पता लग सकता है।

**पारिवारिक वृत्त**—इसमें कुछ विशेष बात का महत्त्व नहीं होता है; तथापि माता-पिता की मृत्यु यदि किसी विशेष अर्बुद के कारण हुई हो तो उसी प्रकार का अर्बुद उसके सन्तान में होने की सहज धातु-दौर्बल्य ( Due to inherited weakness of the tissues ) के कारण सम्भावना रहती है।

### शारीरिक परीक्षा ( Physical )

**सार्वदैहिक**—विभिन्न संस्थानों की परीक्षा करते हुए सम्पूर्ण रोगी को देखना चाहिये और उसमें कोई विशेष परिवर्तन मिले उसे ध्यान में रखना चाहिये। विशेषतः रोगी का स्वास्थ्य, तौल, रक्त की दशा आदि पर ध्यान देना चाहिये।

### स्थानिक

**दर्शन**—सर्वप्रथम स्थान, परिमाण, आकार, वर्ण, ऊपरी पृष्ठ, सीमा रेखा ( Size, shape, situation, colour, surface & Outline ) को देखना चाहिये। 'त्वक्-द्रव-ग्रन्थि' आँख में अपांग सन्धि के ऊपर पाई जाती है। परिमाण एवं आकार का उल्लेख इतिहास लिखते समय किसी सुलभ द्रव्य की उपमा देते हुए लिखना चाहिये। जैसे नारंगी, गोली या केले जैसी लम्बी सूजन आदि। सिराजातअर्बुद ( Haemangioma ) अपनी विशेष प्रकार के नील लोहित वर्ण से ही पहचान में आ जाते हैं। कृष्ण कर्णार्बुद ( Melanoma ) अपने विशिष्ट वर्ण कृष्ण से ही पहचान में आ

जाते हैं। उभार का ऊपरी पृष्ठ चिकना है या गाँठदार? उसके ऊपर, शिराजाल, स्पष्ट दिखाई देता है या नहीं? उभार किसी वृत्त से जुड़ा हुआ है ( Pedunculated ) या बिना किसी वृत्त ( sessile ) के है? उभारयुक्त स्थान सत्रण है या अत्रण? उस पर सूजन तो नहीं है? इन सब बातों की जानकारी आवश्यक है। जीवाणुजन्य शोथों एवं कुछ घातकार्बुदों में चर्म रक्तवर्ण का हो जाता है। सारकोमा में ऊपरी चर्म तनावयुक्त, चमकीला एवं शिराजालयुक्त होता है। उभारों में व्रणों की उपस्थिति निम्नलिखित अवस्थाओं में हो सकती है जैसे क्षयज ( Lymphnode ) फिरङ्गार्बुद, घातक कृष्णकर्णार्बुद ( Malignant Melanoma ) उभारों का नाड़ी गति के साथ स्पन्दन मिल रहा है या नहीं? यह भी देखे। इस प्रकार का स्पन्दन सिराजग्रन्थि ( Aneurysm ) या बड़ी धमनियों के सम्पर्क में पाये जाने वाले अर्बुदों में होता है। उत्सेध ( उभार ) चल है या स्थिर? इसकी निश्चिति चलायमान अङ्गों को चलाने से एवं प्राकृतिक अवस्था में होने वाली गति से निश्चित किया जाता है। जैसे मांसपेशियों के अर्बुद, पेशियों की गति के साथ हिलते हुए पाये जाते हैं। महाप्राचीरा के साथ सम्बद्ध अर्बुद श्वासोच्छ्वास की गति के साथ गतिमान् होते हैं। उभारों में पारदर्शकता तो नहीं है? इस बात का भी ज्ञान करे। क्योंकि द्रवग्रन्थि ( Cyst ) में पारदर्शकता मिलती है। उभार के दबाव के परिणामस्वरूप उसके समीपवर्ती अङ्गों में होने वाले लक्षणों का भी देखना जरूरी है। जैसे सूजन या अङ्गशोथ ( Wasting ) आदि।

**स्पर्शन**—विधिपूर्वक अत्यन्त सावधानी से इस परीक्षा को करना चाहिये। सर्वप्रथम स्थानिक उष्णता की उपस्थिति है या नहीं? देखे। इसका सबसे पहले करने का कारण यही है कि रोगी के अङ्ग को हिलाने से स्थानिक तापक्रम बढ़ने की सम्भावना रहती है जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है। स्थानिक तापक्रम अँगुलियों के पृष्ठ भाग से Dorsum of finger ) देखना चाहिये। साधारणतया व्रणशोफों में स्थानिक ताप बढ़ा हुआ मिलता है, साथ ही कुछ ऐसे अर्बुद भी हैं जिनमें बढ़ा हुआ रक्त संचार ( Increased Vascularity ) होता है। उनमें स्थानिक उष्णता की उपस्थिति रह सकती है जैसे 'सारकोमा'।

**स्पर्शनजन्य पीड़ा**—सर्व प्रथम रोगी को जिस स्थान में अधिक पीड़ा हो उसको अपने हाथ से बताने को कहना चाहिये। स्पर्शन करते समय रोगी के चेहरे पर उसके बदलते हुए भावों का निरीक्षण किया जाय तो स्पर्शनाक्षम

स्थल का ज्ञान अच्छी तरह हो सकता है। साधारणतया व्रणशोफों में स्थानिक स्पर्शनासह्यता बढ़ जाती है।

इसके पश्चात् उभार के स्थान, परिमाण एवं आकार का निश्चित ज्ञान स्पर्श के द्वारा करे। उसकी चलायमान शक्ति की भी परीक्षा करके उसका समीपवर्ती धातुओं के साथ सम्बन्ध को भी निश्चित करे। कभी कभी दर्शन से प्राप्त छोटा उभार स्पर्शन से अधिक विस्तृत रहता है।

वाह्य पृष्ठ समतल है या विषम (उबड़खावड़)? उभार की परिसीमा परिमित है (Defined) या समीपवर्ती अङ्गों में परिसृत या व्यापक (Diffuse) सीमा रेखा सरल है या टेढ़ी मेढ़ी? ग्रथन (गठन) (Consistency)—उभार मृदु (Soft-lipoma) मेदोर्बुद, सद्रव (Cystic) [सद्रव-ग्रन्थि या जीर्ण विद्रधि], गठित (Firm) [सौत्रिकार्बुद (Filroma)], कठिन [मृद्वस्थ्यर्बुद (Chondroma)], अश्मवत् [धातुकार्बुद से उत्पन्न ग्रन्थियाँ], अस्थिवत् कठिन [अस्थ्यर्बुद] (Hard, Stormy Hard or Bony Hard), वायवीय (Gaseous) [शाल्यिक वातस्तृति (Surgical Empheseme) तथा सवात निर्जीवाङ्गत्व [गैस गैंगरीन। ]'

उभारों के गठन का विचार करते समय इस बात का ज्ञान बड़े महत्त्व का है कि उसका पूरा क्षेत्र एक समान है या विविधता लिये हुए? (Uniform althrough or variable) क्योंकि अर्बुद में विविध प्रकार का गठन (Variability in consistency) प्रायः वातकता की ओर निर्देश करता है।

उभार के पृष्ठतल (Surface) की स्पर्शन द्वारा परीक्षा करते हुए देखना चाहिये कि वहाँ दवाने पर गड्ढा तो नहीं पड़ता है? दवाने पर गड्ढे का बनना यदि व्रणशोथ के चिन्हों से उभारों में मिले तो पृथोत्पत्ति का सूचक होता है। ध्यान देने योग्य दूसरी बात उभारों में तरंग-प्रतीति के सम्बन्ध में रहती है। यह अनुभव शोफ स्थान में भरे हुए द्रव के स्थानान्तरण या संचरण

१. त्वचा और मांस में स्थित व्रणों में वायु की उत्पत्ति होकर आवाज होना असाध्यता का सूचक होता है। व्रण के रोगों के लिये अरिष्ट का चिह्न है।—यथा खटखट या घुरघुर शब्द—“द्वेडन्ते घुरघुरान्ते ज्वलन्तीव च ये व्रणाः त्वड् मांसस्थाश्च पवनं सशब्दं विसृजन्ति ये।” (सु० सू० २८)

के कारण अँगुलियों को होता है। इसकी परीक्षाविधि का उल्लेख ऊपर में हो चुका है। यदि उभार चल हो और उसमें तरङ्ग की प्रतीति करनी हो तो उसे स्थिर कर लेना चाहिये पश्चात् तरङ्ग का अनुभव करे। कभी-कभी तरङ्ग-प्रतीति जल ग्रन्थि या सद्रवग्रन्थि (Cysts) तथा विद्रधि के अतिरिक्त भी कुछ अर्बुदों में पाई जाती है। जैसे मेदोर्बुद, मृदुसौत्रिकार्बुद, श्लैष्मार्वुद (Myxoma) तथा अत्यधिक रक्तसञ्चारयुक्त 'सारकोमा'। उभारों के लचकीले होने पर उनमें तरङ्गप्रतीति का मिथ्या ज्ञान या भ्रम हो सकता है। इस प्रकार की सूजन दवाने पर दब जाती है परन्तु उसमें तरङ्गप्रतीति नहीं मिलती।

यदि उभार में द्रव की आशंका हो तो तरंग की प्रतीति के पश्चात् स्थानिक प्रकाश परीक्षा कर लेनी चाहिये। इस परीक्षा से उभार के द्रव के गठन के सम्बन्ध में निश्चय होता है, जैसे मूत्रवृद्धि, जलार्बुद (सिस्टिक हाइग्रोमा), मस्तिष्कावरणार्बुद आदि। अरुपीड्यता (Reducibility)—कुछ उभार ऐसे होते हैं जो दवाने पर कम या छोटे हो जाते हैं। इस परीक्षा में उभार के ऊपर दबाव डालकर उसके आकार में परिवर्तन होता है या नहीं यह देखा जाता है। यदि उसके आकार में कमी होती है तो कितनी कमी होती है? कुछ उभार दवाये जाने पर छोटे हो जाते हैं और छोड़ने पर पूर्वावस्था में आ जाते हैं। जब वे उभार अपनी पूर्वावस्था में आते हैं तो किस दिशा से उनका भरना शुरू होता है इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये। कुछ उभार दवाने पर तो दब जाते हैं परन्तु यदि रोगी खँसे या जोर लगावे तो फिर से भर जाते हैं। कुछ उभार खड़े रहने पर भरना प्रारम्भ करते हैं।

- (क) दवाने पर कम होनेवाली वृद्धियाँ—
- (१) सिराजातार्बुद या सिराजग्रन्थि (Haemangioma)
- (२) लसीकार्बुद (Lymphangioma)
- (ख) दवाने पर दब जावे परन्तु खँसेने या जोर करने पर पूर्वावस्था में आ जावे। (ऊपर से नीचे की ओर भरनेवाली वृद्धियाँ)
- (१) वृद्धि (Hernia)
- (२) मस्तिष्कावृत्ति वृद्धि या विच्युति (Meningocele)
- (३) निःसीम पूयोरस (Empyema Necessitance)
- (४) कटिलंबिनी विद्रधि (Psoas Abscess)

(ग) दबाने पर दब जाने वाले (१) रक्तजवृद्धि ( Haematocoele ) एवं खड़े होने पर पूर्वावस्था (२) शिरा-कुटिलताजन्य वृद्धि ( Variocoele ) में आने वाली वृद्धियाँ ।

नीचे से ऊपर की ओर भरने (३) उरु की उतार शिरा की कुटिलता वाली वृद्धियाँ । ( Sapsenous Varix )

समीपवर्ती स्थानों से सम्बन्ध तथा चलायमानता—सर्वप्रथम यह देखा जाता है कि उभार का सम्बन्ध किस धातु के साथ है । जैसे त्वचा, अधस्त्वक्, गम्भीर कला ( Deepfascia ) मांस पेशी, धमनी, शिरा, वात नाड़ी या अस्थि से ।

- |  |  |
|--|--|
| १. त्वक्, अधस्त्वक् तथा गम्भीर कला से सम्बन्ध उभार | १. त्वगर्बुद ( Papilloma )                         |
|  | २. त्वगर्श ( Wart )                                |
|  | ३. फिरंगार्श ( Condyloma )                         |
|  | ४. उत्तानकलास्तरिका कैंसर ( Epithelial Carcinoma ) |
|  | ५. कैंसर परिणामी व्रण ( Rodent ulcer )             |
|  | ६. घातक कृष्ण कर्णार्बुद ( Malignant Melanoma )    |
|  | ७. मेदोजग्रन्थि ( Sebaceous Cyst )                 |

### १. मेदोज ग्रन्थि ( Subaceous Cyst. )

शरीरवृद्धि क्षयवृद्धि हानिः स्निग्धोमहानरुपरुजोतिकण्डुः ।

मेदः कृतो गच्छति चात्र भिन्ने पित्त्याकसपिः प्रतिमंतुमेदः ॥

सिराजग्रन्थि—कमजोर आदमियों से अधिक परिश्रम के कारण वायु एक सिरा प्रतान ( सिराजाल ) जैसे बनाती है—इस सिराजाल का संपीडन, और विशेषण होकर वृत्ताकार ग्रन्थि बन जाती है । इसमें वृद्धि शीघ्रता से होती है । यह एक कृच्छ्र साध्य व्याधि है—यदि उसमें पीड़ा होने लगे और चलायमानता आ जाय तो अधिक कष्ट साध्य हो जाती है । यदि पीड़ा का अभाव भी रहे; परन्तु वह बड़े आकार ( महान् ) का, अचल और किसी मर्माङ्ग से सम्बद्ध हो जाय तो असाध्य हो जाती है ।

इसका वर्णन बहुत कुछ ( Haemangioma ) से समता रखता है । अतएव सिराज ग्रन्थि न नाम देकर उसका पर्याय सिराजातार्बुद देना अधिक समीचीन प्रतीत होता है ।

व्यायायजातैरवलस्यतैस्तै राक्षिप्य वायुर्दि सिरा प्रतानम् ।

सम्पीड्य संकोच्य विशोध्य चापि ग्रन्थि करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥

( सु० नि० १७ )

८. त्वक् ग्रन्थि ( Dermoid Cyst )

९. मेदोर्बुद ( Lipoma )

१०. सौत्रार्बुद ( Fibroma )

११. मांसार्बुद ( Sarcoma )

१२. दग्ध प्ररोह ( Kelloid )

१. पेश्यर्बुद ( Myoma )

२. सौत्र मांसार्बुद ( Fibro Sarcoma )

२. मांसपेशियों से सम्बन्धित

३. नाड़ियों से सम्बन्धित

४. धमनियों से सम्बन्धित

५. शिरा से सम्बन्धित

६. अस्थियों से सम्बन्धित

१. नाड़ी सौत्रार्बुद ( Neuro-Fibroma )

१. धमनी विस्फार ( Aneurysm )

१. शिराजातार्बुद ( Haemangioma )

१. मांसार्बुद ( Sarcoma )

त्वक् एवं अधस्त्वक् से सम्बद्ध उभार चमड़े को हिलाने से उसके साथ-साथ हिलते हैं । तथा ऊपर के चमड़े को चिमटी से पकड़कर ऊपर को उठावें तो उसके साथ ही साथ उभार भी ऊपर को उठते हैं । अधस्त्वक् से सम्बद्ध उभार चमड़ी के नीचे हिलाये जा सकते हैं । मांसपेशी में होने वाले उभारों को उस मांसपेशी में गति कराके उनके सम्बन्ध का निश्चय किया जा सकता है । मांस पेशी के विकार प्रायः मांसपेशी के लम्ब अक्ष में ही हिलते हैं । ( Long axis ) अस्थियों से सम्बद्ध उभार एक ही स्थान पर स्थिर रहते हैं ।

**स्पन्दन**—जिन उभारों में स्पन्दन की उपस्थिति होती है उनमें हाथ के तलवे को उनके ऊपर रखकर उसकी निश्चित करनी चाहिये । स्पन्दन दो प्रकार के होते हैं ।

१. फैलाव वाला या वैस्फारिक ( Expansile ) । २. वाहित ।

फैलाने वाला स्पन्दन नाड़ी की प्रत्येक गति के साथ सभी दिशाओं में बढ़ता है, परन्तु वाहित-स्पन्दन ( Transmitted impulse ) नाड़ी की गति के साथ सिर्फ ऊपर की ओर ही उठता है । इनके प्रकारों की निश्चित करने के लिये दो दियासलाई की लकड़ियों को उभार के ऊपर मोम के जरिये चिपका देना चाहिये । इन लकड़ियों में यदि स्पन्दन वैस्फारिक ( Expansile impulse ) हो तो स्पन्दन काल में दोनों शिखरों के दूरी बढ़ जाय करेगी तथा वाहित स्पन्दनों में ये दोनों शिखर समानान्तर रहेंगे ।

उभार का उद्भव यदि किसी धमनी-विस्फार के कारण हो तो निम्नलिखित बातों की परीक्षा करनी चाहिये ।

१—उभार के पूर्व-प्रान्त में ( Proximal ) धमनी को दबा कर उसके स्पन्दन एवं आकार की ओर ध्यान देना चाहिये । धमनी विस्फार ( Aneurysm ) में इस प्रकार के दबाव से स्पन्दन तथा आकार दोनों में ही कमी आ जायेगी ।

२—दबाव को हटाने पर यह देखना आवश्यक होता है कि वह उभार पूर्व स्थिति पर किस प्रकार आता है । सिराज ग्रंथि में हृदय के स्पन्दन के साथ-साथ उसके आकार में वृद्धि होगी ।

३—उभार के उत्तर-प्रान्त ( Distal to swelling ) पर धमनी के दबाने से उभार में ज्यादा तनाव की प्रतीति होगी ।

४—यदि धमनी विस्फार ( Aneurysm ) शाखा में है तो दोनों शाखाओं की नाड़ी गति की तुलना करनी चाहिये । जिस शाखा में धमनी विस्फार ( Aneurysm ) होगा उस शाखा में नाड़ी के स्पन्दनों का अनुभव विलम्बित ( Delayed ) देर से होगा ।

५—उभार का धमनी के साथ सम्बन्ध निश्चित करने के लिए उभार को धमनी से दूर हटाने की कोशिश करनी चाहिये । धमनी विस्फार में ऐसे प्रयत्न करने पर विस्फार के साथ-साथ धमनी भी हटती हुई मालूम पड़ेगी ।

स्पन्दन कभी-कभी शिरो कपालात धमनी जाल ( Cercoid Aneurysm ) में हाथ से टटोलने पर दस बारह जीवित केंचुवे के भरे हुए थैले की भाँति प्रतीति होती ( Pulsating Earth worms ) है ।

**अंगुलिताइन**—उभार यदि वक्ष या उदर से सम्बद्ध हो तो अंगुलिताइन की परीक्षा का महत्त्व रहता है । सामान्यतया सभी अर्बुद मन्दध्वनियुक्त होते हैं । आंत्रवृद्धि यदि आंत्रों की उपस्थिति हो तो वह निनादित ( Tympanitic ) हो सकता है ।

**श्रवण**—सभी स्पन्दनयुक्त उभारों को श्रवणयन्त्र ( Stethoscope ) की सहायता से सुनना चाहिये । उरु की उत्तान शिरा की कुटिलता ( Saphenous Varix ) में इस प्रकार से सुनने से मशीन से उत्पन्न होने वाली धर्षराहट के सदृश सुनाई देगा ।

**मापन**—प्रत्येक उभार का विस्तार इंचों में नाप लेना चाहिये । जो उभार घटते-बढ़ते हैं उनका कम से कम और अधिकतम माप कितना होता है इसको भी लिख लेना चाहिये ।

**पीडन**—उभारों के पीडन से समीपवर्ती तथा गम्भीर अवयवों पर प्रभाव

पड़ने से विविध लक्षण तथा चिह्न पाये जाते हैं । अतएव इसको भी लिखना चाहिये । जैसे—१. पीडन के कारण सूजन, २. पीडन के कारण अस्थिभक्षण ( Erosion ) ( धमनी विस्फार एवं कपाल के अर्बुदों में ), ३. पीडन के कारण अंगशोष ( Atrophy ), ४. वक्षगत अर्बुदोंपीडन से श्वासकृच्छ्र का होना, ५. उदरगत अर्बुदों में पीडन से जलोदर, मूत्रकृच्छ्र, विबंध ) ६. सांवेदनिक नाडीसूत्रों पर दबाव पड़ने से विभिन्न प्रकार की वेदनाओं का अनुभव होना ।

धातुकार्बुदों में उससे दूरवर्ती अंगों पर होने वाले औपद्रविक अर्बुदों की उपस्थिति के बारे में भी देख लेना आवश्यक है जिनमें फुफ्फुस, यकृत तथा लसीका ग्रंथियों को विशेष ध्यान से देखना चाहिये ।

### विशिष्ट परीक्षाएँ—

१. रक्त की परीक्षा—श्वेतकायाणूत्कर्ष, रक्तकायाणु गणन तथा रक्तावसादन गति तथा कान कसौटी ।

२. उभार से निकले द्रव तथा धातुओं की रासायनिक तथा अणुवीक्षण-आत्मक परीक्षा ।

३. क्ष किरण परीक्षा—अस्थियों की, क्ष किरणाभेद्य द्रव्यों की सहायता से रिक्त स्थानों की परीक्षा ।

४. अन्तदर्शक यन्त्र-परीक्षा ।

५. शस्त्र-कर्म के अनन्तर प्राप्त अर्बुद के धातुओं की अणुवीक्षण द्वारा सम्यक् परीक्षा । ( Biopsy ).

१. अर्बुद, अत्यर्बुद या द्विर्बुद—एक प्रधान अर्बुद के अनन्तर क्रमशः या एक ही काल में यदि कई छोटे बड़े अर्बुद निकल जायें ( By the process of Dissemination or Metastatic growth or secondary growths. ) हो तो उन्हें द्विर्बुद या अर्बुद कहते हैं । यह अवस्था रोग की असाध्यता सूचक होती है ।

यज्ञायतेऽन्यत् खलु पूर्वं जाते, ज्ञेयं तदध्यर्बुद अर्बुदज्ञैः ।

यद्वन्द्वं जातं युगपद् क्रमाद्वा, द्विर्बुदं तच्च भवेत्साध्यम् ।

( सु० नि० ११ )

अर्बुदों या द्विर्बुदों की उत्पत्ति ( Metastatics ) उनकी असाध्यता एक मुख्य लक्षण है जिसे सुश्रुत ने विशेष रूप से ऊपरी श्लोक में बतलाया है । आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी इसी सिद्धान्त का समर्थन करती है ।

## चतुर्थ योजना

विविध वंक्षण-फलकोषीय ब्रधन या वृद्धियाँ

तत्सम्बन्धी विशेष विचार

आधार

इतिवृत्त—

**वर्तमान दशा**—अवधि, कालप्रकर्ष या कालमर्यादा (Duration) रोगारम्भ की परिस्थिति (Circumstances of onset)

प्रारंभ वंक्षण प्रदेश से या फलकोष से (Beginning in Inguinal region or Scrotum) रोग की प्रगति की कथा (Story of Progress)

पीड़ा की उपस्थिति; उत्सेध के पूर्व या पश्चात् परिमाण में छोटी होती है; लेटने पर विलीन हो जाती है। रोगी स्वयं दबा कर उदर के भीतर प्रविष्ट कर सकता है। मूत्र-त्याग में कोई बाधा है।

**पूर्ववृत्त**— मूत्रत्याग में इसके पूर्व कोई बाधा रही। इसके साथ पीड़ा और वमन का आक्रमण या दौरा तो नहीं हुआ।

कोई विद्रधि (Abscess) बनी; बनी तो उसका स्राव (Discharge)

( ५३ )

कटि एवं पृष्ठ (Back) में पीड़ा या स्तंभ (Pain or Stiffness)।

जल विस्त्रावण (Tapping) तो कभी नहीं किया गया।

दैहिक परीक्षा—

**दर्शन**—उभार या वृद्धि का परिमाण (Size), आकार (Shape) स्थिति (Situation) एवं भार (Weight). खाँसने पर स्पांदन मिलता है। (Has it impulse on coughing).

आंत्रवृद्धि (Hernia), शिरा कुटिलताजन्य मूत्रवृद्धि (Varicocele), विद्रधि (Psoas Abscess) जघन विद्रधि (Iliac Abscess) या डमरुका कृति मूत्रवृद्धि (Hourglass Hydrocele) में फलकोषीय उत्सेध में स्पांदन मिल सकता है।

उत्सेध पर ब्रण-शोथीय चिह्न या नाडी ब्रण की उपस्थिति। (Inflammatory Sign or Sinuses)

उत्सेध के ऊपर की त्वचा की दशा।

प्रकाश-परीक्षा (Translucency).

**स्पर्शन**—फलकोष की ग्रीवा स्वतंत्र है या नहीं?

(क) यदि स्वतंत्र है—तो वृद्धि फलकोष (Scrotum) तक ही सीमित है (Limited) या अन्यथा

(ख) यदि ग्रीवा मोटी अस्वतंत्र (Thickened and involved) तो वृद्धि,—वंक्षण फलकोषीय है।

(क) आंत्रवृद्धि के साथ परीक्ष्य बातें— वृद्धि में परिवर्तन (Fluctuation) विशेषतः वंक्षणय बंधन के ऊपर से नीचे की ओर फलकोष में (From above poupart into scrotum)

(ख) गठन (Consistency), पृष्ठ (Surface), किनारा (Edge), सम्बन्ध (Relation) विशेषतः वृषण के (Testes) के साथ।

अण्डसंवेदना ( Testicular Sensation ) ।

शुक्रवह ( Vasdeference ) की दशा । स्पर्शलभ्य ( Easily Palpable ) सुगमता से है या नहीं है ? वंक्षण या कटि-प्रदेश की लसीका-ग्रंथि ( Glands ) बढ़ी तो नहीं है ।

गुदीय परीक्षा ( Rectal Examination ) छीला ( Prostate ) तथा शुक्र-कोष ( Seminales Vesiculae ) के लिये ।

मूत्रवह संस्थान की विशेष परीक्षा ।

मूत्र वृद्धि का विस्वावण ( Tapping of Hydrocele )

### विशेष परीक्षाएँ—

रक्त, मूत्र वृद्धि से विस्वावित जल, क्षकिरणचित्र और प्रकाश परीक्षा ।

विविध वंक्षण—फलकोषीय वृद्धियाँ एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार

Scrotal Swelling : Special Feature

### विस्तार

### इतिवृत्त—

वर्तमान वृत्त तथा कालमर्यादा—इसमें वृद्धि की अवधि में वृद्धि के कारणों का अनुमान लगाया जा सकता है । जैसे कुछ वृद्धि में अवधि बहुत छोटी होती है जैसे फलकोष एवं अण्ड की तीव्र शोथ तथा

१. वंक्षण फलकोषीय सृजनों को प्राचीन ग्रन्थों ने एक संज्ञा व्रधन या वृद्धि के भीतर समाविष्ट कर लिया है । फलतः वृद्धि का वास्तविक अर्थ हुआ किसी भी हेतु से ( Inguino-Scrotal Swelling ) वंक्षण एवं फलकोष का आकार बढ़ना ।

वृद्धि शब्द से केवल किसी वस्तु के बढ़ जाने का ही ज्ञान होता है; परन्तु वास्तव में दो अर्थों का ग्रहण इस शब्द से किया जा सकता है । १. बढ़ना—शोफ के कारण फलकोष या वृषण या वंक्षणस्थ अवयवों का आकार या भार बढ़ना ( Various forms of orchitis, Hydroceles etc. ) । २. किसी अंग अवयव या इन्द्रिय का स्वस्थान से विच्युत होना ( Various Inguino Femoral Hernias ) । इस भ्रम को दूर करने के लिये इस पुस्तक में स्पष्टतया दो संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है—१. वृद्धि—for Inguino scrotal swellings तथा २. विच्युति for other Hernias जैसा कि अगले अध्याय में स्पष्ट होगा ।

सुश्रुत ने एक ही अध्याय में सम्पूर्ण वृद्धियों का एक ही साथ पाठ किया है । वृद्धियों सात प्रकार ही होती है—१. वातज वृद्धि Orchitis २. पित्तज वृद्धि

अन्य वृद्धियों में अवधि की मर्यादा लम्बी होती है जैसे मूत्रज वृद्धि, रक्तज वृद्धि ( Haematocele ), क्षयज एवं फिरंगज स्थानिक विकृतियाँ । आघात के इतिहास का महत्त्व शुक्रज वृद्धि ( Spermatocele ) तथा रक्तज वृद्धियों में पाया जाता है ।

देश—रोगी यदि बंगाल, पूर्वीय उत्तर प्रदेश, बिहार या उड़ीसा प्रान्त का हो तो ऐसे रोगियों को श्लीपद की या मूत्रज वृद्धि की अधिक संभावना रहती है ।

रोगी से पूछना चाहिये कि सृजन की शुरुवात कहाँ से हुई, फलकोष से या वंक्षण प्रदेश से ? सृजन का प्रारंभ अचानक ( एकाएक ) हुआ या उस स्थान पर जोर पड़ने की वजह से क्रमिक वृद्धि हुई ? सृजन की आकार एवं परिमाण में कमीवैशी तो नहीं होती या सदैव एक ही सी रहती है ? साधारणतया आंत्रवृद्धि की उत्पत्ति उदरगत भार के बढ़ने से होती है जिसके विभिन्न कारण हो सकते हैं—जैसे जीर्ण कास, विबंध, मूत्र प्रसेकावरोध, ( Urethral stricture ) छीलाग्रंथि की वृद्धि आकार में घटती-बढ़ती रहेगी । कई बार रोगी स्वयं अपने ही हाथ से इस वृद्धि को दबाकर अन्दर कर सकता है ।

कुछ वृद्धियाँ सिर्फ फलकोष में ही सीमित रहती हैं जैसे मूत्रवृद्धि, रक्तजवृद्धि, अण्ड शोथ आदि । कुछ वृद्धियाँ वंक्षण प्रदेश तक ही सीमित रहती हैं जैसे अप्राप्त फलकोष वृद्धि ( Blubonocoele ), वंक्षणगत मेदोर्बुद ( Lipoma ) तथा ( Hydrocele of the Cord ) । कुछ वृद्धियाँ वंक्षण नलिका तथा फलकोष दोनों में ही रहती हैं—जैसे प्राप्त फलकोष वृद्धि ( Coplete Hernia ) तथा सहज मूत्रवृद्धि ( Congenital Hydrocele ) ।

वृद्धि नीचे से ऊपर की ओर बढ़ी या ऊपर से नीचे की ओर बढ़ी है ? नीचे से ऊपर की ओर बढ़ने वाली वृद्धियों में शिरा कुटिलताजन्य वृद्धि

Acute. ३. श्लेष्मज वृद्धि Chronic or T.B. orchitis. ४. रक्तज वृद्धि Hæmatocele ( शिराकुटिलताजन्य वृद्धि Naricocele ) ५. मेदोज वृद्धि FilarialOrchits or Flephantiasis scrotum. ६. मूत्रज वृद्धि Hydrocele. ७. आंत्र वृद्धि Inguinal or Femoral Hernias.

( Varicocele ) तथा ऊपर से नीचे की ओर बढ़ने वाली वृद्धियों में आंत्र वृद्धि विशेष महत्त्व के हैं ।

**पीड़ा एवं उसका वृद्धि से सम्बन्ध**—वृद्धि में पीड़ा है या नहीं ? यह पूछना भी आवश्यक होता है । तीव्र व्रणशोथजन्य विकारों में पीड़ा की उपस्थिति सर्वदा रहती है । वैसे ही क्षय एवं फिरंगज वृद्धियों में भी पीड़ा विद्यमान रहती है । परन्तु मूत्र वृद्धि एवं रक्तज वृद्धियों में पीड़ा का अभाव रहता है । पीड़ा सूजन के साथ-साथ हुई, या सूजन के पूर्व से ही रही या सूजन के बाद शुरू हुई ? मूत्र वृद्धि एवं रक्तज वृद्धि में पीड़ा सूजन के पूर्व से ही उपस्थित होती है; परन्तु अर्बुद एवं क्षयजन्य स्थानिक विकारों में प्रथम सूजन तथा पश्चात् पीड़ा होती है ।

मूत्र त्याग में किसी प्रकार की वेदना तो रोगी को नहीं होती ? इसका ज्ञान कर लेना चाहिये । • क्योंकि उपान्द शोथ ( Epididimitis ) बहुधा मूत्राशय के क्षय रोग के उपद्रव स्वरूप में होता है । ऐसी अवस्था में रोगी मूत्र-त्याग में कष्ट का अनुभव करता है ।

**पूर्ववृत्त**—इसमें वस्ति या मूत्राशय के रोगों का इतिहास लेना चाहिये । १. जैसे—क्षय, घृला-शोफ, विद्रधि, मूलाधार का आघात ( Perineal trauma ) इत्यादि का । २. पेट में दर्द और वमन का इतिहास ( Attack of Strangulation or Torsion ), ३. विद्रधि का इतिहास, ४. पीठ या कमर में दर्द का इतिहास । वृद्धि के घातक अर्बुदों में यह अक्सर पाया जाता है जिसके परिणामस्वरूप बायें तरफ में शिरा-कुटिलताजन्य वृद्धि ( Varicocele ) हो सकता है । ५. आघात का इतिहास, ६. जल विस्त्रावण ( Tapping ) का इतिहास, ७. क्षय फिरङ्ग आदि रोगों का पूर्व इतिहास लेना आवश्यक होता है ।

### शारीरिक परीक्षा

**सार्वदैहिक**—विभिन्न संस्थानों की संक्षेप में सविध परीक्षा कर लेनी चाहिये ।

**स्थानिक**—इस परीक्षा में रोगी को खड़ा करके परीक्षा करे । तत्पश्चात् रोगी को लेटा कर परीक्षा करे । परीक्षा करते समय रोगी को झुका कर नहीं रखना चाहिये उसको सीधे खड़ा करा देना चाहिये ।

### स्थान-आकार

**दर्शन**—वृद्धि का विस्तार कहाँ से कहाँ तक है । इसका ज्ञान करे ।

१. कुछ वृद्धियाँ सिर्फ फल-कोष तक ही सीमित रहती हैं जैसे मूत्र वृद्धि, रक्तज वृद्धि ( Haematocoele ) एवं अण्ड शोथ ( Orchitis ) आदि । २. कुछ वृद्धियाँ वंक्षण प्रदेश में ही सीमित रहती हैं जैसे अप्राप्त फल कोष वृद्धि ( Bubonocoele ), वंक्षणगत मेदोर्बुद ( Lipoma ) तथा ( Hydrocoele of the cord ) । ३. कुछ वृद्धियाँ वंक्षण नलिका तथा फलकोष तक व्याप्त रहती हैं, जैसे प्राप्त फल कोष-वृद्धि ( Complete ), सहज मूत्र वृद्धि ( Congenital Hydrocoele ) तथा नवजात मूत्र वृद्धि ( Infantile Hydrocoele ) ।

२. स्पांदन ( Impulse ) की उपस्थिति है या नहीं । निम्नलिखित वृद्धियों में स्पांदन की उपस्थिति मिल सकती है जैसे—आन्त्र वृद्धि, शिरा कुटिलता जन्य वृद्धि ( Varicocele ) वंक्षण, तथा कटिलम्बिनी विद्रधि ( Iliac or Psoas Abscess ), नवजात मूत्र वृद्धि ।

व्रण शोफीय चिन्हों की उपस्थिति है या नहीं ? जैसे सूजन लालिमा पीड़ा आदि । नाड़ी व्रण ( Sinus ) की उपस्थिति या अनुपस्थिति ? यह भी देखना आवश्यक होता है । यदि नाड़ी व्रण उपस्थित हों तो उनके स्थान का भी ज्ञान करे । क्षयजन्य नाड़ी व्रण फलकोष के पश्चात् भाग में ऊपर की ओर पाये जाते हैं और उसके आस-पास का चमड़ा अन्दर की ओर खिंचा हुआ रहता है । विद्रधि के पश्चात् भी नाड़ी व्रण बन सकता है, परन्तु इसका कोई निश्चित स्थान नहीं है । परि-प्रसेक विद्रधि ( Periuruthral Abscess ) के उपद्रव स्वरूप उत्पन्न होने वाले नाड़ी व्रण संख्या में अधिक होते हैं तथा उनसे मूत्रस्राव भी होता रहता है । नाड़ी व्रणों से होने वाले स्रावों का निरीक्षण भी आवश्यक होता है । उसके गन्ध, वर्ण आदि को भी नोट करना चाहिये ।

**वृद्धि के ऊपर की त्वचा की दशा**—चर्म में भुर्रियाँ, मोटापन ( घनता ), दरार ( विदार ) व्रण-व्रस्तु इत्यादि का निरीक्षण करे ।

फलकोष की ग्रीवा स्वतन्त्र है या नहीं ?

**स्पर्शन**—सर्व-प्रथम यह देखना आवश्यक होता है कि सूजन वंक्षण में स्थित है या फलकोष में या दोनों में है । इसकी निश्चिति के लिये उभार के ऊपरी हिस्से को ( फलकोष, मूल या ग्रीवा ) अनुष्ठ और अंगुलि के बीच में ( अंगूठा सामने एवं अंगुलियों को पीछे की ओर रखकर ) दबा कर देखना चाहिये । यदि सूजन फलकोष तक ही सीमित है तो वृद्धि के ऊपर पहुँचने में आसानी होगी, परन्तु ऊपरी भाग से नीचे फलकोष में आई हुई सूजन के

ऊपर इस विधि से पहुँचना कठिन है। ऊपर से आ रही हो तो अंगुष्ठ और अंगुलियों के बीच में यदि केवल ( Cord ) ही मिलता है तो वह निश्चित रूप से फलकोषगत वृद्धि ही है।

यदि ग्रीवा सम्पूर्णतया स्वतन्त्र है तो सूजन सिर्फ फलकोष में ही सीमित है यह ज्ञान हो सकता है। ग्रीवा सूजनयुक्त और मोटी श्लीपद एवं आंत्र वृद्धि में हो सकती है।

यदि वृद्धि ऊपर से नीचे की ओर आ रही है और ग्रीवा मोटी मालूम होती हो तो छोटी अंगुलि ( कनिष्ठिका ) अंगुलि को बाह्य वंक्षणीय छिद्र ( Ext. Inguinal ring ) के भीतर प्रविष्ट करके रोगी को खाँसने का कहना चाहिये। यदि वह सूजन आंत्रवृद्धि के परिणामस्वरूप है तो रोगी के खाँसने पर वह स्पांदन ( Impulse ) की प्रतीति होगी।

**तरंग प्रतीति**—ऊपर से नीचे आई हुई वृद्धि में एक अंगुलि को वंक्षण के ऊपर ( Inguinal ligament के ऊपर ) रखकर दूसरे को फल कोष पर रखकर तरंग का अनुभव करे। यदि अनुभव अस्त्यात्मक हो तो निम्नलिखित रोगों की संभावना है। सहज मूत्रवृद्धि, विवृत अण्डकोष ( Patent Tunica Vaginalis )

**प्रथम ( Consistency )**:—वंक्षणफलकोषीय—यदि आंत्र वृद्धि में ( Omentum ) हुआ तो गीले आटे की तरह प्रतीति होगी। आंत्रों की विद्यमानता में लचकीलापन ( Elasticity ), शिरा कुटिलता ( Varicose ) होने पर थैले में भरे केचुवें की सी प्रतीति, लसीकावाहिनी कुटिलता की ( Lymphatic Varix ) उपस्थिति में मृदु एवं गीले आटे की तरह प्रतीति होगी। अवरुद्ध वंक्षणीय आंत्रवृद्धि ( Strangulated ) वृद्धि तनावयुक्त तथा स्पर्शनाक्षम रहेगी।

**फलकोषीय**—इसमें दो प्रकार गठन पाये जाते हैं।

१. कठिन २. मृदु। कठिन में अर्बुद, क्षय, फिरंग एवं रक्तज वृद्धि ( Haematocoele ) जन्म। मृदु में मूत्रवृद्धि, विद्रधि, शिराकौटिल्यजन्य ( सिराज ) वृद्धि ( Varicocele )।

इसके पश्चात् अंगुष्ठ एवं अंगुलियों के सहारे अण्ड, उपाण्ड तथा उपाण्ड-वाहिनी ( Vas Deferens ) इनको उनका—पृष्ठतल, किनारे, आकार, गठन एवं तथा भार ( वजन ) का स्पर्शन द्वारा ज्ञान करे। जिन वृद्धियों में फलकोष के भीतर द्रव की उपस्थिति हो उनमें अण्ड एवं उपाण्ड का

अलग से स्पर्शन करना असंभव होता है। साधारणतया ऐसी दशा में अण्ड तथा उपाण्ड वृद्धि के पिछले भाग में रहते हैं। परन्तु जिनमें द्रव की उपस्थिति नहीं है उनमें इनकी परीक्षा का महत्त्व होता है। फिरंग एवं अर्बुदों में वृद्धि केवल अण्ड में ही पाई है; परन्तु क्षयज वृद्धि में वृद्धि उपाण्ड तक ही सीमित रहती है।

उपाण्डवाहिनी यदि मोटी एवं गाँठदार हो तो वह उपाण्ड एवं उपाण्ड-वाहिनी क्षय ( T. B. of the Epididymis & Vas ) का विशिष्ट लक्षण है। अण्ड का पृष्ठतल फिरङ्ग में नियमित ( Regular ) या समान रहता है; परन्तु अर्बुदों में ऊबड़-खाबड़ या विषम मिलता है। अण्ड अपने बाह्यावरण में चलायमान ( Mobile ) है या बाह्यावरण के साथ संसक्त है इसकी निश्चिती कर लेनी चाहिये। अण्ड के अर्बुद जब अपने तनाव के कारण अण्डत्वक् को फाड़कर बाहर निकलते हैं तब अण्ड अपने ऊपरी चर्म से संसक्त हो जाता है। ऐसी अवस्था फिरङ्ग में जब फिरङ्गाबुद ( Gumma ) ( गोंदोबुद ) फट कर त्वचा के नीचे आ जाता है, तब पाई जाती है परन्तु फटने के पूर्व वह संसक्त नहीं होता, अपने आच्छादनो में भी चलायमान रहता है। ( Biliard Ball testes ) उपाण्ड क्षय में क्षयज विद्रधि होने पर वह ऊपरी चर्म से संसक्त हो जाता है तथा इस विद्रधि के फटने के पश्चात् बना हुआ नाड़ी ब्रण फलकोष के पिछले भाग में ऊपर की ओर पाया जाता है एवं नाड़ी ब्रण का मुख अन्दर की तरफ संकुचित हुआ रहता है।

**अण्डों के भार**—अण्डों के वजन के अनुभव के लिये वृद्धि को दाहिने हाथ के तलवे पर रखकर अनुमान किया जाता है। इस परीक्षा का कुछ विद्वान् बहुत ही महत्त्व मानते हैं। यह तौल आकार के सापेक्ष होता है। यदि वजन आकार के अनुपात में कम है तो फिरङ्ग एवं क्षय की आशंका रहती है, परन्तु यदि वह आकार के अनुपात में भारी है तो अर्बुद की निश्चिती होती है।

**अण्ड-संवेदना**—प्रकृतावस्था में अण्डों को दबाने पर या ट्योलने में एक विशेष प्रकार की संवेदना परीक्षक तथा रोगी दोनों को होती है। कुछ रोगों में इस संवेदना के ज्ञान में अन्तर आ जाता है। कई रोगों में यह संवेदना रोग के प्रारम्भ से ही समूलतया नष्ट हो जाती है जैसे फिरङ्ग में। रोग होने के कुछ दिनों पश्चात् कई विकारों में नष्ट हो जाती है, जैसे भ्रूणाबुद ( Embryoma )। क्षयजन्य उपाण्ड शोथ में यह संवेदना उपाण्ड की धातु जब तक पूर्णतया नष्ट नहीं हो जाती तब तक रहती है।

इसके पश्चात् वंचनीय लसिका ग्रन्थियों की दशा का परीक्षण करना चाहिये। यदि ये बढ़ी हुई मिलें तो फिरङ्ग, श्लीपद या कैंसर की आशंका रहती है।

**अन्य सांस्थानिक परीक्षण**—साधारणतया वृद्धि रोगों में स्थानिक परीक्षा के अतिरिक्त गुदा परीक्षा का भी महत्त्व है। गुदा परीक्षा में—छीलाग्रन्थि और शुक्र-कोष ( Seminal Vesicles ) की अवस्था का ज्ञान करना आवश्यक होता है जिससे रोग का प्रसार इन अंगों में हुआ है या नहीं तथा वृद्धि रोग प्राथमिक है या छीलाग्रन्थि एवं शुक्र-कोष के रोगों के उपद्रव स्वरूप में हुआ है, इसकी निश्चिति होती है। वस्ति का क्षयविमार्ग ( Retrograde ) द्वारा उपाण्ड का औपद्रविक विकार पैदा कर सकता है।

**उदर परीक्षा**—घातकाबुदों के कारण उत्पन्न वृद्धि में उनके द्विर्बुदों (Secondary deposits) की उपस्थिति की निश्चिति करने के लिए उदर की स्पर्शन द्वारा परीक्षा कर लेनी चाहिये। इनमें विशेष कर बायें तरफ के वृक्क को ध्यान से देखें। बायें तरफ के वृक्क में होने वाले घातकाबुद से उपद्रव स्वरूप में सिराज वृद्धि ( Varicocele ) हो सकती है।

#### विशेष परीक्षण—

**रक्त**—स० सा० श्वेत कायाणु गणन, रक्तावसादनागति।

**मूत्र**—सामान्य तथा अणुवीक्षणत्मक।

**वृद्धि से विस्त्रावित जल**—रक्तलसीका शुक्राणु तथा अबुदाणुओं के लिये।

**क्षकिरण चित्रण**—उपाण्डवाहिनी का क्षकिरणभेद्य द्रव्य देकर चित्र लेना चाहिये।

## पञ्चम योजना

### आंत्रवृद्धि तथा तत्सदृश विविध विच्युतियाँ (HERNIAS) तत्सम्बन्धी विशेष विचार

#### आधार

#### इतिवृत्त—

**वर्तमान दशा**—अवधि या काल प्रकर्ष या काल मर्यादा।  
प्रथम प्रकट होने के समय की परिस्थिति।  
(Circumstances of first appearance)

क्षत (Bruising) का प्रमाण।  
उत्पन्न होने के समय का परिमाण (Size)  
उत्पन्न होने के पश्चात्कालीन परिमाणगत परिवर्तन  
क्या रात्रि में लुप्त (Disappear) या  
विलीन (भीतर में प्रविष्ट) हो जाती है?  
क्या रोगी वृद्धि के अवपीडन (दबाकर छोटा कर  
सकना) में समर्थ है? (Able to  
reduce)

रोगी पेटी (Truss) तो नहीं बाँधता? क्या  
पेटी ठीक (Efficient) है?

**पूर्ववृत्त** — बाल्यावस्था में आंत्रवृद्धि का इतिहास मिलता है?  
क्या आंत्रवृद्धि सदैव अवपीड्य (Reducible)  
रही है?

कभी अनवपीड्यता ( **Irreducibility** ) की घटना तो नहीं हुई ? साथ ही साथ उस काल में पीडा, वमन या कदाचित् बद्धांत्र या बद्ध गुदोदर ( **Intestinal obstruction** ) की स्थिति उत्पन्न हुई ?

### दैहिक परीक्षा—

**स्थानिक दर्शन** — वृद्धिवाले किसी स्थल ( **Hernial site** ) पर सूजन उभार तो नहीं मिलता ?

यदि नहीं मिलता तो रोगी को खड़ा कर दे और उसे खाँसने को कहे ।

यदि सूजन है तो उसकी स्थिति, परिमाण, आकार और उसके ऊपर के चर्म की दशा ।

**स्पर्शन** — ग्रथन या गठन ( **Consistency** [ कठिन या मृदु ] पृष्ठ ( **Surface** ), किनारे ( **Edge** ) तथा सम्बन्ध ( **Relations** )

**सम्बन्ध ( Relations )**—खाँसने पर आकुञ्चन एवं विस्फारण युक्त स्पांदन ( **Expansile Impulse** )

प्रपीड्य या अ्रवपीड्य ( **Reducible** ) अथवा अ्रप्रपीड्य या अनवपीड्य ( **Irreducible** ) । अंशतः ( **Partly** ) या पूर्णतः ( **Wholly** )

पीडन ( **Reduction** ) पर गर्गराहट ( **Gurgle on Reduction** )

पीडा या स्पर्शनाक्षमता की विद्यमानता ।

प्रकाश-परीक्षा या दीप-परीक्षा ( **Transulacency** )

यदि सूजन वंक्षणीय हो, तो उसका वृषण रज्जु ( **Spermatic Cord** ), भगशृङ्ग ( **pubic spine** ) तथा पोपार्ट के बंध ( **Poupart's Ligament** )

के साथ सम्बन्ध । पोपार्ट के बंध के ऊपर ग्रीवा की सन्निधि में तथा भगशृङ्ग पर रखी हुई अंगुलि के ऊर्ध्व और अंतः भाग में ( **Above & medial** ) पाई जाने वाली वृद्धि वंक्षणीय होती है; और पोपार्ट के बंध के नीचे तथा भगशृङ्ग पर रखी हुई अंगुलि के अधो एवं पार्श्व भाग ( **Below and lateral** ) में पाई जाने वाली वृद्धि और्वीय होती है । पीडन या प्रपीडन ( **Reduction** ) के अनन्तर देखे कि वृषण रज्जु ( **Spermatic cord** ) मोटा ( **Thickened** ) तो नहीं है एवं बाह्य वंक्षण छिद्र ( **Sup-Ing-ring** ) बड़ा ( **Enlarged** ) तो नहीं हो गया है ?

क्या अंगुलि बाह्यवंक्षण छिद्र से उदर के भीतर प्रविष्ट हो सकती है ?

अधो धमनी के सन्बन्धों ( **Relation** ) का अनुभव किया जा सकता है ?

जब वृद्धि को प्रपीडित ( **Reduced** ) करते हैं तो क्या देर तक प्रपीडित रखी जा सकती है ? ( **Can it be kept reduced ?** ), रोगी को खड़ा करके देखे, छिद्र ( **Aperture** ) उसी अंगुलि को रखकर देखे जिससे वृद्धि को प्रपीडित किया था ।

यदि वृद्धि पुनः प्रकट ( **Reappear** ) हो जाती है, तो वह ऊपर से नीचे को आती है या नीचे से ऊपर को । एक

आंत्र वृद्धि जो पीडारहित रही हो, स्पर्शासह्यता ( **Tenderness** ) से स्वतन्त्र हो, मृदु और अरवपीड्य हो; कदाचित् वह पीडा या वेदनायुक्त, स्पर्शानाम ( **Tender** ), कठिन ( **Hard** ) तथा अनरवपीड्य हो जावे तो अरवृद्ध आंत्र वृद्धि ( अरवृद्धता ) का ( **Strangulated** ) रूप ग्रहण कर चुकी है ।

**अंगुलिताडन—**मन्द या निनादित ( **Dull or resonant** )  
**उदर ( Abdomen )—**

सामान्य परीक्षा ( **General Examination** ) वद्वान्त्र का कोई प्रमाण ( **Any evidence of obstruction** )

**आंत्र वृद्धि तथा तत्सदृश विविध विच्युत धातुओं**

**के सम्बन्ध में विशेष विचार**

( **Hernia in general : Special feature** )

**विस्तार**

**इतिवृत्त—**

**वर्तमान वृत्त—**अरवधि कितने दिनों से है पूछे । कुछ विच्युतियाँ जन्म से ही स्थानिक विकृतियों के कारण होती हैं । और नाभिगत आंत्र वृद्धि, वंक्षणीय आंत्र वृद्धि, कटिगत वृद्धि, महाप्राचीरागत वृद्धि । कुछ विच्युतियाँ आघात के पश्चात् होती हैं जिनमें आघात से लेकर विच्युति के उत्पन्न होने तक के समय का उल्लेख करना चाहिये ( जैसे शस्त्र-कर्म के पश्चात् होने वाली ) । सर्व प्रथम जब रोगी को विच्युति का अनुभव हुआ वह किसी प्रकार के बल ( **Strain** ) के कारण हुआ है कि जैसे—भार बहन<sup>१</sup>, बलवान से झगड़ना,

१. भारहरण बलवद्विग्रह वृत्तप्रपतनादि गिरायण विशेषे वायु रति प्रकुपितः सन् ( आंत्र-वृद्धि मापादयति ) ( सु० नि० १२ )

प्रवाहण, या बाह्याघात कास । अधोपर्शुकास्थियों के भग्न से जब महाप्राचीरा को हानि पहुँचती है तब उसकी दरार से महाप्राचीरागत विच्युति ( **Diph-ragmatic Hernia** ) प्रायः हो जाती है । कन्दिकाविच्युति ( **Hernea-tion of Neucleous Pulposus** ) का कटिगत आघातों के कारण होना । विच्युति निरन्तर बढ़ती ही जा रही है या पहले जितनी थी उतनी ही है इसका भी ज्ञान कर ले । साधारणतया यदि विच्युति उत्पन्न करनेवाले कारणों का पूर्णतया अभाव हुआ हो तो वह बहुत साल तक उतनी ही रहती है; परन्तु कारण की वृद्धि के साथ विच्युति की भी वृद्धि चलती रहती है । जैसे कुकास या जीर्ण विबंध की उपस्थिति या अनुपस्थिति के ऊपर विच्युति का निरंतर वृद्धि या समान बना रहना मिलता है । कुछ विच्युतियों का ज्ञान रोगी को स्वयं नहीं हो सकता; परन्तु लक्षणों के आधार पर विच्युति की बढ़ती का अनुमान लगाया जा सकता है । जैसे महाप्राचीरागत वृद्धि तथा कोमलपिएडीयकन्दिका विच्युति ( **Neucleous Pulposus** ) की वृद्धि । रोगी को विच्युति के प्रारंभ से आज तक उसके आकार एवं लक्षणों में कैसे-कैसे परिवर्तन हुआ, इस बात का भी पता लगाना चाहिये । वंक्षणीय वृद्धियों में पहले वह वंक्षणीय तक ही सीमित ( अप्राप्त फलकोष ) होता है पश्चात् वह धीरे धीरे पूर्ण होकर फलकोष तक आ जाता है और उसका अनुभव होने लगता है ( प्राप्त फलकोष ) ।

कुछ विच्युतियाँ रोगी के लेटने पर विलीन हो जाती हैं, पुनः उसके खड़े होने पर या खांसने या कुंथन करने पर स्पष्ट पूर्ववत् हो जाती हैं—जैसे वंक्षणीय, और्वीय तथा नाभिगत । इसके विपरीत महाप्राचीरागत वृद्धि में देखने को मिलता है, जिसमें रोगी के खड़े होने पर वह विलीन हो जाती है परन्तु लेटने पर वह अधिक कष्टप्रद हो जाती है । कोमलपिएडीया कन्दिका के विच्युत होने में रोगी को चलने, फिरने, दौड़ने में कष्ट ( कटिशूल ) का अनुभव होता है, परन्तु लेटने से आराम मिलता है ।

रोगी विच्युत अंग हाथ से दबाकर विलीन ( अरवपीड्य या अनरवपीड्य ) कर सकता है या नहीं ? यह भी पूछ लेना चाहिये । विच्युत अंग के कोष से संसक्त होने पर उस स्थान को दबाने से भी विलीन नहीं किया जा सकता । ऐसी विकृति को अनरवपीड्य ( **Irreducible** ) कहते हैं । इसके पश्चात् रोगी से इस बात की जानकारी करे कि वह पेटी पहनता है या नहीं । यह प्रश्न वंक्षणीय वृद्धिवाले रोगियों से करना चाहिये । पेटी पहननेवाले रोगियों में शल्यकर्म शल्यकर्त्ता के लिए कष्टप्रद होता है ।

**पूर्ववृत्त**—कभी-कभी रोगी को बचपन में विच्युति रहती है जो बीच में पाँच छः साल तक अस्पष्ट सी रहती है; परन्तु व्यवसाय या किसी रोग के कारण वह फिर से पैदा हो जाती है। रोगी को विच्युति के अवरुद्ध होने के दौरे हुए हैं या नहीं। यदि दौरे हुए हैं तो कितनी बार, और उस समय उसे क्या कष्ट हुआ था।

**शारीरिक परीक्षा**—सार्वदैहिक—जिस स्थान की विच्युति की आशंका हो उस स्थान से सम्बन्धित संस्थान की परीक्षा विशेष रूप से करे। जैसे—कंदिका विच्युति के लिये सम्पूर्ण नाड़ी-संस्थान की परीक्षा करना, या महा-प्राचीरागत वृद्धियों के लिये श्वसन-संस्थान, रक्तवह-संस्थान तथा पचन-संस्थान की परीक्षा आवश्यक होती है।

### स्थानिक

**दर्शन**—इस परीक्षाकाल में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि विविध वृद्धि छिद्रों ( **Hernial Sites** ) के आस-पास सूजन तो नहीं है? शरीर में निम्नलिखित बाह्यवृद्धि छिद्र या द्वार होते हैं जिनसे वृद्धि या विच्युति होने की सम्भावना रहती है—१. बाह्य वंक्षणीय द्वार, नाभि, और्वीयनलिका, कटि-प्रान्त ( **Lumbur Region** ), गवाक्ष छिद्र ( **Obturator foramen** ), तथा उदर की प्राचीर ( **Abdominal wall** )। यदि इन द्वारों के आस-पास कोई उभार नहीं है तो रोगी को खड़ा करके खोंसने को या नाक दबाकर पेट फुलाने को कहना चाहिये, जिससे तद्-तद् स्थानों पर उभार दिखाई पड़ेगा तथा स्पान्दन मिलेगा। यदि सूजन या उभार विद्यमान है तो उसका स्थान, आकार, विस्तार, परिमाण इन बातों का उल्लेख करना चाहिये। उभार के ऊपरी चर्म की स्थिति का भी निरीक्षण कर लेना चाहिये। यदि वह तनी हुई एवं सूजनयुक्त हो तो सम्भूजित आंत्रवृद्धि ( **Strangulation** ) का, यदि ब्रणवस्तु की उपस्थिति हो तो पूर्व किये गये शल्य कर्म का, यदि वहाँ का चर्म शोषयुक्त ( **Atrophied** ) हो तो तत्स्थानगत वातनाडी के आघात या घात की सम्भावना रहती है।

स्पार्शन से वृद्धि की गठन ( **Consistency** ), परिमाण, किनारे तथा उनका समीपवर्ती आंत्रों के सम्बन्ध प्रभृति बातों का निश्चय किया जाता है। वृद्धि का समीपवर्ती आंत्रों के साथ सम्बन्ध देखते समय वंक्षणीय वृद्धि में उसका वृषणरज्जु ( **Spermatic Cord** ) तथा अण्ड के साथ सम्बन्ध देखना

होता है। जन्मजात वृद्धियों में ( **Congenital Hernias** ) में सूजन अण्ड के सामने की ओर होती है, परन्तु वह जन्मोत्तर ( **Acquired** ) हो तो वृद्धि अण्ड के ऊपर होती है ( **At the top of testies** )। यदि कोष ( **Sac** ) में वपा ( **Omentum** ) हो तो गूँदे हुए आटे की-सी प्रतीति मिलेगी। यदि आंत्र हो तो उसमें लचकीलापन ( **Elasticity** ) का अनुभव होगा। वृषणरज्जु ( **Cord** ) को नीचे खींचकर देखना चाहिये कि वृद्धि उसके साथ-साथ लगी हुई तो नहीं है? यदि वृद्धि लगी हुई होगी तो कार्ड के साथ-साथ वह भी नीचे को खिंच आवेगी [वृषणरज्जु की मूत्र-वृद्धि ( **Hydrocele of the Cord** )] तत्पश्चात् कनिष्ठिका अँगुलि को बाह्य छिद्र में प्रविष्ट करके उसकी परिसीमा को देखना चाहिये। उसमें एक से ज्यादा अँगुलि प्रविष्ट हो सकती है कि नहीं यह भी देखना चाहिये। वृद्धियों में विशेषतः वंक्षणीय उभारों में ब्रणशोथ के लक्षण उपस्थित हैं (सूजन, लालिमा, उष्मा, पीडा) या नहीं? यह भी देखना चाहिये। साधारणतया वृद्धि के अवरुद्ध होने पर उसमें इन लक्षणों की उपस्थिति पाई जाती है। अवरुद्ध आंत्र-वृद्धि और रज्जु-शोथ ( **Funiculitis** ) में कभी-कभी सापेक्ष निदान करने में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। ऐसी अवस्था में निम्नलिखित परीक्षा को करके देखना चाहिये। फलकोष को ऊपर उठाकर वृषणरज्जु को उदर पर मोड़ना चाहिये। अवरुद्ध आंत्र-वृद्धि में ऐसा करना सम्भव नहीं होता तथा इस प्रकार के प्रयत्न से रोगी को कष्ट होता है, रज्जु-शोथ में कार्ड को उसके ऊपर मोड़ा जा सकता है। इसके बाद भी यदि शंका रहे, तो अन्तर्वंक्षणीय छिद्र ( **Int. Ing. Ring** ) के ऊपर उदर प्राचीर की स्पर्शन द्वारा परीक्षा करके देखना चाहिये। अवरुद्ध वंक्षणीय वृद्धि में इस स्थान पर औदरीय रचना ( **Contents** ) बाहर निकलती हुई स्पर्शन में प्रतीत होगी।

**स्पान्दन**—का ज्ञान देखने से हो जाता है; परन्तु स्पर्श से उसकी निश्चित हो जाती है। जिस अवस्था में बाहर से कोई भी उभार दिखाई न पड़े, बाह्य छिद्र से अँगुलि को वंक्षणीय नलिका में प्रविष्ट करके रोगी को खोंसने को कहना चाहिये। आंत्रवृद्धि की उपस्थिति में ऐसी अवस्था में खोंसने से स्पान्दन की प्रतीति होगी<sup>१</sup>। जब सूजन दिखलाई पड़ रही हो, तो उस

१. यदि सूजन वंक्षणीय हो तो उसका रज्जु ( **Cord** ) भगशृङ्ग ( **Pubic spine** ) तथा पोपार्ट के बन्ध के साथ संबन्ध देख लेना चाहिये। पोपार्ट [बंध के ऊपर] शोका क

अवस्था में अंगुष्ठ और अंगुलियों के बीच वृषणरज्जु को ( बाह्य बन्धन छिद्र के नीचे ) पकड़कर रोगी को खाँसने को कहे—इससे आंत्रवृद्धि में स्पांदन की प्रतीति होगी । यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि आंत्रवृद्धि के अवरोध की अवस्था ( Strangulation ) में उसमें किसी प्रकार के स्पांदन की प्रतीति नहीं होती है ।

**अवपीड्यता**—आंत्रवृद्धि में उपद्रवों के अभाव में सर्वदा पाई जानी चाहिये । आंत्रवृद्धि की अवपीड्यता के ज्ञान के लिये रोगी को लेटा कर, पैर को पेट की ओर मोड़ कर रखना चाहिये । फिर वृद्धि कोष पर सब तरह से समान दबाव देते हुए ( Steady pressure ) अन्दर की तरफ ढकेलना चाहिये । अवपीडित होकर वृद्धि किसी शब्द या ध्वनि के साथ विलीन हो जाती है या नहीं इसका ध्यान रखना चाहिये । आंत्रवृद्धि में आंत्र की उपस्थिति होने पर ऐसे शब्द की उपस्थिति पाई जाती है । कभी-कभी अवपीडन करते समय प्रारम्भ में कठिनाई होती है; परन्तु कुछ ही क्षणों में वह वृद्धि शीघ्रता से अंदर प्रविष्ट हो जाती है तथा कभी ऐसी भी स्थिति होती है कि वह प्रारम्भ में ( प्रारम्भवाला भाग ) तो जल्दी से भीतर चला जाता है; परन्तु बाद वाले

सन्निधि में तथा भगशृङ्ग पर रखी अंगुलि के ऊर्ध्व एवं अंतःभाग में पाई जाने वाली वृद्धि बन्धनीय ( Inguinal ) होती है; परन्तु प्रोपार्ट वन्ध के नीचे तथा भगशृङ्ग पर रखी हुई अंगुलि के अधो एवं पार्श्व भाग ( Below and lateral ) में पाई जाने वाली वृद्धि और्वीय ( Femoral ) होती है ।

१. आंत्रवृद्धि के सम्बन्ध में इस लक्षण का विशद वर्णन प्राचीन ग्रन्थों ने किया है—यहाँ उसका अविकल उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है :—

क्षुद्रान्त्रस्येतरस्य चैकदेशं विगणमादायाधो गत्वा बन्धन सन्धिमुपेत्य ग्रन्थिरूपेण स्थित्वा ( अप्राप्त फल कोष या Beubonocele ) अप्रति क्रियाणे च कालान्तरेण फलकोषं प्रविश्य मुष्क शोफमापादयति ( प्राप्त फलकोष या Complete Hernia ) आध्मातो बस्तिरिवाततः प्रदीर्घः स शोफो भवति सशब्दमवपीडितश्चोर्ध्वमुपैति ( On pressure enters into the Abdomen with Gurgle ) विमुक्तश्चपुनराध्मायते ( Impulse ) ।

( सु० सू० नि० १२ )

भाग को भीतर प्रविष्ट करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है । प्रथम प्रकार की अवस्था आंत्र की उपस्थिति में ( Enterocoele ) और दूसरी अवस्था वषा ( Omentum ) के वृद्धिकोष ( Sac ) में पड़े रहने से मिलती है ।

**शिराकुटिलताजन्यवृद्धि**—कुछ ऐसे भी रोग होते हैं, जिनमें खाँसने पर स्पांदन की उपस्थिति मिलती है । ऐसे रोगों में वृद्धि के साध सापेक्ष निदान करने के लिये अवपीडन आवश्यक हो जाता है । उदाहरण के लिये शिराकुटिलताजन्य वृद्धि में अवपीडन ( Reduction ) मन्द गति से धीरे-धीरे होगा; परन्तु आंत्रवृद्धि में उभार का अवपीडन ( Reduction ) शीघ्रता से ( Abruptly ) हो जायेगा । वृद्धि का सम्पूर्णतया अवपीडन करने के पश्चात् अन्तर्वन्धन छिद्र के ऊपर अंगुठे से दबाव रखते हुए रोगी को खड़ा करना चाहिये । ऐसा करने से यदि वृद्धि पूर्ववत् दृश्यमान हो जाती है और नीचे से ऊपर की ओर भरती हुई मालूम पड़ती है; तो शिराकुटिलताजन्यवृद्धि ( Varicocele ) का निदान हो जाता है । अंगुष्ठ को हटा लेने पर यदि वृद्धि पूर्ववत् हो जाती है तो आंत्रवृद्धि का निश्चित निदान हो जाता है । कुछ आंत्रवृद्धियाँ दवाने से अनवपीड्य ( Irreducible ) होती हैं । वृद्धियों में अनवपीड्यता निम्नलिखित कारणों से आ जाती है—१. कोष ( Sac ) में उपस्थित अङ्गों में आपस में संसक्ति । २. कोष में उपस्थित अंत्रों की कोष के साथ संसक्ति । ३. कोष की दोनों दीवारों का परस्पर में अपूर्णतया संसक्त होना । ४. कोषस्थित रचनाओं ( Contents ) का शोथयुक्त होना । ५. वृद्धि का अत्यधिक बड़ा होना, जैसे सम्पूर्ण लघु अन्त्र का कोष में पाया जाना । फलकोषीय उदर ( Scrotal Abdomen ) सम्पूर्ण ( Strangulated ) आंत्रवृद्धि में अनवपीड्यता का पाया जाना एक मुख्य लक्षण है । इसके साथ ही साथ आंत्रावरोध ( बद्धान्त्र ) के लक्षणों की उपस्थिति भी मिलती है । परन्तु केवलमात्र अनवपीड्य वृद्धि होने से ही उसे अवरोध आंत्रवृद्धि नहीं कह सकते हैं—क्योंकि अनवपीड्यता के साथ-साथ आंत्रावरोध के लक्षणों की उपस्थिति भी अवरोधता के साथ मिलती है । इन लक्षणों के आधार पर केवलमात्र अनवपीड्य आंत्रवृद्धि ( Irreducible Hernia ) तथा अवरोध वृद्धि ( Strangulated Hernia ) का पार्थक्य करना होता है ।

अंगुलिताइन के द्वारा वृद्धि की परीक्षा करे। यदि क्षेत्र मन्द होतो वषा ( Omentum ) और यदि निनादित हो तो आंत्रों की उपस्थिति कोष में है ऐसा समझना चाहिये।

यदि रोगी में अवृद्ध वृद्धि लक्षण जान पड़े तो उदर गुहा की परीक्षा करके उसमें बद्धांत्र के लक्षण उपस्थित हैं कि नहीं उसका ज्ञान कर लेना चाहिये।



## षष्ठ योजना

### उदरात्यय तथा तत्सम्बन्धी विशेष विचार

( Abdominal Emergencies : Special feature )

#### आधार

वर्तमान दशा—

पीड़ा या वेदना—

प्रारम्भ, दौरा या आक्रमण ( Onset )—

कोई भय या आतंक ( Any warning )

आक्रमण का काल ( Time of onset )

और क्या करते समय।

स्थिति—

( रोगी को स्थलनिर्देश करने को कहें )

पीड़ा की प्रकृति ( Nature ) सतत या सान्तर

या शूल स्वरूप का। ( Continuous, Intermittent or Colick etc. )

हटात् या अचानकता ( Suddenness ) तीव्रता

( Severity ) पीडन ( दबाने ) से

शमन या नहीं। ( Relieved by pressure or not )

हट या सातत्य ( Persistence )

स्थितिगत परिवर्तन ( Change of Situation )

प्रकृतिगत परिवर्तन ( Change of Character )

वमन—

प्रकार ( Type )

मात्रा ( Quantity )

वैशिष्ट्य ( Quality )

बहुलता ( Frequency )

उदर या पेट ( Bowel )—विबंध ( Constipation )

अतिसार ( Diarrhoea )

स्त्राव ; आम ( Mucus ) या रक्त ( Blood )

अधोवायु का निरोध ( Arrest of Flatus )

बढ़ी हुई आंत्रगति ( Increased Peristalsis )

(क) दृश्यमान् ( Visible )—लोष्ठ ( Lump )

(ख) श्रव्य या श्रवणीय ( Audible )—कूजन ( Rumbling )

(ग) स्पृश्य ( Palpable )—लोष्ठ ( Lump )  
मूत्र प्रवृत्ति या प्रस्राव से कोई सम्बन्ध ।

(Micturation) Any relationship

ऋतु या मासिक ( Menstruation ) :  
कोई सम्बन्ध ।आंत्रवृद्धि की उपस्थिति का ज्ञान रहा : उसमें  
कोई परिवर्तन तो नहीं हुआ ?यदि किसी लोष्ठ ( Lump ) की उपस्थिति का  
ज्ञान रहा, तो क्या उसमें कोई अभी  
परिवर्तन हुआ है ?

पूर्ववृत्त—

इसके पूर्व का आक्रमण या दौरा ।

दैहिक-परीक्षा—

सार्वदैहिक—मुखाकृति ( Facies बड़े महत्त्व  
की है ) किसी बड़ी ( Serious ) बीमारी  
का चिह्न, अवसाद ( Shock ) अथवा  
अंतः रक्तस्राव ।व्यवहार ( Behaviour )—शान्त, चंचल  
( बेचैन ), चिल्लाने वाला ( Out-cries )स्थानिक दर्शन—वृद्धि के स्थल ( Hernial Site ) छाले  
( Blisters ) या उष्ण द्रव्यों के सम्पर्क  
के चिह्न ।आध्मान ( Distension )—स्थिति, कोटि  
( Degree ) कटि ( Loins ) केन्द्रीय,  
व्यापक ( General )

श्वसपतियों की मर्यादा ( Limitation )

आंत्रगतियों की वृद्धि—स्थान ( Position )  
दिशा ( Direction )

स्पर्शन—स्पर्शानुभूति—स्थिति, कोटि

जाड्य या काठिन्य ( Rigidity )—स्थिति,  
कोटि ।लोष्ठ—गठन, पृष्ठ ( Surface ), किनारे,  
संबन्ध ।

(१) स्थिति

(२) आंत्र ( Gut )

(३) श्वसनीय ( Respiratory )

(४) चलायमानता ( Mobility )

वृद्धि-स्थल ( Hernial Site )

गुद-परीक्षा ( Rectal Examination )

योनि-परीक्षा ( Vaginal Examination )

अंगुलिताडन—लोष्ठ के साथ आंत्र का संबन्ध; यदि हो ।

स्वतंत्र जल ( कम्प या तरंग ) ।

स्वतंत्र वायु ( Free Gas ) :

श्रवण—

आंत्र की गति—प्रकृत ( Normal ) या बढ़ी  
हुई ( Increased )

गर्भ ( Pregnancy )

धमनी विस्फार ( Aneurism )

**विशेष परीक्षाएँ—**

आमाशय प्रक्षालन ( Stomach lavage )  
वस्ति ( Enema )—राशि ( Amount )—  
निरुद्ध ( Retained ) या नहीं ?

परिणाम—वायु का विशेषतः ( Flatus  
specially )

मूत्रनाड़ी-संयोजन ( Catheter )

क्षकिरण चित्र—यदि रोगी बैठ सकता है ।

( Straight Xray, if patient is fit  
enough )

१. फुफ्फुस पाक के निराकरण ( Exclude )  
के लिये—

(क) श्वसन; नीलिमा ( Cynosis )

(ख) नथुनों की ( बहिर्नासिका की ) स्थिति  
( Alea Nasi )

(ग) वक्ष की परीक्षा—

२. चेष्टावह संस्थान (Locomotor Ataxy)  
के निराकरण के लिये ।

(क) तारक ( पुतली )

(ख) जानु ( Jerk )

(ग) गति-दोष ( Ataxia )

३. वृक्क विकारों ( Lesions ) के निराकरण  
के लिये—

(क) मूत्र विषमयता के प्रमाण ( Urea-  
mia ) (ख) अशमरी (ग) मूत्र की परीक्षा ।

**उदरात्यय-सम्बन्धी विशेष विचार****विस्तार****इतिवृत्त—****वर्तमान दशा—**

पीड़ा—उदर रोगों की तीव्रतावस्था या उदरात्यय में पीड़ा का पाया जाना एक प्रधान लक्षण है । इनकी विशेषता के ऊपर रोग का निदान तथा स्थान-

विनिश्चय निर्भर करता है । इसका विस्तृत रूप से ज्ञान करने के लिये निम्न-  
लिखित बातों को रोगी से पूछना चाहिये ।

१. पूर्वग्रह—कई बार उदरात्यय के प्रारम्भ होने के पूर्व रोगी में तत्स्थान-  
गत लक्षण पाये जाते हैं । जैसे आमाशयिक व्रण के विदार ( Perfora-  
tion ) के पूर्व रोगी में मन्दाग्नि ( Dyspepsia ) एवं अजीर्ण का इति-  
हास मिलना ।

२. समय एवं प्रकार ( Mode )—तीव्र आंत्रपुच्छ शोथ की पीड़ा रात्रि में अथवा उत्तर-रात्रि में प्रारम्भ होती है । आमाशयिक-व्रण के विदार साधा-  
रणतया भोजन के पश्चात् दिन में होते हैं । पित्ताशय शोथ की पीड़ा तले हुए  
स्निग्ध पदार्थों के सेवन के पश्चात् होती है । शूल, विदार, वृन्तावरोध (Tor-  
sion of the pedicle ) तथा निरोध ( Strangulation ) आदि में  
पीड़ा का उद्भव एकाएक होता है; परन्तु आंत्रावरोध या बद्धान्त्र तथा अन्य  
शोथजन्य विकारों की पीड़ा की उत्पत्ति प्रारंभ में उतनी अधिक नहीं रहती;  
फलतः तीव्र पीड़ा अचानक नहीं होती । आंत्रावरोध तथा आंत्रपुच्छ शोथ में  
पीड़ा की उत्पत्ति कभी-कभी तीव्र विरेचक औषधि के सेवन के अनन्तर होती  
है, इस बात को ध्यान में रखना चाहिये ।

३. पीड़ा की स्थिति—पीड़ा का स्थान रोगी को अपनी अँगुलि से  
बताने को कहना चाहिये, जिससे उसके कारण का पता आसानी से लग सकता  
है । आमाशयिक व्रण के विदार के कारण उत्पन्न पीड़ा में रोगी अँगुलि द्वारा  
आमाशयोर्ध्व प्रदेश ( Epigastrium ) के दाहिनी तरफ निर्देश करेगा ।  
आंत्रपुच्छ शोथ में पीड़ा का स्थाननिर्देश रोगी दाहिनी ओर जघन खात में मैक-  
वर्नी के बिन्दु पर करेगा । उदरावृत्ति शोथ में पीड़ा सर्वत्र फैली मिलेगी । इसमें  
रोगी किसी एक स्थान को अँगुलि से निर्देश नहीं कर सकता । उदर में उत्पन्न  
होने वाली पीड़ा ( उदरात्यय में ) तद्-तद् स्थानों में सीमित रह सकती है  
( Localised ), या वहाँ से हट कर दूसरी जगह जा सकती है  
( Shifting ); या विकार के स्थल से दूरवर्ती स्थानों तक संवाहित भी हो  
सकती है ( Radiating ) ।

४. पीड़ा का आत्मलिङ्ग या प्रकृति—इसमें पीड़ा सान्तर या निर-  
न्तर है ( Intermittent or continous ) बीच-बीच में रुक-रुक कर  
होती है या अनवरत बनी रहती है, अत्यधिक आंत्रों की गति से उत्पन्न  
पीड़ा सान्तर रहेगी और वह आंत्र की गति के साथ-साथ बढ़ती जायेगी;

परन्तु आशयों में तनाव या आध्मान ( Distension ) के कारण होने वाली पीड़ा निरन्तरस्वरूप की अर्थात् सदैव बनी हुई रहेगी। जोभ या शोथ ( Irritation or Inflammation ) के कारण होने वाली पीड़ा भी निरन्तर स्वरूप की होती है। आशयों में होने वाली पीड़ा बहुधा अपनी नाड़ी मूल ( Nerve origin ) से सम्बन्धित अन्य स्थानों में भी संवाहित हो सकती है।

पीड़ा की तीव्रता लगातार बढ़ती जा रही है या कम होती जा रही है? अवरोध या स्तम्भ ( Obstruction or spasm ) के परिणामस्वरूप होने वाली पीड़ा में धीरे-धीरे बढ़ने की ओर प्रवृत्ति होती है और कुछ समय के पश्चात् पेशियों की क्लान्ति होने पर वह मन्द स्वरूप की हो जाती है। व्रण-शोथ के कारण उत्पन्न होने वाली पीड़ा शोथ की तीव्रता के अनुपात में कम या ज्यादा रहेगी।

५. **दवाने से आराम मिलता है या नहीं?**—इस एक ही लक्षण के आधार पर कभी-कभी पीड़ा के कारण का ठीक-ठीक पता लग जाता है। यदि रोगी की पीड़ा दवाने पर कम होती है या उसे आराम मिलता है तो उस पीड़ा का कारण किसी अनैच्छिक नलिका का स्तम्भ या आकुञ्चन ( Spasm ) हो सकता है। जैसे आंत्र-शूल ( Intestinal Colic ), मूत्रगवीनी-शूल ( Ureteric Colic ) तथा पित्ताशय-शूल ( Biliary Colic )। यदि उस स्थान पर दबाव डालने से रोगी की पीड़ा बढ़ जाती है तो उसका कारण तत्स्थानगत आशय या आशयावरण का शोथ हो सकता है। शोथ के कारण होने वाली पीड़ा स्थानिक दबाव से बढ़ेगी।

६. **पीड़ा का स्थान परिवर्तन**—यह दो प्रकार का होता है।

१. स्थानान्तरण ( Migration ) २. संवहन ( Radiation )।

पीड़ा का स्थानान्तरण आन्त्रपुच्छ शोथ की प्रारम्भिक अवस्था में पाया जाता है, जिसमें प्रथम नाभि के पास रोगी पीड़ा का अनुभव करता है; परन्तु कुछ ही घण्टे के पश्चात् वह दक्षिण जघनखात में स्थिर हो जाती है।

१. मरोड़ या ऐंठन के स्वरूप की शूल में पाई जाती है। आमाशयिक व्रणों के विदार में जलनयुक्त पीड़ा होती है। वृन्तावरोध तथा तीव्र अग्रशय शोथ ( Pancreatitis ) में पीड़ा अत्यधिक कष्टकर एवं भयंकर ( Agonising ) स्वरूप की होती है, जिससे रोगी झटपटा रहता है।

पीड़ा का एक स्थान से दूसरे स्थान में फैलाव कभी-कभी तत्स्थानगत वृत्ति के शोथ ( Spreading peritonitis ) के कारण होता है। जैसे आमाशयिक व्रण के विदार में प्रारम्भ में पीड़ा स्थानिक रहती है, परन्तु बाद में चलकर आमाशयगत पदार्थों के उदरावरण में चले जाने से पीड़ा दक्षिण-बृहदन्त्र नाली ( Para-colic Gutter ) में होने लगती है।

कई बार रोगी को पीड़ा का अनुभव विकृत स्थान से दूरवर्ती स्थानों में होता है। इसे संवाहित पीड़ा ( Radiated Pain ) कहते हैं। पित्ताशय-जन्य पीड़ा दक्षिण स्कन्ध में तथा अंसफलकों के समीप संवाहित होकर मिलती है। यकृत शोफ की पीड़ा भी इसी प्रकार संवाहित होती है। आमाशय के विदार के कारण उत्पन्न पीड़ा दोनों स्कन्धों में संवाहित होती है। वृक्कजन्य पीड़ा जघन तथा तत्पार्श्वीय अण्डकोष में संवाहित होती है। गर्भाशयजन्य पीड़ा कटि तथा दोनों पैरों की दिशा में संवाहित होती है।

७. **पीड़ा के आत्मलिङ्ग ( Character ) में परिवर्तन**—कभी-कभी पीड़ा के आत्मलिङ्ग में भी परिवर्तन मिलता है। उससे स्थानिक विकार में होने वाले परिवर्तनों का शान हो जाता है। जैसे तीव्र आंत्रावरोध के कारण उत्पन्न हुआ सान्तर स्वरूप का शूल ( Intermittent ) जब निरन्तररूप में परिणत हो जाय तो यह उदरावृत्ति शोथ हो गया है; ऐसा समझना चाहिये। पीड़ा की तीव्रता में कमी का पाया जाना एक सर्वदा अच्छा लक्षण नहीं समझा जाता है। तीव्र आंत्रपुच्छ शोथ पीड़ा का एकाएक कम हो जाना या सर्वथा अभाव हो जाना उसके विदार का तथा निर्जीवाङ्गत्व का द्योतक होता है। आमाशय विदार की द्वितीयावस्था में पीड़ा की तीव्रता कम हो जाती है।

८. **पीड़ा का शारीरिक वेगों के साथ सम्बन्ध**—पीड़ा का शारीरिक वेगों का सम्बन्ध तत्स्थानगत विकृति का द्योतक होता है। जैसे फुफ्फुसावृत्ति शोथ में तथा यकृतशोथ ( Hepatitis ) पित्ताशयशूल में अंतःश्वसन

१. यह स्थान दक्षिण बृहदन्त्र की दाहिनी तरफ और दक्षिण उदर प्राचीर की बाईं तरफ होता है अर्थात् दक्षिण बृहदन्त्र और दक्षिण उदर प्राचीर में उदरावरण के मोड़ से बना हुआ स्थान है। यह आकार में नाली जैसा होता है। अतएव इसे 'गटर' कहा जाता है।

( *Inspiration* ) में रोगी को वेदना होगी। मूत्रगवीनी में शोफ या अश्मरी की उपस्थिति में, श्रोणिगत तीव्र आंत्रपुच्छ शोथ ( *Inflamed Pelvic Appendix* ) में रोगी मूत्रत्याग काल में पीड़ा तथा कष्ट का अनुभव करता है।

**वमन**—के सम्बन्ध में उसका प्रकार, मात्रा, वैशिष्ट्य एवं बहुलता आदि के बारे में रोगी से प्रश्न के द्वारा ज्ञात करना चाहिये।

**प्रकार ( Type )**—रोगी को वमन पीड़ा के पश्चात् हुआ है या पीड़ा के पूर्व हुआ है, इस बात को रोगी से पूछना चाहिये। आंत्रपुच्छ शोथ वृक्क शूल, अग्नाशय शूल में वमन पीड़ा के पश्चात् शुरू होता है; परन्तु आंत्रावरोध में प्रथम वमन, तदनन्तर पीड़ा शुरू होती है। यह लक्षण अवरोध के स्थान पर भी बहुत कुछ निर्भर रहता है। जैसे ऊर्ध्व आंत्रावरोध ( *High Bowel Obstruction* ) में पीड़ा तथा वमन साथ-साथ शुरू हो सकते हैं। अधो लघुआंत्रावरोध में वमन पीड़ा के पश्चात् प्रारंभ होगा। वमन का अत्यधिक प्रवल स्वरूप तथा मात्रा में अधिक होना लघुआंत्रावरोध का एक प्रमुख लक्षण है।

वमन काल में वमित द्रव्य यदि बिना किसी वेग ( *Force* ) के निकलते हैं तो वह व्यापक उदरावृत्ति शोथ का द्योतन करता है। सभी प्रकार के शूलों में सामान्यतया पित्तयुक्त वमन पाया जाता है। आंत्रावरोध में वमन का वैशिष्ट्य आंत्रावरोध के स्थान पर निर्भर करता है। ऊर्ध्व आंत्रावरोध में वमन आमामिश्रित पदार्थ तथा पित्त-मिश्रित होगा। जैसे-जैसे अवरोध का स्थान नीचे की ओर जायेगा वैसे-वैसे वमन मल सदृश ( *विट्सम गंधिक* ) दुर्गन्धयुक्त होगा। बृहदंत्रों के अवरोध में वमन का अभाव रहता है। मल का वमन यह साधारणतया बहुत कम मिलता है—इसकी उपस्थिति आमामिश्रित स्थूलान्त्र दर ( *Gastro-Colic Fistula* ) में पाई जाती है।

**मल-प्रवृत्ति**—रोगी में पूर्णतया विवंध है या विवंध और अतिसार पर्याय

३. *Character of the Vomiting—Foccalish Vomiting* विट्समगंधिक-विट्समगंधिकच प्रच्छर्दयन् बद्धगुदीविभाव्यः। ( सु० नि० ७. )

आंत्रावरोध या बद्धांत्र में पाये जाने वाले वमन को मल के समान गंधवाला कतलाया है।

क्रम से हो रहा है? इस बात को पूछे। मल के साथ साथ आव्युक्त रक्त निकलता है या नहीं? इस बात को भी रोगी से पूछ ले। रोगी को केवल मल ( पाखाने ) की ही रुकावट है या मल और वायु दोनों का ही विवंध है? इस बात का भी पता लगावे।

सामान्यतया तीव्र-बद्धांत्र तथा उदरावृत्ति शोफ में मल तथा वायु का पूर्णतया विवंध ( रुकावट ) मिलेगा। आंत्र में कैंसर या क्षय के कारण सन्निरोध ( *Stricture* ) होने से रोगी में पर्याय से विवंध एवं अतिसार ( *Alternate-Constipation & Diarrhoea* ) पाया जाता है। बद्धांत्र में कभी कभी प्रारंभ में एकाध बार के मलत्याग का इतिहास मिलना संभव है। यदि रोगी में बार-बार मल प्रवृत्ति के साथ आव्य तथा रक्त गिरता है; तो ऐसी दशा में बच्चों में आंत्रानुप्रवेश ( *Interssusception* ) या युवा व्यक्तियों में श्रोणि-विद्रधि ( *Pelvic Abscess* ) की संभावना रहती है। बद्धांत्र में आंत्र-गति बढ़ी हुई रहती है और रोगी कभी-कभी इस बढ़ी हुई गति को सुन भी सकता है जिसे वह “पेट में गुड़गुड़ाहट तथा पीड़ा हो रही है” इन शब्दों में व्यक्त करता है।

तीव्र आंत्रानुप्रवेश में उदर में दक्षिण या वाम भाग में केले के आकार का लोष्ठ ( *Lump* ) दिखाई देता है। कैंसर के कारण उत्पन्न उदरात्यय ( *Acute Abdomen* ) में पेट में लोष्ठ की उपस्थिति रोगी से पूछकर जानी जा सकती है।

**मूत्र-प्रवृत्ति**—सामान्यतया वृक्क तथा गवीनी के रोगों में रोगी मूत्र-त्याग म कष्ट का अनुभव करता है। इस अवस्था में मूत्र रुक-रुक के थोड़ी मात्रा में तथा पीड़ा के साथ धारा-संग ( *Strangury* ) आता है। यह लक्षण मूत्रवहसंस्थान के अतिरिक्त कई अन्य रोगों में भी पाया जा सकता है। जैसे श्रोणिगत आंत्रपुच्छ शोथ या श्रोणि उदरावृत्ति शोफ ( *Pelvic peritonitis* )। इन रोगों में सान्निध्य के कारण मूत्राशय का क्षोभ होकर धारा-संग प्रभूत लक्षण उत्पन्न होते हैं।

स्त्रियों में उनके ऋतु के सम्बन्ध में भी पूछ लेना चाहिये। वहिर्गर्भस्थिति, ( *Ectopic Gestation* ) जलातित डिम्बग्रन्थि का वृन्तावरोध ( *Tortion of the pedicle of the ovarian cyst* ) के उपद्रवस्वरूप में उदरात्यय के लक्षण पैदा हो सकते हैं। ऐसी अवस्था में ऋतु-सम्बन्धित दोष या अनियमितता का इतिहास मिलेगा।

रोगी में आन्त्रवृद्धि का इतिहास मिलता है या नहीं ? यदि मिलता है तो आन्त्रवृद्धि में एकाएक कोई परिवर्तन तो नहीं हुआ है यह भी पूछ लेना चाहिये । उदर में किसी लोष्ठ या उमार का इतिहास रोगी में मिलता है या नहीं ? यदि उसमें कोई परिवर्तन हुआ हो तो उसे भी पूछ लेना चाहिये ।

**भूतपूर्व इतिहास**—कभी-कभी पूर्ववृत्त के विषय में विस्तृत रूप से पूछने पर वर्तमान स्थिति का सम्पूर्ण ज्ञान थोड़े ही समय में हो जाता है । पूर्व-वृत्त के विषय में निम्नलिखित बातों को पूछना चाहिये—

१—वर्तमान दौर के ही सदृश इसके पूर्व कोई और दौरा हुआ था या नहीं ? निम्नलिखित रोगों में ऐसा वृत्त मिलेगा । जैसे आन्त्रपुच्छ शोथ, वृक्क तथा पित्ताशय शूल प्रभृति रोग ।

२—दौर के भोजन के साथ सम्बन्ध है या नहीं ? मल तथा वमन द्वारा रक्त-प्रवृत्ति अधोग या उर्ध्वग-रक्तपित्त ( *Haematemesis or malaena* ) का इतिहास । इस प्रकार का वृत्त आमाशय तथा पक्वाशय के व्रणों में मिलेगा ।

३—कामला तथा अग्नि-मांघ्र का इतिहास पित्ताशय-जन्य रोगों में मिलेगा ।

४—शोणित-मेह ( *Haematuria* ) का इतिहास वृक्काश्मरी तथा वस्तिगत अश्मरी ( *Blader calculus* ) में मिलेगा ।

५—उदर पर शस्त्रकर्म का इतिहास इससे उत्पन्न व्रण-वस्तु तथा संश्लेष ( *Scars & Adhesions* ) के कारण आन्त्रावरोध पाया जाता है ।

### दैहिक-परीक्षा

**सार्वदैहिक**—सर्वप्रथम रोगी विस्तरे पर किस प्रकार लेटा हुआ है, इसे देखना आवश्यक होता है । आंत्रपुच्छ शोथ का रोगी अपना दाहिना पैर पेट के ऊपर मोड़ कर लेटा मिलेगा । शूल की अवस्था में रोगी पेट के बल या कर्बट लेटकर हाथों से शूल के स्थान को दबा कर रखता मिलेगा । उसे किसी भी अवस्था में आराम न मिलने के कारण छटपटाता रहेगा । इसके विपरीत स्थिति तीव्र उदरावृत्ति-शोथ में पाई जाती है; जिसमें रोगी उत्तानासन में विस्तरे पर शान्ति से लेटा रहता है, क्योंकि हिलने पर उसकी पीड़ा में वृद्धि होती है । ऐसा रोगी दोनों पैरों को पेट के ऊपर मोड़कर लेटना ज्यादा पसंद करता है । रोगी की मुखाकृति देखकर कभी-कभी रोग की तीव्रता का ज्ञान हो

जाता है । यदि रोगी की श्वास ठण्डी चल रही हो तथा नाक का अग्र भाग ठण्डा और सिकुड़ा हुआ मिल रहा हो तो उसे निश्चित रूप से मर्माभिघात का पूर्वरूप है ऐसा समझना चाहिये ( *Impending shock* ) । तीव्र अग्नाशय शोथ में रोगी का चेहरा नीला और फीका ( *Blue & Pale* ) पड़ जाता है । वैसे ही आभ्यन्तरीय रक्तस्राव में रोगी का चेहरा सफेद पड़ जाता है । साथ ही मर्माभिघात के अन्य लक्षणों की उपस्थिति भी रहती है ।

**नाड़ी**—उदरात्यय की प्रारंभिक अवस्था में नाड़ी में कोई विशेष परिवर्तन नहीं पाया जाता । केवल अभ्यंतर रक्तस्राव में नाड़ी की गति प्रारंभिक अवस्था से ही तेज रहती है । स्थानिक विकृति के उपद्रवस्वरूप होने वाले उदरावृत्ति शोफ की उपस्थिति में नाड़ी की गति तेज होने लगती है । बद्धांत्र में नाड़ी की गति से किसी विशेष बात की सूचना नहीं मिल सकती । नाड़ी की गति प्राकृत होनेमात्र से ही उदरात्यय की स्थिति नहीं है, ऐसा समझना नितान्त गलत है । नाड़ी की गति का मापन सभी प्रकार के उदरात्यय में प्रति दो घंटे के अंतर से या आवश्यकतानुसार पंद्रह-पंद्रह मिनट पर भी लेना चाहिये । रोगी की दशा सुधर रही है या खराब हो रही है, इस बात की जानकारी के लिये उदरात्यय में नाड़ी का बहुत बड़ा महत्त्व है ।

**श्वसन**—श्वास की गति में साधारणतया उदरात्यय में कोई अंतर नहीं पाया जाता । श्वसन अधिकतर वक्षीय ( *Thoracic* ) ही होता है । यदि श्वसन संख्या में बढ़ा हुआ हो; तो फुफ्फुस की सावधानी से परीक्षा कर लेनी चाहिये । ऐसी अवस्था में श्वसन का नाड़ी के साथ अनुपात देखना आवश्यक होता है । इसके द्वारा वक्षीय रोगों की उपस्थिति की निश्चिती होती है ।

**ताप या ज्वर**—उदरात्यय के रोगी में प्राकृत, प्राकृत से नीचे या प्राकृत से ऊपर तापक्रम हो सकते हैं । तीव्र-ज्वर उदरात्यय में अधिक से अधिक १०३° तक पाया जाता है । यदि रोगी में इससे अधिक ज्वर मिले तो निश्चित निदान करने के पूर्व वक्ष की परीक्षा ध्यान से कर लेनी चाहिये । वृक्क रोगों में भी कभी-कभी तीव्र ज्वर पाया जाता है । तापक्रम का एकाएक कम हो जाना आंत्रपुच्छ शोथ के रोगी में, आंत्रपुच्छ विदार या कर्दमक ( *Gangrene* ) का सूचक होता है । आमशयिक व्रण-विदार में प्रारंभिक अवस्था में तापक्रम प्राकृत से नीचे रहता है; परन्तु कुछ घंटों के पश्चात् उदरावृत्ति शोथ के कारण वह बढ़ने लगता है । तापक्रम का कम होना विषमयता ( *Toxae-*

mia ) का लक्षण समझना चाहिये । बद्धांत्र में उपद्रव के अभाव में ज्वर प्राकृत या प्राकृत से कम होना चाहिये ।

**जिह्वा**—जिह्वा की परीक्षा से सम्पूर्ण पचन-संस्थान की दशा का अनुमान हो जाता है । जिह्वा में रूखापन ( रूक्षता ), गीलापन ( आर्द्रता ) तथा मैलापन ( मलाढ्यता ) इन तीन बातों को ध्यान से देखना चाहिये । द्रवनाश ( Dehydration ) की उपस्थिति में जिह्वा शुष्क ( रुक्ष ) रहेगी, विषमयता में जीभ ईट के रंग की और शुष्क मिलेगी । वृक्कावसाद ( Renal failure ) में जिह्वा अति शुष्क ईट के रंग की और मलाढ्य रहेगी और श्वास से एक विशिष्ट प्रकार की गंध ( Acetone ) रोगी में मिलेगी ।

**सांस्थानिक-परीक्षा**—उदर और मूत्रवह संस्थानों के परीक्षा के अतिरिक्त निम्न संस्थानों की परीक्षा अधोलिखित रोगों के पृथक्करण के लिये करना आवश्यक होता है ।

**वक्ष-परीक्षा**—द्वारा-हृद्रोग तथा फुफ्फुस रोगों का पार्थक्य उदरात्यय से करना चाहिये । इनमें फुफ्फुसावृत्ति शोथ, आधारीय फुफ्फुस पाक, हृद्धमनी संकोच ( Coronary Spasm ) आदि रोगों को पृथक् करना होता है ।

**वातनाडी-वह संस्थान**—की परीक्षा करके विशेषतः निम्नलिखित रोगों का पार्थक्य करना चाहिये । ( Locomotor Ataxy ) तथा ( Tabes Dorsalis )—इसमें उदरात्यय की ( Abdominal Crisis ) भयङ्कर स्थिति उत्पन्न हो जाया करती है ।

**पृष्ठ वंश या मेरुदण्ड**—पृष्ठवंश के कशोरुकों के क्षय की परीक्षा के लिये । इस अवस्था में भी कदाचित् उदरात्यय की अवस्था मिल सकती है ।

### स्थानिक-परीक्षा

**दर्शन**—इस परीक्षा के लिये रोगी का बिस्तरे पर लेटाकर उसके उदर एवं वक्ष पर के कपड़ों को हटा लेना चाहिये । उदर-स्थल पूर्णतया प्रकाशित होना चाहिये । सर्वप्रथम सम्पूर्ण बाह्य-वृद्धिस्थलों ( Hernial Sites ) को ( Inguinal वन्क्षण, Lumbar कटि, Obturator गवाक्ष, Umbelical नाभि ) उनकी प्राकृत एवं वैकारिक स्थितियों का ज्ञान करने के ध्यान से देखे । इन स्थानों के ऊपर उभार या सूजन मिलने से उनकी स्पर्शन परीक्षा के द्वारा आगे चलकर निश्चित की जा सकती है । पश्चात् सम्पूर्ण

उदर को स्थानिक उभार या आध्मान ( Swelling or Distension ) के लिये देखना चाहिये ।

विविध प्रकार के शूलों में उदर की स्वाभाविक स्थिति में किसी विशेष प्रकार का परिवर्तन नहीं मिलेगा । केवल अवरोधजन्य आंत्रिक-शूल में अवरोध के स्थानानुसार उदर के विभिन्न प्रदेशों में आध्मान पाया जाता है । ऊर्ध्व-लघु आंत्रावरोध में उदर के मध्य में आध्मान मिलेगा । वृहद् आंत्रावरोध में उदर के पार्श्व में मध्य की अपेक्षा अधिक आध्मान मिलेगा । आंत्रानुप्रवेश में केले के फल के आकार-सदृश उभार वृहदांत्र में विकृत स्थल पर दिखाई देगा ।

दर्शन काल में श्वसनगतियों पर भी ध्यान देना चाहिये । श्वसन के साथ-साथ उदर-प्राचीर की गति होती है या नहीं ? उदर-प्राचीर में सम्पूर्ण की गति होती है या उसका कोई विशिष्ट भाग श्वसन के साथ स्थिर रहता है ( गति नहीं करता ? ) ? स्थानिक या व्यापक उदरावृत्ति शोफ ( Peritonitis ) तद् तद् स्थानगत उदर-प्राचीर गति-हीन या स्थिर रहेगा ।

उदर-प्राचीर के वर्ण में परिवर्तन :—कभी-कभी उदर-प्राचीर के वर्ण में परिवर्तन पाया जाता है । रक्तसावजन्य अग्नाशय शोफ ( Acute Haemorrhagic Pancreatitis ) में कभी हरे तथा नील वर्ण के धब्बे कुक्षि में या नाभि प्रदेश में ( Grey Turner's Sign ) or ( Cullen Sign ) पाये जाते हैं ।

उदर-प्राचीर में स्पन्दन की उपस्थिति है या नहीं इस बात को भी देख लेना चाहिये । उदर-गत महाधमनी विस्फार के ( Aneurysm of Abdominal Aorta ) रक्तसाव के परिणामस्वरूप उत्पन्न उदरात्यय में यह लक्षण अस्त्यात्मक होगा ।

**आंत्र-गति**—यदि आंत्र-गति ऊपर से दिखलाई पड़ती हो, तो उसे सावधानी से देखे । लघु आंत्रावरोध में सोपान सदृश ( सीढ़ी जैसी Ladder like ) आंत्र-गति दिखलाई पड़ेगी । आंत्रिक गति को देखते समय गति की

१. दुबले आदमियों में आमाशय व्रण-निर्दार के प्रारंभिक अवस्था में महाप्राचीरा पेशी के कारण आमाशयोर्ध्व प्रदेश ( Epigastrium ) अंदर की तरफ खिंचा हुआ दिखलाई पड़ेगा ।

दिशा एवं स्थान को विशेष रूप से देखना चाहिये। बृहद् आंत्रावरोध में आंत्रगति दाहिने से बाईं ओर जाती हुई दिखाई देगी। आम्लाशयावरोध (आम्लाशयोर्ध्व प्रदेश) में आंत्र की गति बायें से दाहिनी ओर को होती मिलेगी।

**स्पर्शन**—उदर की स्पर्शन परीक्षा करते समय पूरी उदर की दीवाल को शिथिल ( ढीला ) करके रखना आवश्यक होता है। इसके लिये रोगी को उत्तानासन में दोनों पैरों को मोड़कर लेटाना चाहिये। चिकित्सक को चाहिये कि यदि शीत-ऋतु में परीक्षा करनी हो तो वह अपने हाथों को गरमाकर पश्चात् उदर का स्पर्शन करे। परीक्षक को रोगी के बगल में आश्वस्त होकर बैठ जाना चाहिये और समग्र उदर पर हाथ को हल्के से फेरना चाहिये या सुहलाना चाहिये। इस क्रिया से रोगी को आराम मिलता है तथा साथ ही उसकी चिकित्सक में श्रद्धा भी उत्पन्न होती है।

उदर पर इस प्रकार से हाथ फेरने पर किसी विशेष स्थान पर काठिन्य की उपस्थिति का पता आसानी से लग जाता है। रोगी को जिस स्थान पर पीड़ा का अनुभव हो रहा हो उस स्थान से विरुद्ध दिशा में गम्भीर स्पर्शन (Deep-Palpation) आरंभ करना चाहिये। पीडायुक्त स्थल का स्पर्शन सबसे अंत में करना चाहिये।

उदर के विभिन्न स्थानों में स्पर्शातिशय (Hyperaesthesia) स्पर्शासह्यता (Tenderness), स्पर्शकाठिन्य (Rigidity), लोष्ठ (Lump) प्रभृति लक्षणों की उपस्थिति के लिये विशेष ध्यान से देखना चाहिये। स्पर्शातिशय की परीक्षा के लिये तत्स्थानगत चर्मको चुटकी से उठाकर देखें। यह चिह्न विशेषतः तीव्र आंत्रपुच्छ शोथ में दक्षिण जघनखात में उपस्थित रहता है। उपद्रवों की उपस्थिति में यह चिह्न गायब हो जाता है। किसी विशेष स्थान में स्पर्शासह्यता की उपस्थिति उस स्थान के आशय के शोफ की निदर्शक होती है। इसका विस्तृत विवेचन पूर्व के अध्याय में हो चुका है।

**प्रति स्पर्शासह्यता (Rebound tenderness)**—इस लक्षण के ज्ञान के लिये विधि निम्नलिखित है। विकृत स्थान पर हाथ को रखकर उसको प्रत्येक अंतश्वासन की गति के साथ-साथ क्रमशः दबाव को बढ़ाते जाते हैं, इस प्रकार तीन-चार अंतश्वासन होने के पश्चात् हाथ उस स्थान से हटाकर हटा लिया जाता है—ऐसा करने से यदि रोगी अत्यन्त तीव्र पीड़ा का अनुभव करता है तो परीक्षा को अस्त्यात्मक समझना चाहिये। यह परीक्षा उदरावृत्ति-

शोथ में तथा अवरुद्ध आंत्र से उत्पन्न बद्धांत्र (Intestinal obstruction due to strangulation of the Gut) में अस्त्यात्मक मिलती है। स्पर्शासह्यता के स्थान एवं उसकी तीव्रता का उल्लेख भी कर लेना चाहिये।

**काठिन्य**—उदरात्यय में स्थानिक काठिन्य की उपस्थिति तत्स्थानगत उदरावृत्ति के क्षोभ (Irritation) का निदर्शक होता है। यह क्षोभ शोफज स्राव (Inflammatory Exudate) रक्तस्राव तथा आशयों के विदार से निकले हुए द्रवके कारण उत्पन्न होता है। जैसे पित्ताशय तथा आम्लाशय के विदारके पश्चात् स्थानिक काठिन्य की उपस्थिति। यह काठिन्य तत्स्थानगत आशयों की रक्षा के लिये प्रकृति के द्वारा निर्मित होता है। आम्लाशयिक व्रणविदार की प्रारंभिक अवस्था में आम्लाशयोर्ध्व प्रदेश में (Epigastrium) तथा दक्षिण उदरदंडिका (Right Rectus) पेशी के ऊर्ध्वार्ध में (Upperhalf) यह चिह्न व्यक्त रहता है। आंत्रपुच्छ शोथ में इसकी उपस्थिति आंत्रपुच्छ की स्थिति (Position) के ऊपर निर्भर रहती है। विभिन्न प्रकार के शूलों में तत्स्थानगत उदरावृत्ति के क्षोभ के अभाव में यह चिह्न नास्त्यात्मक रहेगा। बद्धांत्र में इस चिह्न की उपस्थिति रहने पर तत्स्थानगत उदरावृत्ति शोथ उपद्रव रूप में उत्पन्न हो गया है, ऐसा समझना चाहिये। स्थानिक संरक्षण (Protective mechanism) की मात्रा जितनी ही अधिक शरीर में होगी उतना यह चिह्न तीव्र स्वरूप का रहेगा, इसके विपरीत होने पर स्थानिक काठिन्य बहुत ही अल्प-बल का पाया जायगा। ऐसी अवस्था शल्य-कर्म के पश्चात् उत्पन्न होने वाले उदरावृत्ति शोफ में पाई जाती है। स्थानिक काठिन्य के सम्बन्ध में उसके स्थान और तीव्रता का उल्लेख करना चाहिये।

लोष्ठ (Lump) स्पर्शन-परीक्षा-उदर के किसी भी भाग में यदि लोष्ठ की उपस्थिति पाई जाती है, तो उस लोष्ठ का गठन, तल किनारे तथा लोष्ठ का समीपवर्ती अंगों के साथ सम्बन्ध एवं चलायमानता या स्थिरता प्रभृति बातों पर ध्यान देना चाहिये। वह लोष्ठ श्वास की गति के साथ चलायमान है या स्थिर है इस बात को भी देख ले। आंत्रान्त्रानु प्रवेश में केले के आकार का लोष्ठ बृहदंत्र में किसी भी स्थान पर पाया जा सकता है, यह लोष्ठ स्पर्शन-परीक्षा काल में तथा पीडायुक्त आंत्र-गति काल में अत्यन्त कठिन होता (अत्यधिक कड़ा) प्रतीत होगा।

स्पर्शन द्वारा विभिन्न वृद्धि स्थलों ( Hernial Sites ) की परीक्षा करके, उनमें कोई विकृति तो नहीं है? यह देख लेना चाहिये। साथ ही उदरस्थ विभिन्न आशयों का उनकी स्थिति, आकार एवं गठन ( यकृत, प्लीहा, वृक्क, मूत्राशय ) प्रभृति का भी स्पर्शन के द्वारा ज्ञान कर लेना चाहिये।

**गुदा-परीक्षा**—अंगुलि द्वारा गुदा-परीक्षा की विधि का विस्तृत विवेचन पहले ही किया जा चुका है। उदरात्यय के रोगियों में गुदा-परीक्षा के पूर्व निश्चित रोग निर्णय नहीं हो पाता। अतएव प्रत्येक उदरात्यय के रोगी की गुदा-परीक्षा जरूर कर लेनी चाहिये। गुदा-परीक्षा के बिना रोग का सम्यक् निदान असंभव हो जाता है। जैसे हृदय के रोग में श्रवण-यंत्र की नितान्त आवश्यकता है; उसी प्रकार उदरात्यय की अवस्था में गुदा-परीक्षा का ऐकान्तिक महत्त्व है। उदरात्यय की सभी परीक्षाओं के किये जाने पर भी यदि गुदा-परीक्षा नहीं हुई तो परीक्षा अपूर्ण है ऐसा समझना चाहिये।

इस परीक्षा के द्वारा तीव्र आंत्रपुच्छ, शोथ, तीव्र वीजवाहिनी शोथ, गुदा के कैंसर, आंत्रानुप्रवेश, श्रोणि विद्रधि ( Pelvic Abscess ), श्रोणिगत उदरावृत्ति शोथ आदि रोगों का निश्चित निदान संभव है।

स्त्रियों में योनि-परीक्षा का भी उतना ही महत्त्व है, इसलिये स्त्रियों में इस परीक्षा को जरूर कर लेना चाहिये। वही गर्भ-स्थिति से उत्पन्न उदरात्यय में इस परीक्षा के द्वारा रोग-विनिश्चय संभव होता है। स्त्रियों में योनि परीक्षा को, गुदा परीक्षा के पूर्व करना चाहिये।

**अंगुलिताडन**—उदर-गुहा में स्वतंत्र द्रव ( Fluid ) की उपस्थिति होने पर चल मंद ध्वनि ( Shifting dullness ) की परीक्षा अस्त्यात्मक मिलेगी। ऐसा द्रव उदरात्यय के रोगी में आमाशयिक ब्रण विदार, तीव्र अग्नाशय शोथ, आंत्र विदार, बहि गर्भस्थिति विदार प्रभृति अवस्थाओं में पाया जाता है। कभी-कभी वस्ति देने के बाद आध्मान के कारण यह परीक्षा उदरावृत्ति में स्वतंत्र द्रव के अभाव में भी व्यक्त मिलती है। इसलिये इस परीक्षा को करते समय ऊपर निर्दिष्ट संभ्रम को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

उदर के किसी विशिष्ट प्रदेश में स्थित उभार यदि आंत्र के विस्फार के कारण स्वरूप है; तो वह अंगुलिताडन में निनादित मिलेगा। स्वाभाविक अवस्था में उदरस्थित मंद ध्वनि के क्षेत्रों में यदि इस परीक्षा के द्वारा निनादित ध्वनि मिले तो उसे बहुत ही सावधानी से देखना चाहिये। इस प्रकार की ध्वनि

आमाशयिक ब्रण-विदार के पश्चात् यकृत-प्रदेश में क्ल मध्य रेखा ( Mid-axillary line ) में पाई जाती है। स्वाभाविक अवस्था में यह स्थान ताडन पर मंद ध्वनि वाला होता है; परन्तु आमाशयिक विदार के कारण महाप्राचीरा पेशी और यकृत के बीच में वायु के भर जाने के कारण यह स्थान निनादित मिलता है। इस चिह्न को प्राकृत यकृत मंद ध्वनि का अभाव ( Obliteration of normal Liver dullness ) कहा जाता है। यह चिह्न दो अन्य अवस्थाओं में भी मिल सकता है। १. फुफ्फुस की श्वासकोष विस्तृति या फुफ्फुषीय वातोत्फुल्लता ( Emphysema of the Lung ) २. भयङ्कर आध्मान ( Gross Distention )। अतएव निश्चित निदान के पूर्व इन संभ्रमों को दूर कर लेना चाहिये।

**श्रवण**—उदरात्यय में श्रवण परीक्षा के द्वारा उदरावृत्ति शोथ तथा तीव्र आंत्रावरोध का विभेद आसानी से किया जा सकता है। इनमें प्रथम में स्तब्ध तथा द्वितीय में सशब्द श्रवण मिलेगा।

**मापन ( Measurement )**—उदरात्यय के रोगियों में समय-समय पर उदर का ( नाभि की सतह पर ) मापन करने से आध्मान की मात्रा का स्थूल रूप से ज्ञान हो जाता है। चिकित्सा की दृष्टि से इस ज्ञान का महत्त्व रहता है।

## विशेष परीक्षाएँ

१. आमाशय प्रक्षालन ( Stomach lavage )—

२. वस्ति ( Enema )—व्यापक उदरावृत्ति शोथ में वस्ति से हानि पहुँचने की संभावना रहती है। साधारणतया बद्धांत्र में इसका महत्त्व है। द्विवस्ति परीक्षा—बद्धांत्र में प्रथम बार वस्ति देने से अवरोध के दूरस्थ भाग में स्थित मल निकलता है; पुनः दूसरी बार की दी हुई वस्ति में द्रव या तो आंदर ही रह जाता है या वैसे ही बाहर निकल आता है। इस परीक्षा के अस्त्यात्मक होने पर बद्धांत्र का निश्चित निदान हो जाता है।

३. मूत्र परीक्षा—इस परीक्षा द्वारा कुछ रोगों के सापेक्ष निदान करने में सहायता मिलती है। मूत्र विषमयता ( Uraemia ) को आत्ययिक उदर रोगों के साथ विभेद करना सरल हो जाता है।

इसी प्रकार तीव्र अग्नाशय शोथ के सन्देह में मूत्र में ( Diastase ) की मात्रा का अत्यधिक बढ़ा हुआ मिलना रोग के स्थिर निदान में सहायक होता है ।

४. रक्त—श्वेत कायाणुओं का सकल तथा सापेक्ष्य कण-गणन, रक्त-निपीड प्रभृति बातों की परीक्षा कर लेनी चाहिये ।

५. लोवो की तारक (पुतली) विस्फार परीक्षा—तीव्र अग्नाशय शोथ की उपस्थिति में आँख में 'एड्रिनैलीन' ( १ : १००० शक्ति का ) दो तीन बूँद डालने से पुतली का विस्फार पाया जाता है । प्राकृत अवस्था में इस द्रव का कोई भी प्रभाव नहीं होता । यह परीक्षा अधिक विश्वसनीय नहीं है ।

६. क्षकिरण परीक्षा—साधारण क्षकिरण चित्रण से कभी-कभी बहुत महत्त्वपूर्ण बातों का पता उदरात्यय में लग सकता है । महा-प्राचीरा-पेशी के नीचे वायु की उपस्थिति होने पर; आम्लाशयिक व्रण विद्रार या आंत्र विदार का निश्चित निदान हो सकता है । वृद्धांत्र की अवस्था में वायु और जल के विभिन्न स्तर ( सतहें ) देखे जा सकते हैं । आंत्रानुप्रवेश में बेरियम की वस्ति द्वारा चित्रण करने से वस्ति के अन्तिम भाग का चित्रण द्विशूलाकार ( Pincer like ) मिलेगा ।

## षष्ठ योजना का परिशिष्ट

प्राचीन ग्रंथों में उदर रोग या जठर रोग नाम से (Acute & Chronic Intra Abdominal Enlargement) एक अध्याय मिलता है । इसमें उदर में उत्सेध ( उमार ) पैदा करने वाले ( Generalised Abdominal Enlargement) यावतीय आठ रोगों का वर्णन पाया जाता है । यदि विचार करके देखा जाय तो उसमें स्पष्टतया दो प्रकार के रोगों के वर्गों का उल्लेख है—१. तीव्र उदर रोग ( Acute Abdomen ) तथा २. जीर्ण-उदर रोग ( Ghronic Abdomen ) । यह भी जान लेना आवश्यक है कि प्राचीनोक्त उदर रोगों में केवल (Intra-Abdominal Swelling) का ही वर्णन आता है न कि उदर की दीवाल के बाह्य रोगों ( Parietal Swellings) का । जीर्ण उदर रोगों में विभिन्न प्रकार के औदरीय उत्सेध या अर्बुदों ( Abdominal Tumours & Swelling ) का उल्लेख मिलता है । इनमें लक्षणों की तीव्रता अधिक नहीं होती और रोग वर्षों तक चलता रहता है "चिराभिबृद्धं कठिनं शीतस्पर्शं गुरुं स्थिरम्" ( बाग्भट नि० १२ ) । यह वर्णन अधिकतर लाक्षणिक और स्थूल है । इस वर्ग के भीतर वातोदर, श्लेष्मोदर, सन्निपातोदर, यकृद्दाल्युदर, प्लीहोदर (Fat, Flatus, Faces, Fluid or Visceral Enlargements) प्रभृति रोगों का उल्लेख मिलता है ।

तीव्र औदरिक रोगों में पित्तोदर, वृद्धगुदोदर तथा परिस्त्राव्युदरों का उल्लेख पाया जाता है । इस सभी अवस्थाओं में तीव्र उदर शूल का होना एक प्रमुख लक्षण है । इसी लक्षण के आधार पर आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस वर्ग में पाये जानेवाले सभी रोगों के लिये एक नाम तीव्र उदर ( Acute Abdomen ) दिया है । रोगों के स्वरूप अत्यन्त सांघातिक होते हैं इसलिये दूसरा पर्याय इस वर्ग के रोगों के लिये उदर के आत्ययिक या अतिपाति रोग नाम से ( Abdominal Emergencies ) किया मिलता है । फलतः तीव्र उदर शूलयुक्त रोगों के लिये तीन शब्द १. तीव्र उदर २. तीव्र उदर

१. साधारणतया मूत्रगत 'डायस्टेज' की मात्रा १०-३० इकाई की होती है; तीव्र अग्नाशय-शोथ में यह मात्रा २०० इकाई तक या इससे भी अधिक जा सकती है ।

शूलयुक्त रोग ३. उदर की आत्ययिक अवस्था या उदरात्यय समुचित प्रतीत होते हैं। इन शब्दों में से सबसे लघु अक्षरों में पूरे भाव का बोध करानेवाला शब्द उदरात्यय ठहरता है। अतएव प्रस्तुत पुस्तक में **Acute Abdomen or Abdominal Emergencies** के पर्याय रूप में उदरात्यय शब्द का ही प्रयोग किया गया है।

आधुनिक मतानुसार तीव्रोदर या उदरात्ययकी अवस्था निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न हो सकती है। इन हेतु समुदायों को सात बड़े समुदायों में विभक्त कर सकते हैं—

१. शूल ( **Colics** )—पित्ताशय, वृक्क, उपांत्र या आंत्रपुच्छ तथा आंत्र से उत्पन्न।
२. वृन्तावरोध ( **Torsion of the Pedicle** )—प्लीहा के वृन्त का मुड़ जाना या बीजकोष द्रव ग्रन्थि ( **Ovarian Cyst** ) के वृन्त का मुड़ जाना।
३. रक्त स्राव—वह्निगर्भस्थिति विदार, विषम ज्वरज प्लीहा का विदार।
४. तीव्र आंत्रावरोध—[क] अवरोधकर यांत्रिक हेतु ( **Mechanical** )
  - (१) आंत्र स्रोत ( **Lumen** ) में—पित्ताश्मरी ( **Gallstone** ) गण्डू पद कृमि (केचुवे) मलाश्म ( **Feccolith** ) या पुरीषाश्म।
  - (२) आंत्र प्राचीर या दीवाल में—क्षयज सन्निरोध ( **T. B. Stricture** ) एवं अर्बुद, आंत्रांत्र प्रवेश, आंत्र सम्मूर्छन या आंत्र परिवर्तन, आंत्र संकोच ( **Enter Ospasm** )
  - (३) आंत्र प्राचीर के बाहर में—बाह्य तथा अंतर आंत्रवृद्धि ( **Hernia** ), बंध ( **Bands** ), संसक्ति ( **Adhesions** ), अर्बुद आदि।

[ख] विषमयताजन्य—आंत्राघात या आंत्र वध ( **Paralytic ileus** )

[ग] वातिक ( **Nevrogenic** )—हिरश्चर्पण का रोग।

[घ] रक्तवह ( **Vascular** )—आंत्र रक्तवाहिनियों का स्कंदन ( **Thrombosis** ) या अंतःशल्यता ( **Embolism** )।
५. विदार या छिद्रयुक्त होना ( **Rupture or Perforation** )—आमाशयिक व्रण, मन्थरक व्रण ( **Typhoidulcer** )।

६. व्रण शोफ ( **Inflammation** )—तीव्र आंत्रपुच्छ शोथ, तीव्र रक्त-सावी अग्नाशय शोथ ( **Acute Haemorrhagic Pancreatitis** ), तीव्र पित्ताशय शोथ ( **Acute Cholecystitis** ), तीव्र बीजवाहिनी शोथ ( **Acute Salphingitis** ) तीव्र फुफ्फुस पाकज उदरावृत्ति शोथ ( **Acute Pneumonic Peritonitis** ) स्थाली-शोथ ( **Diverticulitis** ) आदि।

७. उदर बाह्य हेतु—( **Extra Abdominal** )

- [क] वक्षगत—महाप्राचीरीय फुफ्फुसावृत्ति शोथ ( **Diaphragmatic Puericy** ), प्रारंभिक फुफ्फुस पाक, स्वयं भिन्न वातोरस ( **Spontaneous Pneumothorax** ), हृदयावृत्ति शोफ ( **Pericarditis** ), हृच्छूल ( **Angina Pectoris** ), हृद्धमनी स्कंदन ( **Coronary Thrombosis** ).
- [ख] सुषुम्ना तथा पृष्ठवंश के रोग—पीठ का रोग ( पृष्ठवंश क्षय ), कटिकशेरुकों का तीव्र अस्थि मजापाक ( **Acute Osteomyelitis** )—**Lower dorsal or Lumbar Vertebrae Tabes Dorsalis-Gastric Crisis** ).
- [ग] अधो पर्शुकान्तरीय नाड़ियों की कक्षा ( **Herpes Zoaster** ) या पर्शुकान्तरीय नाड़ी शूल ( **Intercostal Neuralgia** )
- [घ] सार्वदैहिक रोग—विषम ज्वर, मन्थरक, औदरीय इन्फ्लुयेन्जा, रक्त-पित्त ( **Purpura** ), मधुमेह, मस्त्रिका, श्लीपद, रज्जुशोथ, ( **Funiculitis** ).

उदरात्यय से साम्य रखती हुई कुछ अन्य औदरिक दशायें भी होती हैं; जिन्हें औदरिक सद्योघात ( **Abdominal Injuries** ) कहते हैं। इस दशा में औदरिक अंगों का मूक अभिघात ( **Blunt Injuries** ) पाया जाता है। यद्यपि बाहर से देखने पर सद्योव्रण के चिह्न नहीं दिखलाई पड़ते तथापि औदरिक अंगों के अभिघात तथा अंतः रक्तस्राव के कारण उदरात्यय की अवस्था रोगी में उत्पन्न हो जाती है। इसमें रोगी की परीक्षा की विधि उदरात्यय के समान ही करनी चाहिये।

इस प्रकार से उत्पन्न उदरात्यय में दो स्थितियों की संभावना रहती है। १—उदर के ऊपरी भाग २—उदर का अधो भाग। ऊपरी भाग या ऊर्ध्व

उदर ( Upper Abdomen ) के अभिघातों में यकृत, प्लीहा एवं वृक्क प्रभृति अंगों में रक्तसाव होने की संभावना रहती है तथा अधो उदर के अभिघातों में वस्ति एवं आंत्रों के विदार के कारण उदरावृत्ति शोफ के हो जाने का भय रहता है ।

रक्तसाव होने पर अन्तःरक्तसाव के लक्षण जैसे—अरति (Restlessness), श्वास कृच्छ्र ( Air Hunger ), मुख की पाण्डुता-फीकापन ( Pallor ), तीव्र गति की वातिक नाड़ी ( Rapid Pulse ) शीतोच्छ्वास ( Quick & Shallow Respiration ), शीत पादकराननम् ( Sub-normal Temperature ), तथा हृदयावसाद की प्रगति क्रमशः बढ़ती हुई दिखलाई पड़ेगी । “तत्रान्तर लोहितं पाण्डुं शीतपादकराननं शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमानन्दं च विवर्जयेत् ।” ( सु० चि० ३ ) । इन सार्वदैहिक लक्षणों के अतिरिक्त अभिघात-युक्त स्थान के अनुरूप स्थानिक लक्षण भी उपस्थित रहेंगे ।

यकृत-विदार—दाहिनी ओर वक्ष के अधोभाग के मथित आघात ( Crushed ) होने से हो सकता है । स्पर्शनाक्षमता, यकृत-मंदता ( Liver dullness ) के क्षेत्र का बढ़ जाना चलमंदध्वनि ( Shifting dullness ) प्रभृति निदानकर लक्षण हैं । बाद में चलकर कामला की उत्पत्ति हो सकती है ।

प्लीहा-विदार—बाईं ओर वक्ष के अधोभाग के मथित ( Crushed ) होने पर विदार की संभावना रहती है । अन्तःरक्तसाव के लक्षण उपस्थित मिलते हैं । निदानकर विशिष्ट चिह्नों में निम्नांकित प्रमुख हैं—

१. बैलेनेसी का चिह्न—उदर के वामार्द्ध की मंदता ( Left half of the Abdomen ) प्लैहिक रक्त जम जाने के कारण ऐसा होता है । दाहिनी ओर को चल मंद ध्वनि भी मिलती है ।

२. केर का चिह्न—वाम स्कंध की ओर पीड़ा का संवहन ।

३. सेगेसर का प्लैहिक विन्दु—अंगुलि के अग्र से अक्ष के ठीक ऊपर दबाने से ( उरः कर्णमूलिका और ग्रीवा पेशियों Scalenus Medius के मध्य में ) तीव्रपीड़ा होती है ।

सामान्यतः सभी अवकाश युक्त अंगों के विदारों में उदरावृत्ति शोफ की संभावना बनी रहती है ।

१. क्षुद्रांत्र या लध्वंत्र—अवकाशयुक्त आंत्रों में सबसे अधिक इसी अंग के विदार की संभावना रहती है । इसमें भी लक्षण आमाशयिक व्रण विदार सदृश ही होते हैं । निदानकर लक्षणों में इन बातों पर ध्यान देना चाहिये । १. स्थानिक काठिन्य या अनम्यता ( Rigidity ) २. आंत्रगतियों का प्रारंभिक अवस्था से ही नाश ३. कक्ष-मध्य रेखा में यकृत मंदता का अभाव ।

वृहदांत्र या स्थूलांत्र—इसका विदार उदरावृत्ति के बाहर और भीतर दोनों प्रकार का हो सकता है । उदरावृत्ति के भीतर वाले विदार के प्रकार में ( Intra Peritoneal Rupture ) उदरावृत्ति शोफ की अत्यधिक संभावना रहती है । क्योंकि स्थूलांत्र के द्रव्य बहुत उपसर्गकर होते हैं, वे बाहर आकर शीघ्रता से उदरावृत्ति का शोफ पदा कर देते हैं । उदरावृत्ति के बाहरी प्रकार के विदार ( बाह्य उदरावृत्ति स्थूलांत्र विदार ( Extra peritoneal ) में विस्तृत पाक ( Cellulitis ) तथा शाल्यिक वातोत्फुल्लता ( Surgical Emphesema ) का उत्पन्न होना विशिष्ट लक्षण हैं ।

वस्ति—इस अंग का भी उदरावृत्ति-बाह्य तथा अंतःउदरावृत्ति उभय प्रकार का विदार संभव है । जब तक उदरावृत्ति शोथ नहीं उत्पन्न हो जाता अंतःउदरावृत्ति विदार का निदान कठिन होता है । मूत्र त्याग की प्रबल इच्छा होते हुए भी रोगी मूत्र त्याग करने में असमर्थ रहता है । मर्माघात साथ-साथ मिलता है । चल मंद ध्वनि, बहिर्निर्गत मूत्र की तत्स्थान गत धातुओं में फैलने के ऊपर निर्भर करती है ।

श्रोणि के भग्नों में विशेषतः भग शृंग ( Ramii ) के भग्नों के साथ बहिः उदरावृत्ति वस्ति विदार पाया जाता है ।

प्राचीन ग्रन्थकारों ने उदरात्यय की तीन अवस्थाओं का उल्लेख इस प्रकार से किया है—

पित्तोदर—( Acute Peritonitis )—

यच्चोष्णं तृष्णा ज्वर दाहयुक्तं  
पीतं सिरा भ्रान्ति च यत्रपीतम्  
पीताक्षि विन्मूत्रनखाननस्य  
पित्तोदरं तत्त्वचिराभि वृद्धिम्

वद्धगुदोदर, वद्धांत्र या तीव्र आंत्रवरोध—( Acute Intestinal obstruction )—यस्यांत्र मन्नेरूपलेपिभिर्वा वालाशमभिर्वा सहितैः पृथग्वासंचीयते तत्र मलः सदोषः क्रमेण नाड्यामिव संकरोहिनिदृश्यते चास्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पं । हृन्नाभि मध्ये परिवृद्धिमेति तच्चोदरं विट्स्मगंधिकंच प्रच्छर्दयत् वद्ध गुदी विभाव्यः । ( Foecalish Vomiting )

परिखाव्युदर ( Acute Perforation or Rupture of of the bowel, or Acute Peritonitis due to Rupture of the Visceras ) शल्यं यदन्नोपहितं तदन्नं भिनत्ति यस्यागतमन्यथावा तस्मात्सुतोन्नात् सलिलप्रकाशः स्रावः सवेद्वैगुदस्तुभूयः नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यतेतीव विदह्यते च । ( सु० नि० ७ )

## सप्तम योजना

### आंत्रपुच्छ शोथ-तीव्र तथा जीर्ण व तत्सम्बन्धी विशेष विचार

Appendicitis—Acute & Chronic—Special feature.

#### आधार

इतिवृत्त—

वर्तमान आक्रमण या दौरा—  
( Attack )

पीड़ा—प्रारंभ-समय

परिस्थिति ( Circumstances ) ;

हठात् ( Suddenness ) ;

तीव्रता ( Severity ) ;

स्थिति ( Situation ) ;

आत्मलिङ्ग ( Character ) ;

स्थिति में परिवर्तन ।

आत्मलिङ्ग में परिवर्तन ( Change of Character )

वमन ( Vomiting ).

ज्वर या ताप ( Temperature )

प्रस्राव या मूत्र त्याग ( Micturation )

मलत्याग ( Bowels )

स्त्रियों में मासिक या ऋतु के साथ सम्बन्ध ।

किसी पूर्व आक्रमण या दौरे का वृत्त ।

दैहिक परीक्षा—

सार्वदैहिक—

मुखाकृति ( Facies ), नाड़ी, ताप,

जिह्वा, रक्त ( श्वेत कायाणूत्कर्ष

Leucocytosis ) के लिये ।

## स्थानिक—

- दर्शन—** उष्ण प्रयोग, (स्वेद लेप) आदि के चिह्न ।  
श्वसन कर्म में उदर की गतियों की  
परिमिति ( Limitation ) ।  
आध्मान ( Distension )  
लोष्ठ ( Lump )
- स्पर्शन—** स्पर्शनाक्षमता—स्थिति, पीड़ा के साथ सम्बन्ध ।  
कोटि ( Degree )  
त्वचा का बढ़ा हुआ स्पर्श ज्ञान-स्पर्शातिशय  
( Hyperaesthesia )  
अनम्यता या जाड्य ( Rigidity )  
स्थिति ; ( Position )  
कोटि ; ( Degree )  
पिण्ड ( Mass )  
गठन ( Consistency )  
पृष्ठतल ( Surface )  
किनारे edges )  
सम्बन्ध ( Relation )  
स्थिति ( Position )  
गतिशीलता  
( Mobility )  
आंत्र ( Gut )
- गुद-परीक्षा—( Rectal Examination )  
योनि-परीक्षा—( Vaginal Examination )  
अंगुलिताडन  
आंत्र का पिण्ड के साथ सम्बन्ध, यदि  
कुछ हो ।  
स्वतंत्र जल ( Free fluid )

## विशेष परीक्षण—

क्षकिरण तथा क्षकिरणामेघ भोजन  
( Opaquemeal )—जीर्ण अत्र-  
स्थाओं में

आंत्रपुच्छ ' शोथ-तीव्र तथा जीर्ण व तत्संबंधी विशेष विचार  
Appendicitis—Acute & Chronic—Special feature.

## विस्तार

**वर्तमान आक्रमण-पीड़ा**—रोगी को पीड़ा किस समय शुरू हुई इस बात का निश्चित पता रोगी से पूछकर ज्ञात करे । तदनन्तर यह भी पूछे कि रोगी को पीड़ा के प्रारम्भ होने से लेकर चिकित्सक के पास तक आने में कितना समय बीत गया । इस समय को घंटों में नोट कर लेना चाहिये । चिकित्सा की दृष्टि से इस समय का बड़ा ही महत्त्व है । कभी-कभी रोगी की पीड़ा का उसके भोजन के साथ सम्बन्ध मिलता है । पीड़ा एकाएक शुरू हुई या धीरे-धीरे शुरू हुई इस बात को भी पूछ लेना चाहिये । यह भी पूछना चाहिये कि पीड़ा शुरू में किस स्थान पर प्रारम्भ हुई और अब किस स्थान पर है । आंत्रपुच्छ

१. अंग्रेजी में प्रचलित Appendix शब्द के कई पर्याय भाषा में हो सकते हैं—अंधान्न Blindarm ( German ), उगडुकपुच्छ, उपान्न तथा आंत्रपुच्छ । इनमें आंत्रपुच्छ शब्द का प्रचलन अधिक होने से प्रस्तुत पुस्तक में Appendix अंग के लिये आंत्रपुच्छ शब्द का ही प्रयोग किया गया है ।

आंत्रपुच्छ कोप या तीव्र आंत्रपुच्छ शोथ का ( Acute Appendicitis ) उल्लेख प्राचीन आयुर्वेद के ग्रन्थों में इस नाम से नहीं पाया जाता है । प्राचीन युग में निदान तथा चिकित्सा प्रायः लक्षणों के आधार पर दोष की विवेचना करते हुए करनी पड़ती थी अतएव इन आचार्यों को प्रत्येक अंग या इन्द्रिय विशेष में होने वाले व्रणशोको एवं विद्रथियों की पृथक् पृथक् विवेचना को जरूरत नहीं थी । सामान्य विद्रथि ( Abscess ) के निदान और चिकित्सा का उल्लेख कर दिया जाता था और चिकित्सा सामान्य एवं विशेष सूत्रों के अनुरूप दोषानुसार चिकित्सक को व्यवस्था कर लेनी पड़ती थी ।

शोथ में पहले छः घंटों में पीड़ा नाभि के पास रहती है, तत्पश्चात् 'मैकबनी' के विन्दु पर स्थिर हो जाती है। यदि आंत्रपुच्छ शोथ किसी अवरोध (Obstruction) के कारण है; तो पीड़ा (सान्तरस्वरूप की) रुक-रुक कर

आचार्य सुश्रुत ने एक अध्याय में विविध विद्रथियों के निदान (Abscess in General : Special feature) तत्सम्बन्धी विचार और एक दूसरे अध्याय में उनकी चिकित्सा का वर्णन किया है। विद्रथियों को दो वर्गों में बाँटा है। १. बाह्य (External) २. आन्तरिक या अन्त विद्रथि (Abscesses of Internal organs i.e. thoracic and Abdominal Visceras)। आन्तरिक विद्रथियों के वर्ग में कई प्रकार के विद्रथियों का उल्लेख किया है—निश्चित रूप से तीव्र अन्त्रपुच्छ शोथ का भी इसी के भीतर समावेश हो जाता है। सम्भवतः वंक्षण विद्रथि के नाम से किया गया सुश्रुतोक्त वर्णन इसी रोग का हो।

आन्तरिक विद्रथियों में उनके स्थान तथा उनके लक्षणों का स्थूल विवेचन किया मिलता है—जैसे—

पृथक् संभूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम् ।

वल्लभीकवद् समुन्नद्धमन्तः कुर्वन्ति विद्रथीम् ॥

गुदे वस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वंक्षणयोस्तथा ।

वृक्कयो यकृति प्लीहि हृदये क्लोमिन् वा तथा ॥ (सू० ति० १०)

गुद विद्रथि—Acute Proctitis, Rectal Abscess, Ischio Rectal Abscess

वस्ति विद्रथि—Acute Phlegmanous, Cystitis.

वस्तिमुख विद्रथि—Periurethral Abscess Prostatic Abscess.

नाभि विद्रथि—Acute Localized Peritonitis.

कुक्षि विद्रथि—Sub-nephric & Perinephric Abscess & other Retroperitoneal Absces.

वंक्षण विद्रथि—Acute Appendicitis, Appendicular Abscess, Iliac Abscess.

वृक्क विद्रथि—Pyonephrosis.

यकृति विद्रथि—Acute Hepatitis or Liver Abscess.

प्लीहा विद्रथि—Spleenic Abscess.

हृदय विद्रथि—Pericarditis, Endocarditis, Purulent

क्लोम—Acute Pancreatitis, Cholecystitis

अधिक तेज होती है; परन्तु यदि यह साधारण सूजन के परिणामस्वरूप है तो उस दशा में पीड़ा विद्रथि की तरह निरन्तर बनी रहती है।

किसी अवरोध से उत्पन्न आंत्रपुच्छ शोथ में पीड़ा शूल के स्वरूप की होती है और उसका प्रारंभ रात को या उत्तररात्रि में होता है। आंत्रपुच्छ शोथ के साथ-साथ रोगी को अतिसार या विब्रंध दोनों ही हो सकता है। साधारण-तथा कोष्ठबद्धता या विब्रंध ही अधिक पाया जाता है; परन्तु अतिसार की प्रवृत्ति मिलने पर रोगी की स्थिति अधिक शोचनीय समझी जाती है, और उसमें उपद्रवों की संभावना अधिकाधिक रहती है। अतिसार का पाया जाना इस रोग में भ्रमावह (Confusing) होता है; साथ ही रोग की भयंकरता का सूचक होता है। रोगी ने पीड़ा के पश्चात् रेचक औषधियों का प्रयोग किया है या नहीं इसे भी पूछ लेना चाहिये।

पीड़ा के स्थान में परिवर्तन रोग के प्रारम्भिक अवस्था में पाया जाना स्वाभाविक है; परन्तु वीस या चौबीस घंटे के पश्चात् पीड़ा के स्थान में परिवर्तन का पाया जाना आंत्रपुच्छ की विशेष स्थिति का निर्देशक होता है। जैसे आंत्रपुच्छ का अन्य भाग यदि मूत्रगवीनी (Ureter) या वस्ति (Bladder) के साथ सम्बन्धित हो; तो पीड़ा उन स्थानों (क्षेत्रों) में भी पाई जाती है। तथा उन क्षेत्रों के क्षोभ के कारण कुछ आमक लक्षण भी पैदा हो सकते हैं।

इसी प्रकार यदि आंत्रपुच्छ, लम्बंत्र के अन्तिम (Terminal Ilium) के मूल में हो तो रोगी को खाना खाने के पश्चात् पीड़ा की संभावना रहती है (Appendicular dyspepsia) यदि आंत्रपुच्छ मलाशयकी दिशा में स्थित हो, तो मलाशय के क्षोभ के कारण अतिसार की प्रवृत्ति रोगी में दिखाई देती है। अर्थात् मलप्रवृत्ति आंत्रपुच्छ विद्रथि का प्रधान लक्षण है।

शोथयुक्त आंत्रपुच्छ (Catarrhal Appendicitis) में प्रारम्भ में पीड़ा साधारण ही होती है, परन्तु कुछ घंटों के पश्चात् सूजन से मार्गावरोध होने पर पीड़ा शूल सदृश (Colicky nature) की हो जाती है। पीड़ा का एकाएक अभाव हो जाना यह आंत्रपुच्छ के छिद्रता (Perforation) और उसके निर्जीवांगत्व का प्रधान लक्षण है।

वमन—प्रत्येक आंत्रपुच्छ शोथ में वमन प्रारम्भिक अवस्था में या कुछ समय के पश्चात् मिलता है। अवरोध के कारण उत्पन्न आंत्रपुच्छ कोप में वमन व्रण शोथ के कारण उत्पन्न हुए आंत्रपुच्छ शोथ की अपेक्षा जल्दी तथा

तीव्र स्वरूप का पाया जाता है। साधारणतया आंत्रपुच्छ शोथ में प्रथम पीड़ा, पश्चात् वमन और तत्पश्चात् ज्वर—तापक्रम की वृद्धि मिलता है—इसे 'मर्फी का लक्षण समूह' ( Murphy's Syndrome ) कहते हैं। उपर्युक्त तीनों लक्षणों का ऊपर निर्दिष्ट क्रम के अनुसार पाया जाना आंत्रपुच्छ शोथ का आत्मलक्षण ( विशेष चिह्न Characteristic ) है।

वमन रोगी को कितनी बार हुआ और कितने-कितने अन्तर से हुआ है यह पूछकर नोट कर लेना चाहिये। वमन की मात्रा, गंध, वर्ण प्रभृति बातों का भी उल्लेख करना चाहिये। साधारणतया आंत्रपुच्छ शोथमें वमन पित्तयुक्त ( Bilious ) होता है। जिन रोगियों में वमन नहीं पाया जाता उनमें अरोचक ( Anorexia ) एवं हृल्लास ( मिचली आना Nausea ) मिलता है। दौरे के शुरु में यदि वमन बहुत वेग से और संख्या में अधिक हुआ है, तो इससे आंत्रपुच्छ अधिक तनावयुक्त ( Distended ) हो गया है, ऐसा समझना चाहिये। ऐसी स्थिति में उसके छिद्रित होने की संभावना रहती है।

**ताप**—साधारणतया प्रथम दस से सोलह घंटे के पश्चात् पाया जाता है। ताप का पीड़ा तथा वमन के पश्चात् पाया जाना—यह रोग की सापेक्ष निश्चिति के लिये बड़े महत्त्व का लक्षण है। ज्वर ६६° से १०१° ( फे० ) तक पाया जाता है। किसी भी अवस्था में तीव्र आंत्रपुच्छ शोथ में ताप १०१° से अधिक नहीं रहता। इससे अधिक होने पर आंत्रपुच्छ कोप का निदान संशयात्मक होता है तथा सापेक्ष निदान में आने वाले अन्य रोगों के विषय में विचार करना आवश्यक होता है। रोगी में तापक्रम का अधिक होना रोग की तीव्रता का निर्देशक नहीं है; अर्थात् आंत्रपुच्छ शोथ में तापक्रम तथा रोग की गंभीरता का कोई पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है। तापक्रम का अकस्मात् कम हो जाना या प्राकृत से कम होना गंभीरता सूचक समझना चाहिये।

**मूत्रत्याग**—कभी कभी आंत्रपुच्छ शोथ के रोगी में मूत्रवह संस्थान से सम्बन्धित लक्षण पाये जाते हैं। इन लक्षणों का पाया जाना आंत्रपुच्छ की स्थिति के ऊपर निर्भर करता है। जैसे मूत्र में रक्त का पाया जाना; आंत्रपुच्छ का दाहिने गवनी के सम्पर्क में रहना बतलाता है। यदि मूत्राशय आंत्रपुच्छ के सम्पर्क में हो तो बार-बार मूत्रत्याग की इच्छा होती है तथा कभी-कभी मूत्रावरोध भी पाया जाता।



**ऋतुस्त्राव**—स्त्रियों में ऋतुस्त्राव के बारे में पूछ लेना चाहिये। पीड़ा का ऋतुस्त्राव के साथ का सम्बन्ध भी जान लेना आवश्यक होता है। डिम्बग्रंथि या बीजवाहिनी शोथ में (Eoopheritis & Salpingitis) आंत्रपुच्छसदृश ही लक्षण मिल सकते हैं; परन्तु इनमें ऋतुस्त्राव की अनियमितता तथा उससे सम्बन्धित अन्य लक्षणों का मिलना भी संभव रहता है।

**पूर्ववृत्त**—इसके पश्चात् रोगी से पूछें कि उसे इसी प्रकार के कितने दौरे हो चुके हैं? वे दौरे कितने अंतर से हुए? उनमें विशेष लक्षण क्या थे और चिकित्सा क्या की गई? यदि वर्तमान दौरा पूर्व दौरों की अपेक्षा अति शीघ्र ( कम अंतर से ) आया हो और यदि इसमें लक्षणों की तीव्रता मिले; तो यह दौरा अधिक गंभीरतासूचक हो सकता है। ऐसी अवस्था में संभाव्य उपद्रवों को ध्यान में रखते हुए चिकित्सा मार्ग का निश्चय करना चिकित्सक का कर्त्तव्य हो जाता है।

### दैहिक परीक्षा

**सार्वदैहिक**—आंत्रपुच्छ शोथ में क्लम ( क्लान्ति ), शिरःशूल, अरोचन, हृल्लास, वमन प्रभृति सार्वदैहिक लक्षण मिलते हैं। रोगी के सभी संस्थानों की विधिपूर्वक परीक्षा कर लेनी चाहिये। इनमें श्वसन तथा पचन संस्थान की परीक्षा विस्तृत रूप में करनी चाहिये। कभी-कभी दक्षिण महा-प्राचीरागत फुफ्फुसावृत्ति शोथ ( Diphagrmatic Puerisy ) तथा प्राचीरीय फुफ्फुसपाक ( Basal Pneumonia ) के प्रारम्भिक लक्षण; आंत्रपुच्छ शोथ के प्रारंभ के लक्षणों के सदृश ही हो सकते हैं।

रोगी किस प्रकार विस्तर पर लेटा है—यह ध्यान से देखना चाहिये। आंत्रपुच्छ में शोथ रोगी उत्तानासन में दाहिना पैर मोड़कर लेटने में आराम का अनुभव करता है।

**जिह्वा**—प्रारम्भ में थोड़ी मैली रहती है; परन्तु चौबीस घंटे के पश्चात् अधिक मलाढ्य ( Thickly Coated ) हो जाती है। रोगी का श्वास दुर्गन्धयुक्त हो जाता है। **नाड़ी**—रोग की तीव्रता तथा उपद्रवों के ज्ञान के सम्बन्ध में, रोगी की नाड़ी की गति बहुत महत्त्व की है। नाड़ी की गति उपद्रवों के अभाव में ज्वर के अनुपात में बढ़ती है ( १ अंश ताप के लिये नाड़ी की गति १० बढ़ जाती है। ) ज्वर के अभाव में बढ़ती हुई नाड़ी की गति अत्यन्त गंभीरतासूचक होती है। ज्वर का माप तथा नाड़ी की गति प्रति

घंटे पर लेनी चाहिये । यदि दो चार घंटे में नाड़ी की गति ज्वर के अभाव में दस से बीस तक भी बढ़ी हो, तो वह रोगी तुरन्त आपरेशन के योग्य समझा जाता है । नाड़ी गति शुरू से ही ११० के ऊपर होना रोगी की स्थिति की गम्भीरता की सूचना देता है ।

### स्थानिक परीक्षा—

**दर्शन**—में सर्वप्रथम त्वक् सवर्णता की परीक्षा करनी चाहिये यदि रोगी ने उस स्थान पर सेंक किया हो या उष्ण प्रलेप लगाया हो तो वहाँ की त्वचा लालिमायुक्त रहेगी । आंत्रपुच्छ के फटने पर या उसमें स्थानिक निर्जीवाङ्गत्व ( Gangerene ) होने पर त्वचा के वर्ण में परिवर्तन हो सकता है ।

इसके पश्चात् श्वसन कर्म के साथ उदर की दीवाल की गति को भी ध्यान से देखना चाहिये । “शेरेन का त्वक् त्रिकोण” ( Sherren's Skin Triangle ) में तीव्र आंत्रपुच्छ शोथ की प्रारम्भिक अवस्था में वहाँ पेशियोंकी गति परिमित रहेगी ( Rigidity ) फलतः उदर की दीवाल के साथ इस क्षेत्र की गति नहीं होगी ( Steady ) । जीर्ण आंत्रपुच्छ शोथ में स्थानिक उभार मिल सकता है । उभार की उपस्थिति होने पर लोष्ठ ( Lump ) का आकार, परिमाण, स्थिति और उसके ऊपर की त्वचा की दशा आदि का वर्णन करना चाहिये ।

इसके बाद सम्पूर्ण उदर की स्थिति का ज्ञान करे । उदर में आध्मान, दृश्यमान आंत्रगति प्रभृति बातों को भी देखे । रोगी को पीड़ा किस स्थान पर हो रही है उसको उसे अपनी अँगुलि से बताने को कहें । यदि रोगी ठीक प्रकार से ‘मैकवर्नी’ के बिन्दु के ऊपर अँगुलि रखता है तो निश्चित रूप से आंत्रपुच्छ कोप से ही पीड़ित है यह जानना चाहिये ।

**स्पर्शन**—स्पर्शन सदैव विकृत स्थान के कुछ दूरी से प्रारम्भ करना चाहिये । आंत्रपुच्छ कोप में दक्षिण जघनघात ( Iliac fossa ) में स्पर्शासह्यता, ( Tenderness ) स्पर्शाजन्य पीड़ा, तथा ( Pain ) स्पर्शातिशय ( Hyperaesthesia ) की उपस्थिति मिलेगी । इन विभिन्न लक्षणों की

१. नाभि; दक्षिण भगशृङ्ग ( Pubic spine ) और दक्षिण जघन कूट का सर्वोच्च बिंदु ( Highest point of Iliac creast ) इन तीनों बिंदुओं को मिलाने से यह त्रिकोण बनता है ।

२. Anterior superior Iliac spine से नाभि की दिशा में १॥ से २ इंच दूरी पर ।

तीव्रता का ज्ञान करने के लिये कुछ परीक्षाओं का रोगी में करना आवश्यक होता है । इनका विस्तृत रूप से नीचे उल्लेख किया जा रहा है :—

### उत्तान स्पर्शातिशय ( Epicritic Hyperaesthesia )—

इसमें एक सूई के द्वारा ऊपरी त्वचा की स्पर्शसंवेदना की मात्रा या सापेक्ष ज्ञान किया जाता है । विधि यह है कि एक सूई से शेरेन त्रिकोण के क्षेत्र में हल्के हाथ से सर्वत्र समान दबाव देते हुए खरोचा जाय ( Scratch ) तो त्वक्गत पीड़ा का अनुभव रोगी को अन्यस्थलों की अपेक्षा इस क्षेत्र में अधिक होगा । क्योंकि इस क्षेत्र की त्वचा का स्पर्शज्ञान अतिशय बढ़ा हुआ रहता है । इस परीक्षा को करते समय रोगी से पूछने की आवश्यकता नहीं रहती, केवल उसकी आकृति के द्वारा ही संवेदना का ज्ञान कर लेना होता है ।

इस चिह्न की उपस्थिति इस बात की निदर्शक होती है कि आंत्रपुच्छ अभी तक अछिद्रित ( Unperforated ) है । छिद्रित होने के बाद यह चिह्न नास्त्यात्मक हो जाता है ।

**लिगाट की विधि**—उपर निर्दिष्ट परीक्षा; चर्म को सिर्फ चुटकी से उठाकर भी की जा सकती है जिसे लिगाट की विधि कहते हैं । इस चिह्न का अस्त्यात्मक होना ही एकमात्र लक्षण तीव्र आंत्रपुच्छ-शोथ के स्थिर निर्णय करने के लिये पर्याप्त है ।

**रोवसिंग का चिह्न**—( Roving's Method ) इस परीक्षा विधि में वामजघन खात में स्थित बृहदान्त्र पर अँगुलियों से दबाव डाला जाता है, जिससे वायु पीछे की ओर जाकर उण्डुक ( Geacum ) में पीडन उत्पन्न करती है । आंत्रपुच्छ शोथ की उपस्थिति में रोगी को इस प्रकार वाम जघनखात में दबाने से दाहिने जघनखात में पीड़ा का अनुभव होगा ।

इस चिह्न का महत्त्व :—दक्षिण जघनखात में उत्पन्न लक्षण, आंत्रपुच्छ शोथ के परिणामस्वरूप हैं, या दक्षिण जघनखात की गहराई में स्थित लसीकाग्रथियों के शोथ के कारण हैं—इनमें सापेक्ष निदान करने में हैं । दक्षिण जघनखात स्थित लसीकाग्रथियों के शोथ में यह चिह्न नास्त्यात्मक होगा ।

**मैकवर्नी का चिह्न**—मैकवर्नी के बिन्दु के ऊपर अँगुलि से दबाव डालने पर रोगी पीड़ा का अनुभव करेगा ।

**स्थानिक काठिन्य**—स्थानिक काठिन्य की उपस्थिति इस बात की सूचना देती है कि आंत्रपुच्छ शोथ के परिणामस्वरूप बाह्य उदरावृत्ति

( Parietal Peritoneum ) में शोथ की उपस्थिति है । यदि आंत्र-पुच्छ उगड़ुक के पीछे हो या स्थानिक उदरावृत्ति से गहराई ( Local Peritoneum ) में अवस्थित हो; तो स्थानिक काठिन्य की ( Local Rigidity ) अनुपस्थिति मिलेगी । स्थानिक काठिन्य प्रतिदिन बढ़ती है या घटती है इसे ध्यान से देखना चाहिये । काठिन्य के स्थान से आंत्रपुच्छ का अवस्थान ( Position ) का पता लग सकता है ।

लोष्ठ या पिण्ड ( Lump ) की उपस्थिति होने पर उसका गठन, आकार, परिमाण, चलायमानता इत्यादि बातों की परीक्षा करनी चाहिये । आंत्रपुच्छ शोथ के परिणामस्वरूप दो प्रकार के लोष्ठ इस स्थान पर पाये जा सकते हैं । १. थोड़ा कड़ापन लिये हुए रहेगा और उसकी बढ़ने की प्रवृत्ति नहीं रहेगी ऐसा लोष्ठ उस स्थान के वपा ( Omentum ) के उस स्थान पर चिपक जाने ( संसक्ति ) से बनता है । २. दूसरे प्रकार का लोष्ठ आंत्रपुच्छ शोथ के उपद्रवस्वरूप बनी हुई विद्रधि ( आंत्रपुच्छ की ) के परिणामस्वरूप मिलता है । ऐसी अवस्था में वह मृदु होता है और पूय की उपस्थिति के कारण उसमें तरंग-प्रतीति भी पाई जाती है ।

यदि लोष्ठ ( Appendicular Lump ) में वपा की उपस्थिति है, तो वह कुछ-कुछ गतिशील हो सकता है; परन्तु विद्रधि के कारण है तो वह चलायमान न होकर स्थिर रहेगा । दक्षिण जघन खात में उभार निम्न-लिखित रोगों में मिलता है जिसका आंत्रपुच्छ शोथ के परिणामस्वरूप बने हुए लोष्ठ ( Lump ) से विभेद करना पड़ता है ।

१. उगड़ुक कैंसर
२. उगड़ुक क्षय
३. उगड़ुक वल्मीक ( Actinomyces )
४. कामरूपीयार्बुद ( Amoeboma )
५. कटिलम्बिनी विद्रधि ( Psoas Abscess )
६. जघन विद्रधि ( Illiac Abscess )
७. जघन अर्बुद ( Illiac Tumour )
८. लसिका ग्रंथीया ( Lymph nodes )

१. जीर्ण प्रवाहिका के उपद्रव रूप में होने वाला उगड़ुक का शोथ होता है उसमें उगड़ुक की दीवाल काफा मोटी हो जाती है ।

**अंगुलिताडन**—इस परीक्षा द्वारा लोष्ठ का आंत्र के साथ सम्बन्ध निश्चित किया जाता है । यदि लोष्ठ आंत्र के स्थानिक उभार के कारण है तो लोष्ठ के ऊपर निनादित ध्वनि पैदा होगी; परन्तु यदि लोष्ठ का आंत्र के साथ सम्बन्ध नहीं है, तो वहाँ पर ध्वनि मंद ( Dull ) मिलेगी । अंगुलि-ताडन से उस स्थान में जल की उपस्थिति है या नहीं इसका भी ज्ञान हो सकता है । आंत्रपुच्छ के छिद्रित होने के पश्चात् स्थानिक मंदध्वनि रोगी की अवस्थिति ( Posture ) के अनुसार बदलती रहेगी । ( Shifting dullness )

**गुदा-परीक्षा**—पूर्वकथित विधि के अनुसार रोगी को उत्तानासन में रखकर गुदा की परीक्षा करनी चाहिये । आंत्रपुच्छ के श्रोणिस्थित ( Pelvic Position ) रहने पर दस और ग्यारह बजे के बीच स्थान पर रोगी पीड़ा तथा स्पर्शासह्यता का अनुभव करेगा । गुदा-परीक्षा का उपक्रम इस रोग में विशेष महत्त्व रखता है । इस परीक्षा के द्वारा आंत्रपुच्छ कोप के उपद्रवस्वरूप उत्पन्न हुए विद्रधि तथा लोष्ठ ( Lump ) प्रभृति बातों का ज्ञान निश्चित रूप से हो सकता है । गुदा परीक्षा करने पर दाहिनी तरफ की पीड़ा तथा स्पर्शनाक्षमता का अभाव होनेमात्र से ही आंत्रपुच्छ शोथ का निराकरण नहीं किया जा सकता । क्योंकि यदि आंत्रपुच्छ उगड़ुक के पार्श्व भाग में ऊपर की ओर स्थित है; तो आंत्रपुच्छ शोथ की उपस्थिति में भी गुदा-परीक्षा नास्त्यात्मक होगी अर्थात् गुदा-परीक्षा से भी दक्षिण जघनखात में पीड़ा तथा स्पर्शनाक्षमता नहीं मिलेगी ।

**योनि-परीक्षा**—स्त्रियों में योनि-परीक्षा के द्वारा कई रोगों के पार्थक्य में सहायता मिलती है । इसलिये स्त्रियों में इस परीक्षा को जरूर कर लेना चाहिये । जैसे आंत्रपुच्छ शोथ का बीज-ग्रंथि शोथ तथा बीज-वाहिनी शोथ प्रभृति रोगों से पार्थक्य करना ।

**विशेष परीक्षाएँ**—रक्त-श्वेतकायाणुत्कर्ष के लिये । साधारणतया आंत्रपुच्छ शोथ में बारह से अठारह हजार तक श्वेत कायाणुओं की संख्या मिलती है । बाइस हजार के ऊपर श्वेत कायाणुओं की संख्या का पाया जाना उपद्रवों का सूचक होता है । जैसे विद्रधि या निर्जीवाङ्गत्व की उपस्थिति में श्वेत कायाणु दिन प्रति दिन बढ़ते हुए मिलेंगे ।

जीर्ण अवस्थाओं में 'बेरियम दूध' के द्वारा आंत्रपुच्छ तथा समीपवर्ती अंगों की परीक्षा करनी चाहिये । इससे आंत्रपुच्छ की स्थिति का तथा यदि अवरोध हो, तो उसका ज्ञान हो जाता है; जिससे शल्यकर्म में सुविधा होती है ।

यदि कभी वृक्क शूल के साथ शंका उत्पन्न हो तो उसके निराकरण के लिये क्षकिरणामेघ द्रव्यों की सहायता से मूत्रवह संस्थान का भी चित्रण कर लेना चाहिये । ( Pyelography—I. V. )

जीर्ण आंत्रपुच्छ शोथ के रोगियों में पुरीष की भी परीक्षा कामरूपीय प्रवाहिका से पार्यक्य करने के लिये आवश्यक है ।

आंत्रपुच्छ कोप के सम्बन्ध में पाये जाने वाले कुछ अन्य चिह्न तथा परीक्षाएँ—आगे दी जाती हैं ।

उण्डुक के पश्चात् भाग में आंत्रपुच्छ ( Retrocaecal appendicitis ) की स्थिति रहने पर आंत्रपुच्छ कोप के विशिष्ट लक्षण ( पीड़ा, स्थानिक काठिन्य तथा दक्षिण जघनखात की स्पर्शासह्यता ) नहीं पाये जाते । ऐसी स्थिति में नीचे लिखी हुई परीक्षा के करने से सन्देह का निराकरण हो जाता है । इस परीक्षा विधि को 'बाल्डविन' की परीक्षा कहते हैं—

१. अंगुलि द्वारा अधिकतम स्पर्शान्नात्मक बिन्दु ( Maximum Tendor Spot ) को निश्चित कर लेना चाहिये । तत्पश्चात् उस स्थल पर अंगुलि द्वारा इस प्रकार दबावे कि रोगी को बहुत ही कम पीड़ा का अनुभव हो । फिर रोगी को दाहिना पैर घुटने की न मोड़ते हुए उठाने को कहे । यदि इस प्रकार से पैर को उठाने पर रोगी की पीड़ा में वृद्धि होती है य अत्यधिक पीड़ा से रोगी तुरन्त पैर को विस्तरे पर गिरा देता है; तो परीक्षा अस्त्यात्मक है ऐसा समझे । इस परीक्षा के द्वारा उण्डुक के पश्चात् भाग में स्थित आंत्रपुच्छ के शोथयुक्त स्थिति का ज्ञान होता है । ( Retro-Gaecal Appendicitis )

२. कटिलंबिनी पेशी परीक्षा ( Psoas Test ) इस विधि में यदि शोथयुक्त आंत्रपुच्छ कटिलंबिनी पेशियों के ऊपर स्थित है, तो सान्निध्य के कारण उसमें तनाव ( State of Irritation ) पैदा हो जाता है । ऐसी अवस्था में विटप संधि ( Hip joint ) के फैलाने से रोगी को दक्षिण जनखधमौत पीड़ा का अनुभव होगा ।

यही कारण है कि साधारणतया आंत्रपुच्छ शोथ का रोगी अपने दाहिने पैर को मोड़कर रखता है ।

३. गवाक्ष पेशियों की परीक्षा—इसी प्रकार यदि आंत्रपुच्छ अंतरीय गवाक्ष पेशी के ( Int. obturator Muscle ) सान्निध्य में है; तो इस पेशी को फैलाने से रोगी आमाशयाधः ( Hypo Gastrium )

प्रदेश में पीड़ा का अनुभव करेगा । दाहिने पैर को पेट के ऊपर मोड़कर अन्दर की ओर घुमाने से गवाक्ष पेशियों पर तनाव पड़ता है । ( Flexion and internal rotation )

४. आंत्रपुच्छ में निर्जीवाङ्गत्व ( Gangrene ) उत्पन्न होने पर दक्षिण जघनखात में दबाने पर दाहिनी तरफ का अण्ड ऊपर की ओर खिंच जाता है और जब तक दबाव रहता है वह ऊपर की ओर खिंचा रहता है और दबाव के हटा लेने पर पूर्ववत् हो जाता है । दाहिनी तरफ का अण्डकोष ऊपर की ओर खिंच जाता है ऐसा भी कुछ विद्वानों का मत है । यह चिह्न वृषणोन्नमनी ( Cremastric Muscle ) के क्षोभ के कारण उत्पन्न होता है । ऐसी अवस्था में कुछ समय के पश्चात् 'शेरेन त्रिकोण' के आधे पार्श्व में त्वचा का वर्ण नीला और हरापन लिये हो जाता है ।

५. बच्चों में कभी-कभी आधारीय फुफ्फुस पाक तथा आंत्रपुच्छ कोप के सापेक्ष निदान में कठिनाई उत्पन्न होती है ।

ऐसी स्थिति में वक्ष के निचले हिस्से को दोनों बगल ( पार्श्व ) से भीतर की ओर दबाकर देखना चाहिये । ऐसा करने से फुफ्फुसीय पाक की दशा में रोगी कष्ट का अनुभव करेगा; परन्तु आंत्रपुच्छ शोथ की उपस्थिति में रोगी को इस परीक्षा से किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव नहीं होगा । इसे दोत्त ( Dott ) की परीक्षा कहते हैं ।

६. स्त्रियों में आंत्रपुच्छ शोथ तथा तीव्र बीजवाहिनी शोथ ( Salpingitis ) के सापेक्ष निदान करते समय अधोलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिये :—

बीजवाहिनी शोथ में स्थानिक काठिन्य ( Rigidity ) कम मात्रा में पाई जाती है तथा नाड़ी की गति एवं ज्वर अपेक्षाकृत अधिक होता है । साथ ही स्पर्शासह्यता भगास्थि के दोनों ओर समान मात्रा में उपस्थित मिलती है ।

७. दक्षिणगवीनी में अशमरी की उपस्थिति तथा तीव्र आंत्रपुच्छ शोथ में सापेक्ष-निदान करने के लिये निम्नलिखित परीक्षा को करे ।

उदर के वाम पार्श्व में प्लीहा के क्षेत्र पर दो अंगुलियों को रखे, फिर रोगी से साँस लेने ( उच्छ्वास ), छोड़ने ( निःश्वास ) और खॉसने को कहे । जिस समय रोगी साँस छोड़ रहा हो या खॉस रहा हो, अंगुलियों के अग्र से उस भाग को दबावे । दबाने से यदि पीड़ा का अनुभव दाहिनी ओर जघनखात में हो तो आंत्रपुच्छ कोप का निश्चय हो जाता है; अन्यथा नहीं ।

## अष्टम योजना

### गुदा के रोग व तत्संबन्धी विशेष विचार

( Rectal Gases : Special Feature )

#### आधार

#### वर्तमान दशा—अवधि

१. पीड़ा—विशेषतः मलत्याग के साथ उसका सम्बन्ध; तीव्रता और अवधि ।
२. साव—आत्मलिङ्ग ( Character )—  
आँव या श्लेष्मा ( Mucus ); रक्त, चमकता हुआ लाल या काला; पूय इत्यादि, दुर्गन्ध ( Foul-Smelling )  
मलत्याग के साथ या पृथक्  
पुरीष ( पाखाने ) के साथ मिला हुआ या नहीं ?
३. पुरीष का आत्मलिङ्ग : विबंध, अतिसार, लम्बा ( Large ) सुचारु ( Well formed )  
छोटा ( Small ), वर्तिसदृश ( Pipe stem ),  
फीता जैसे ( Tape like )
४. कोई चीज नीचे गिरती है ( Any discharge ) मल-  
त्याग करने के साथ या पृथक् । पर्याय से विबंध  
एवं अतिसार Alternating diarrhoea  
& constipation )  
कोई औदरिक दशा सहचर ( Associated ) है ।

( १०९ )

#### पूर्ववृत्त—

पूर्व का कोई आक्रमण या दौरा ।  
कितने समय तक रहा ।

#### दैहिक परीक्षा—

स्थानिक—दर्शन : बहिर्निगत अर्श ( Projecting Piles )

गुद-भ्रंश ( Prolapse )

कण्डु का प्रमाण—(Evidence of Pruritis)

धौत चर्म वत् त्वचा ( Washleather Skin )

रावयुक्त नाड़ी व्रण ( Discharging Sinus )

गुद विदार ( Fissures )

स्पर्शन ( अंगुलि से परीक्षा; एषणी ( Probe )  
का प्रयोग न करे )

बहिःसंकोचनी ( Ext sphincter ) की दशा ।

पीड़ायुक्त; अल्पबल, अतिबल, शिथिल या आकुंचन  
युक्त ( Patulous anus or spasm )

कुपित अर्श ( Thrombosed Haemorrhoids )

गुदा-विदार का ऊर्ध्व प्रान्त ( Upper ) अर्श  
( Polypus )

भगन्दर का अंतर्मुख ( Internal opening of  
the fistula )

बाहर से ( Induration ) काठिन्य

( गुदा में अंगुलि और अंगूठा बाहर रखकर  
दोनों के बीच में )

ष्ठीला ग्रंथि ( Prostate )

पिण्ड ( Mass )—

गठन—( Consistency )

पृष्ठतल ( Surface )

किनारे

सम्बन्ध ( Relation )

- व्रण ( Ulcer )—  
 पृष्ठ—( Surface )  
 व्रणान्त—किनारे ( Edges )  
 आधार तल ( Base )  
 स्राव ( Discharge )  
 सन्निरोध ( Stricture )  
 स्त्रियों में—गर्भाशय ग्रीवा ( Cervix ) आदि  
 आस्थापन वस्ति ( Enema ), राशि ( Amount )  
 तथा परिणाम ( Result )  
 'बिस्मथ' तथा 'वेरियम' का अंतःभरण ( Ba. Enema ); क्षकिरण  
 अशोयंत्र ( Proctoscope )—यदि संभव हो  
 तो तत्रस्थ विकृत धातुओं की अणुवीक्षणत्मक  
 परीक्षा  
 ( With possible Removal of  
 Snip for Section )  
 गुदान्तः-दर्शक  
 या बलय-स्थूलांत्र, दर्शक  
 उदर रोग की उपस्थिति के लिये परीक्षा—उदाहरणार्थ  
 बद्धान्त्र या कैंसर की संभावना में उसका प्रसार  
 ( Extension )

## गुदा के रोग तथा तत्संबंधी विशेष विचार ( Rectal Cases : Special Feature )

### विस्तार

#### वर्तमान वृत्त—

**अवधि**—गुदा से सम्बन्धित व्याधियों में रोगी से प्रश्न के द्वारा रोग की अवधि का पता लगाना चाहिये । अवधि का महत्त्व गुदा के कई रोगों में पाया जाता है । कई विकार सहज या जन्मजात पाये जाते हैं जैसे अचिद्र गुद ( Imperforated Anus ) सहज त्रिकास्थि नाड़ीव्रण ( एक जन्मजात

विकार है जिसमें अनुत्रिकास्थि के ऊपर मध्य रेखा में एक नाड़ीव्रण पाया जाता है, जिसमें बालों का पुच्छ बाहर आते हुए दिखाई पड़ता है Pilonidal Sinus ) । कई अवस्थायें तीव्र स्वरूप की होती हैं, जिनकी काल-मर्यादा अल्प होती है जैसे—भगंदर पीडिकायें ( जघन गुद विद्रधि ( Ischio Rectal Abscess ); गुद विद्रधि ( Rectal Abscess Submucous ), आभ्यंतराशों का कोप ( Thrombosis of the Internal piles ), तीव्र गुद पाक ( Acute Proctitis ) गुद विदार ( Analfissures ), आघातजन्य गुदा के व्रण ( Injuries

१. प्राचीन ग्रन्थों में गुदा से सम्बद्ध कई व्याधियों का उल्लेख मिलता है । इनमें अर्श, भगंदर-पीडिका तथा भगंदर का विस्तार से वर्णन पाया जाता है । भगंदर पीडिका के सम्बन्ध में लिखा है कि "गुदा के समोपवर्ती दो अंगुल के क्षेत्र में जो पीडिका पाई जाती है वह भगंदर पीडिका कहलाती है; जब तक वह अपक्व रहती है वह पीडिका का रूप है और उसके पककर फट जाने ( यदि पूय का अशेष निर्हरण हुआ ) पर वह भगंदर लेती है ।"

गुदस्य द्वयंगुलेक्षेत्रे पार्श्वतः पिडिकातिष्ठत्

भिन्ना भगंदरो ज्ञेयो स च पृष्वविधो मतः । ( मा० नि० )

तेन भगगुदवस्ति प्रदेश दारणात् भगन्दरा इत्युच्यते ।

अपक्वापिडिका, पक्वास्तु भगंदराः ॥ ( सू० सू० ४ )

भगंदर पीडिका तथा भगंदर के पाँच भेद बतलाये गये हैं शतपोनक ( वायु से ) Multiplexfistula उष्ट्रशीव ( पैतिक ) ।

परिस्रावी ( श्लैष्मिक ) ( Piles and fistula ) ।

शम्बूकावर्त्त ( सान्निपातिक ) Horse Shoe Shaped ।

उन्मार्गिग ( क्षतज ) ( Due to injury to the Rectal wall ) कुछ ग्रन्थकारों ने अर्शो भगंदर का स्वतन्त्र भी उल्लेख किया जिसमें अर्श और भगंदर दोनों की उपस्थित रहे ।

२. गुद विदार ( Anal fissure ) को भगंदर संज्ञा के भीतर ही प्राचीनों ने समाविष्ट कर लिया है । अस्थि शक्य के द्वारा मांस के लोभी व्यक्तियों में होने वाले विकारों तथा भगंदर बड़ा विशद वर्णन पाया जाता है ।

इतना ही नहीं चिकित्सा की दृष्टि से पूर्ण या अपूर्ण, एकमुख या द्विमुख, अन्त-मुख या वहिमुख-अवाचीन या पराचीन प्रभृति शब्दों का व्यवहार ( Complete or incomplete, Blind or open ; Blind internal or Blind External fistula ) इन अर्थों के द्योतनार्थ भी पाया जाता है । ( सु० नि० ४, सु० चि० ८ )

to the Rectum ) ( मल के साथ हड्डी का टुकड़ा निकलते हुए उससे, या बंदूक की गोली से या वस्ति के नेत्र ( Nozzle ) से इस प्रकार के अभिघात हो सकते हैं—तथा परि-गुदीय रक्तसंचय ( Peri Anal Haematoma ); रेडियम के परिणामस्वरूप होनेवाले तीव्र ( गुद पाक ( Proctitis ) प्रभृति )

गुद समीपवर्ती जीर्ण रोगों में जिनकी अवधि लम्बी होती है ऐसे कई रोग मिलते हैं—जैसे ' अर्श ( Piles ); भगंदर ( Fistula ); क्षय, कैंसर वल्मीक ( Actinomycosis ) आदि के व्रण; जीर्ण गुद पाक ( Chronic Proctitis ) सन्निरुद्ध गुद ( Strictures of rectum ) साधारण तथा घातक अर्बुद, गुदभ्रंश तथा फिरंगार्श ( Gonyloma ) ।

पीड़ा के विषय में पूछते समय रोगी को पीड़ा मल त्याग के पूर्व, साथ में या मल त्याग के पश्चात् होती है इसे पूछना चाहिये । साधारणतया अर्श तथा सन्निरुद्ध गुद में मल त्याग के पूर्व पीड़ा होती है । अर्श में रोगी के मल त्याग के समय यदि अर्श बाहर निकला हो तो पीड़ा होती है । गुदभ्रंश, निरुद्ध अर्श, ( Stangulation of Piles ) गुद विदार की अवस्था में रोगी को मल त्याग के पश्चात् आधा से एक घंटे तक तीव्र स्वरूप की पीड़ा होती है । गुदा के समीप में एक और विशेष प्रकार की व्याधि

१. अर्श ( Piles ) का बड़े विस्तार के साथ हेतु, सम्प्राप्ति, विकृति, औषध, शस्त्र, क्षार तथा तत्सम्बन्धी अग्नि कर्म Medicinal, operative & clamp & cautery method आदि का वर्णन पाया जाता है । मांस प्ररोह या मांसांकुर या अर्श बहिरार्श या अन्तरार्श या आभ्यन्तरार्श । ( External or Internal piles ) तथा स्वतन्त्रतया रक्तार्श ( Bleeding piles ) आदि का भी वर्णन पाया जाता है ।

अर्श के संबन्ध में चर्मकोल ( warts etc. ) का भी वर्णन मिलता है, जिसका उल्लेख पूर्व में हो चुका है । ( सु० नि० २ । सु० चि० ६ । )

२. गुदभ्रंश-प्रवाहणात्साराभ्यां निर्गच्छेद्गुदं बहिः ।  
( Anapropse ) रुचं दुर्बल देहस्यतं गुदभ्रंशं तमादिशेत् ॥

पाई जाती है जिसे अनुत्रिकास्थि शूल ( Coccydinia ) कहते हैं जिसका मलत्याग के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता । यह पीड़ा जीर्णघात, आमवात, संध्यस्थि शोथ ( Osteo arthritis ) के कारण होती है, बैठने या चलने फिरने से अधिक बढ़ जाती है ।

पीड़ा की तीव्रता तथा पीड़ा की अवधि के विषय में भी रोगी से पूछ लेना चाहिये ।

**गुदा दारुण्य ( Rectal Crisis )**—इस अवस्था में रोगी को ऐसी पीड़ा का अनुभव होता है मानों कोई कील गुदा में ठोकी जा रही हो या कोई आम की गुठली अंदर घुसा रहा हो । छीला ग्रंथि ( Prostate ) के उपद्रव-स्वरूप भी कभी-कभी गुदा में तीव्र प्रकार की पीड़ा होती है । इस प्रकार की पीड़ा बैठने पर बढ़ जाती है । ( Proctalgia Fugax ) में होने वाली पीड़ा ऐंठनयुक्त होती है—ऐसी अवस्था संभवतः गुदोत्सिनी ( Levator Ani ) पेशी के तीव्र आकुंचनों से उत्पन्न होती है ।

कुछ ऐसी भी अवस्थाएँ गुदा में पाई जाती हैं जो परिणाम में बहुत भयंकर होते हुए भी बहुत दिनों तक बिना किसी प्रकार की पीड़ा के बनी रहती हैं । जैसे अर्श, क्षय, जीर्ण प्रवाहिका, कैंसर तथा फिरंगार्श ।

**स्त्राव**—किस प्रकार का है—उसका गंध, वर्ण, मात्रा इत्यादि के बारे में रोगी से पूछ कर पता लगाना चाहिये । गुदा में निम्नलिखित स्त्राव रोगों के परिणाम स्वरूप पाये जाते हैं जिनका विस्तृत विवरण नीचे दिया जाता है ।

### गुदा से स्त्राव—

(क) आम का ( Mucus ) १. अर्श ( Piles )  
२. प्रवाहिका ( Dysenteries )  
३. आंत्रानुप्रवेश ( Intussusception ) इसमें आँव के साथ रक्त भी मिला रहता है । )

(ख) रक्त का—( Blood ) १. गुद विदार ( Fissures )  
२. कैंसर  
३. रक्तार्श ( Bleeding piles )  
४. गुदभ्रंश ( Prolapse anii )  
५. क्षय

६. आघात  
 ७. अधोग रक्तपित्त ( रक्तसावी व्याधियाँ )  
 ( Haemophilic Disease )  
 ८. ब्रणयुक्त मांसार्श ( Ulcerated Polypus )

(ग) पूय या दुर्गन्धयुक्त साव

( Pus or Fowl smelling discharges ) १. विविध विद्रधियाँ ( आंत्रपुच्छ विद्रधि जो गुदा में फूटी हो )

२. कैंसर  
 ३. फिरंगाश

(घ) मल तथा वायु—इस प्रकार का साव उन नाड़ी ब्रणों में पाया जाता है जिनका गुदा के साथ सम्बन्ध रहता है । ( Complete fistula ) ।

साव मल के साथ मिला हुआ आता है या मल से अलग आता है इस बात को भी रोगी से पूछना चाहिये । गुदा के निचले हिस्से में होनेवाली व्याधि के परिणामस्वरूप होने वाला साव मल से पृथक् रहेगा । जैसे अर्श, विद्रधि, विदार प्रभृति में । गुदा के ऊपरी हिस्से में होनेवाली व्याधियों में साव मल के साथ मिला हुआ आयेगा जैसे क्षय, कैंसर, प्रवाहिका आदि में । रक्तार्श में होनेवाला रक्तसाव मल के बाहर चिपका हुआ रहता है और प्रत्येक समय में एक ही स्थान पर रहेगा । विदार से उत्पन्न रक्तसाव मल के पिछले हिस्से पर एक पेन्सिल की रेखा की तरह लगा रहेगा और मल-त्याग के पश्चात् भी बूँद-बूँद गिरेगा ।

**मल का आत्मलिङ्ग ( Character )**—रोगी का पाखाना बँधा हुआ आता है या पतला या आँव रक्तयुक्त होता है इसका पता पूछ कर रोगी से लगाना चाहिये । सन्निरुद्ध गुद ( Stricture of Rectum ) में मल का आकार बेसन के बने सेब के ( वर्त्ति ) जैसे ( Pipe-Stem like ) होता है । साथ ही रोगी से उस मल-मूत्र प्रवृत्ति की आदतों के बारे में भी पूछ लेना चाहिये । रोगी पाखाने के समय में किसी चीज के नीचे आने का तो अनुभव नहीं करता है ? ऐसा अनुभव अर्बुद ( Adenoma ), गुदभ्रंश, अर्शभ्रंश ( Prolapse of the Piles ), तथा आंत्रानुप्रवेश में होता है । पर्याय से कभी विबंध और कभी अतिसार का वृत्त रोगी में मिलता है या नहीं ? ऐसा वृत्त कैंसर तथा क्षयज सन्निरोध ( T. B. Stricture ) में मिलता है ।

रोगी को गुदा की व्यथा के साथ-साथ अन्य भी सार्वदैहिक कष्ट हैं या नहीं ? कभी-कभी गुदा की व्याधियाँ अन्य रोगों के परिणाम स्वरूप भी पाई जाती हैं जैसे स्त्रियों में आर्त्तव विकारों ( Menstual disurbance ) से गुदा गत पीड़ा; आशयभ्रंश ( Visceroptosis ) में गुदभ्रंश का पाया जाना; अथवा यकृद्वालयुर ( Cirrhosis ) में अर्श का पाया जाना सम्भव है ।

**पूर्ववृत्त**—इसी प्रकार की व्याधि से रोगी इसके पूर्व पीड़ित तो नहीं रहा ( वच्चों में बस्तिगत अश्मरी की उपस्थिति होने पर गुदभ्रंश या काँच ( Prolapse of Rectum ) उपद्रव स्वरूप में हो सकता है ) । पूछकर पता लगाना चाहिये । यदि पीड़ित हुआ था तो वह कितने दिनों तक पीड़ित रहा । गुदभ्रंशवाले रोगियों में गुदभ्रंश के पूर्व किसी जीर्ण ज्वर का वृत्त मिलना आम घटना है । अर्श में शराब पीने का इतिहास मिलना कभी-कभी संभव है । वैसे ही गुदा मार्ग के समीपवर्ती भाग में किये गये किसी प्रकार के पूर्ववर्ती शस्त्र कर्म के पश्चात् सन्निरुद्ध गुद होने की संभावना रहती है; भगन्दर पिडिका का शस्त्र कर्म में पूय का निःशेष निर्हरण न होने से भगंदर की उत्पत्ति हो सकती है ।

### दैहिक परीक्षा —

**दर्शन**—इस परीक्षा की विधि में रोगी को बायें करवट पर लेटाकर उसे दाहिना पैर पेट के ऊपर मोड़ने के लिये कहना चाहिये । ( Left lateral position ) इसके अतिरिक्त और भी कई स्थितियों में रोगी को रखकर परीक्षा करने के विधान हैं । जैसे रोगी को पीठ के बल लेटा कर उसके दोनों पैरों को पेट के ऊपर मोड़कर ( Lithotomy position ) या यदि रोगी स्वस्थ हो तो घुटने और केहुनी के बल मुँह नीचे करके लेटाकर तदनन्तर परीक्षा करें । वामपार्श्वसन ( Left lateral Position ); उत्तानासन ( Dorsal Position ); जानुकपूर्वासन ( Knee Elbow Position ) ।

रोगी की दशा के अनुसार उपर्युक्त किसी एक स्थिति में रखकर दर्शन परीक्षा का आरंभ करना चाहिये । सर्वप्रथम गुदा मार्ग एवं उसके समीपवर्ती चर्म को ध्यान से देखना चाहिये । बहुत से रोगों का निदान केवल दर्शन मात्र से ही हो जाता है । जैसे बाह्यार्श, भगंदर, फिरंगाश, विद्रधि । इसके पश्चात् समीपवर्ती चर्म को देखे । उसपर खुजलाने से पड़े हुए नख-चिह्न आदि

का निरीक्षण करे। यदि नाड़ीब्रण है तो उसका स्त्राव, उसकी गति ( किस दिशा में है ) तथा उसका स्थान प्रभृति बातों को ध्यान से देखना चाहिये। यदि रोगी उत्तानासन पर है; तो विकार की स्थिति का स्थान-निर्देश घड़ी के शब्दों में करे जैसे ५ बजे, ११ बजे, ८ बजे ( 5 O'clock, 11 O'clock, 8 O'clock etc ) करना चाहिये। यदि छुः बजने के स्थान पर अर्श की उपस्थिति हो; तो साधारणतया उसके ऊपर अंदर की ओर दरार ( विदार ) होने की संभावना रहती है। ( Sentinal Piles associated with fissure )

यदि भगंदर उपस्थित हो तो उसका गुदान्त ( Anal Margin ) से दूरी कितनी है इसको भी नोट करे। भगंदर की उपस्थिति पूर्वार्द्ध ( Anterior half ) या पश्चिमार्द्ध ( Post Half ) में है इसकी भी निश्चित कर लेनी चाहिये। इस ज्ञान के आधार पर यह निर्णय किया जा सकता है कि भगंदर, अंदर की ओर कहाँ पर खुलेगा। यदि भगंदर पश्चिमार्द्ध में गुदान्त से डेढ़ इंच के अंदर है तो वह गुदा में अंदर की ओर ६ बजे के स्थान पर खुलेगा; वैसे ही उसकी प्रवृत्त दूसरे पार्श्व की ओर जाने की होगी। यदि भगंदर गुदान्त से डेढ़ इंच के भीतर पूर्वार्द्ध में होगा; तो उसका अंतर्मुख गुदा में अपनी तिजा ( Radius ) की दिशा में खुलेगा ( गुडसाल Goodsaal का सिद्धान्त )।

यदि किसी रोगी में गुदभ्रंश का इतिहास मिलता है; तो उसे पाखाने के समय में जिस तरह का जोर लगाया जाता उस तरह का जोर करने को कहें ( प्रवाहण )। इस प्रकार से प्रवाहण करने पर उसकी गुदा बाहर कितनी निकलती है, इस बात को देखें। दर्शन से कभी-कभी वृन्तयुक्त अर्बुद भी इस प्रकार के प्रवाहण से बाहर आते हुए दिखाई देंगे। विदार की उपस्थिति होने पर प्रवाहण करने में रोगी को अत्यधिक कष्ट होगा तथा विदार भी आंशिक ( Partly ) दिखलाई पड़ेंगे। गुदा के संकोचनी पेशी की स्थिति के विषय में भी दर्शन से प्राप्त हो सकता है।

गुदा से यदि स्त्राव हो रहा हो तो उसके वर्ण, गंध, रूप प्रभृति बातों को लिख लेना चाहिये।

**स्पर्शन**—इस स्थान की स्पर्शन विधि के दो विभाग होते हैं। १. बाह्य—स्पर्शन से गुदा तथा समीपवर्ती अंगों का ज्ञान करना। २. आभ्यंतर—अंगुलि द्वारा गुदा के अंदर की रचनाओं का तथा उनके समीपवर्ती आशयों के

स्थितिका ज्ञात कर लेना। बाह्य परीक्षा द्वारा जघन गुदविद्रधि ( Ischio Rectal Abscess ) बाह्यार्श, तथा भगंदर प्रभृति विकारों का स्थान एवं उनका अंदर की धातुओं के साथ सम्बन्ध निश्चित किया जाता है। विद्रधि की आशंका होने पर तरंग-प्रतीति की उपस्थिति को देख लेना चाहिये। इस बात को भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि जघन गुद विद्रधि ( Ischio rectal abscess ) में पूय तरंग की उपस्थिति बहुत विलम्ब के पश्चात् मिलती है ( Very late )। भगंदर या नाड़ी ब्रण की उपस्थिति होने पर उसे अंगुष्ठ और अंगुलि में पकड़ कर उसके ब्रण-वस्तु ( Scar ) की दिशा का ज्ञान हो सकता है।<sup>१</sup> गुदा तथा समीपवर्ती स्थानों में स्थानिक काठिन्य का अनुभव स्पर्शन विधियों से किया जा सकता है। वैसे ही स्पर्शान्नाम स्थान का भी ज्ञान इस परीक्षा-द्वारा संभव है।

**आभ्यंतर या अंगुलि-परीक्षा**—इस परीक्षा का गुदा के रोगों में अत्यधिक महत्त्व है। इसलिये इसे अत्यन्त सावधानी से विधिपूर्वक करना चाहिये। गुद-परीक्षा के प्रारंभ करने के पूर्व वस्ति देकर मलाशय को साफ कर लेना चाहिये। इस परीक्षा के निमित्त रोगी को ऊपर निर्दिष्ट किसी आसन पर लेटा रखना चाहिये। दाहिने हाथ की तर्जनी-अंगुलि को अंगुलित्राणक ( Finger Stall ) पहनाकर उसे किसी स्निग्ध वस्तु में डुबो कर चिकनी कर लेना चाहिये। इस विधि में स्निग्ध अंगुलि को गुदा मार्ग पर रखकर पुनः उस स्थान को स्निग्ध करके धीरे-धीरे दबाव देते हुए अंगुली को क्रमशः गुदा में अंदर की ओर प्रविष्ट करें। यदि जघन गुद विद्रधि का संशय हो तो उसी हाथ के अंगुष्ठ को विद्रधि-स्थान पर रखकर तर्जनी और अंगुष्ठ के बीच में उसका अनुभव करते हुए विद्रधि का आकार, गठन तथा स्पर्शासह्यता प्रभृति ज्ञात करे।

इसके पश्चात् भीतर प्रविष्ट की हुई अंगुलि से विधिपूर्वक भिन्न-भिन्न रचनाओं का उनकी स्थानिक विकृति के ज्ञान के लिये परीक्षा करे।

सर्वप्रथम गुदा की आंतरिक स्थिति का ज्ञान अंगुलि के गुदा में प्रविष्ट होते ही, गुदा मार्ग अंदर से चिकना है या उसमें स्थान-स्थान पर कोई शल्य

१. वृणोति यस्माद् देऽपि ब्रण वस्तुर्न नश्यति  
आदेह धारणात् तस्मात् ब्रण इत्युच्यते बुधैः।  
ब्रणवस्तु

गड्ढे, अर्बुद, ग्रंथि ( गाँठ ) या उभारयुक्त है, इसका ज्ञान हो सकता है। ब्रण की उपस्थिति होने पर उसका आकार, स्पर्शनात्मता, ब्रण का गुदा की दीवाल के साथ सम्बन्ध तथा उसके किनारों की दशा का ज्ञान करे। इसके पश्चात् गुदसंकोचनी ( Sphincters ) की दशा देखे। गुदसंकोचनी पेशियों के ऊपर दबाव डाल के उनमें आकुंचन एवं विस्फारण की शक्ति साधारण से कम है या अधिक है इस बात का पता लगावे। थोड़े ही दबाव से यदि गुदा में विस्फार होता है तो गुदासंकोचक पेशी अल्पबल ( Hypotonic ) है; परन्तु इस प्रकार के दबाव से यदि संकोचक पेशियाँ अंगुलि को कसकर पकड़ लें, तो वह अतिबल ( Hypertonic ) है—इस बात का ज्ञान हो जाता है।

गुदा की प्राचीर का ज्ञान—इसके पश्चात् अंगुलि को गुदा के अंदर सभी दिशाओं में घुमाना चाहिये, जिससे उसकी दीवाल में उपस्थित काठिन्य ( कठोरता ) तथा दीवाल का समीपवर्ती अंगों के साथ सम्बन्ध आसानी से जाना जा सकता है। सत्रण वृहदन्त्र शोथ ( Ulcerative Colitis ) की अन्तिम अवस्था में सम्पूर्ण दीवाल मोटी एवं कड़ी पड़ जाती है। यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि आभ्यंतराशी ( Int. piles ) का बड़े-बड़े होने पर भी उपद्रवों के अभाव में अंगुलि से स्पर्शज्ञान संभव नहीं है। इनमें उपद्रवों ( ब्रणशोफ-कोप स्कंदन ( Thrombosis प्रभृति )—की उपस्थिति होने पर यह स्पर्श-लभ्य हो जाते हैं, फिर अंगुलियों द्वारा इनकी प्रतीति संभव है। अर्बुद की उपस्थिति होने पर उसका स्थान, आकार, सीमा तथा गठन आदि बातों को सावधानी से देखना चाहिये।

**गुदा की श्लेष्मल कला की दशा**—गुदा की श्लेष्मल कला को अंगुलि द्वारा पेशियों के ऊपर घुमाकर ( Rolled ) देखना चाहिये। जिससे वह पेशियों के साथ संसक्त है या पेशियों के ऊपर आसानी से घुमाई जा सकती है इसका ज्ञान होगा कैंसर की उपस्थिति में श्लेष्मल त्वचा पेशियों से संसक्त हो जाती है। प्राचीर में अवरोध की उपस्थिति का भी अंगुलि परीक्षा से ज्ञान आसानी से हो सकता है। गुदा के अवरोध या सन्नरोध में निम्न रोगों को ध्यान में रखे, जैसे—कैंसर, औपदंशिक वंक्षणीय लसीका ग्रंथियाँ (Lymphogranuloma Inguinale); क्षय।

गुदा में होने वाले नब्बे प्रतिशत कैंसरों का ज्ञान अंगुलि-परीक्षा द्वारा ही हो सकता है। इसमें दो बातों की विशेषता होती है :—

१. स्थानिक काठिन्य ( Induration & Hardness ) तथा संसक्ति ( Fixity )।

२. ब्रण के उभरे हुए किनारे ( Raised Margin )।

**गुदा के समीपवर्ती धातुओं की दशा**—इस परीक्षा में बारह बजे के स्थान पर छीला ग्रंथि ( Prostate ) की स्थिति उसी के बगल ( पार्श्व ) में दोनों तरफ शुक्र कोष ( Seminal Vesicles ) की स्थिति आदि का ज्ञान उनके आकार, गठन, स्पर्शासह्यता प्रभृति बातों को ध्यान में रखते हुए करे।

साधारणतया अंगुलि छीला-ग्रंथि के ऊपरी सीमा तक पहुँच सकती है; परन्तु छीला ग्रंथि की वृद्धि होने पर यह असंभव हो जाता है। छीला ग्रंथि यदि उभार युक्त, अचल, कड़ी और गुदा से संसक्त हो तो वह कैंसर रोग से प्रभावित है इसका निश्चय हो जाता है। छीला में विद्रधि की उपस्थिति होने पर वह स्पर्शनात्मक हो जाती है। छीला के क्षय में वह उभारयुक्त, कड़ी हो जाती है; परन्तु गुदा की दीवाल से संसक्त नहीं रहती।

शुक्र कोषों में दो जीर्ण रोगों की संभावना रहती है। १. क्षय तथा २. पूयमेह ( Gonorrhoea )। इनकी उपस्थिति में वह स्थान स्पर्शनात्मक तथा उभरा हुआ मिलता है। वस्ति ( Bladder ) में होने वाले अर्बुद तथा अश्रमरी इत्यादि का ज्ञान भी इस परीक्षा द्वारा संभव है।

उत्तानासन में लेटे हुए रोगी में अंगुलि को दाहिनी ओर घुमाकर बायें हाथ को पेट पर रखकर उससे दबाकर आंत्र-पुच्छ विद्रधि का भी निदान किया जा सकता है। ( Bimanual palpation ) इसमें इस दिशा में लचकीला और स्पर्शनात्मक उभार की प्रचिनी होती है।

स्त्रियों में इस परीक्षा द्वारा गर्भाशय एवं गर्भाशय ग्रीवा ( Cervix ) की स्थिति, गर्भाशय के अर्बुद तथा बीज-ग्रंथि ( Ovary ) की स्थिति का ज्ञान संभव है। इसी परीक्षा द्वारा उदर के कुछ रोगों का ज्ञान भी संभव है जैसे आंत्रपुच्छ शोथ, बीजग्रंथि शोथ, जघन विद्रधि, आंत्रान्त्रानुप्रवेश, बीज-वाहिनीगत गर्भ स्थिति, श्रोण्यस्थियों के भग्न ( Fracture of Pelvis ) प्रभृति। इसी प्रकार बाएँ तरफ भी अंगुली को घुमाकर स्पर्शनात्मक स्थान इत्यादि का अनुमान करे।

इसके पश्चात् अंगुलि को निकाल ले। अंगुलि को निकालकर उसके ऊपर के स्त्राव को ध्यान से देखे। स्त्राव को देखने से भी अन्तःस्थिति विकृति का

निदान सम्भव है। कैंसर में ब्रण से निकला हुआ स्राव अँगुली पर दिखाई देगा या पूय की उपस्थिति मिलने पर विद्रधी में सहायता मिलेगी।

### विशेष परीक्षण—

**वस्ति**—रोगी को वस्ति देकर वह कितनी मात्रा में जा सकता है, वस्ति को वह रोक सकता है या नहीं तथा वस्ति का क्या परिणाम होता है यह देखे। निकला हुआ द्रव प्रविष्ट-द्रव की अपेक्षा मात्रा में कम है या ज्यादा है इस बात को भी देख लेना चाहिये।

**क्षीकरण चित्रण**—रोगी को वस्ति द्वारा 'वेरियम' का दूध प्रविष्ट करके चित्रण करके देखना चाहिये।

गुदा वीक्षण—( Proctoscopy )

गुदान्तःदर्शन ( Sigmoidoscopy )

या स्थूलान्त्रवलय दर्शन।

**उदर परीक्षा**—अदरक रोगों के लिये तथा कैंसर के उपद्रवों की उपस्थिति की विवेचना के लिये करना चाहिये।

**अणुवीक्षण**—इस विधि से परीक्षा के निमित्त वहाँ के धातुओं का छेदन करके अणुवीक्षण यंत्र से देखना चाहिये।

## नवम योजना

शल्यतंत्रीय अजीर्ण एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार

आमाशय-पक्वाशय : विचार

Stomach Duodenum : Special feature

### आधार

वृत्त—

आयु, लिङ्ग, व्यवसाय तथा जाति, प्रकृति, पारिवारिक वृत्त, देश।

**वर्तमान दशा**—पीड़ा: एकाएक, शूलस्वरूप, सतत

( Continuous )

तीव्रता ( Severity )।

भोजन के बाद किस समय—( सतत या रुक रुक के )।

स्थान।

जब आमाशय खाली हो कोई शूल ? भोजन पूर्व। भोजन लेने पर या सर्जिकाचार (Soda) लेने पर शमन होता है या नहीं ?

वमन से तत्काल शमन या नहीं।

पथ्य तथा विश्राम से शमन या नहीं।

विभिन्न प्रकार के भोजन का प्रभाव।

क्षुधाक्षमता या क्षुधा-जात पीड़ा ( Hunger Pain ) या रात्रि-पीड़ा ( Night-Pain )

( १२२ )

क्षुधा—भोजन की मात्रा या भोजन शक्ति  
( Capacity )

मलमूत्र प्रवृत्ति ।

वमन—शूल के पूर्व या पश्चात् ।

ऐच्छिक या अनेच्छिक ( Voluntary or  
Ivoluntary )

सदा या यदाकदा ( Usual or Unusual )

राशि तथा प्रकृति ( Amount and nature )

सामान्य व्रणों में ( Ulcers ) तथा आमा-

शयाभिस्तिर्णता में ( Dilatation of

Stomach ) तथा आमाशय संकोच

( Hourglass Contraction ) में

वमन की मात्रा तथा राशि भिन्न होगी ।

विधि

( Varying )

पीड़ा में शमन है या नहीं ?

विस्तर पर विश्राम करने से और द्रव भोजन से

शूल का नियन्त्रण होता है या नहीं ?

रक्त—पीड़ा के साथ या बिना पीड़ा के ।

राशि तथा बहुलता ( Frequency )

—चमकता हुआ लाल या काफ़ी के ( कर्त्थे  
के ) रंग का ।

केवल रक्तवमन ( Haematemesis )

रक्तवमन एवं पुरीषगत रक्तपित्त ( Melæna )

पुरीष में रक्त । किसी बड़े पक्काशयगत रक्तस्राव का

पूर्व इतिहास ?

पूर्ववर्ती आवेग ( Attack )—

—कुल अवधि ( Total Duration )

बहुलता—लम्बाव्यवधान ( Frequency-

Intermission )

वर्ष में ऋतुविशेष । आवेग के साथ में चिन्ता का संबंध

( १२३ )

( Worry in relation to attack )

भोजन में कोई क्रमिक त्याग या निषेध ( Gra-  
dual restriction of diet )

भार-क्षय ( Loss of Weight )

शारीरिक परीक्षा—

सार्वदैहिक—रक्ताल्पता या दुःस्वास्थ्य ( Anaemia or  
Cachexia ) :

मुख, दाँत, गला, नाक, नासा सम्बन्धी  
विवर इत्यादि । अंगों में पूति-केन्द्र  
( Septic focus ) की खोज ।

स्थानिक—

दर्शन—

पुरःसरणयुक्त आमाशय ( Stomach with  
Peristalsis )

लोष्ठ की उपस्थिति ( Pump )

स्पर्शन—

पीड़नाक्षमता—वाम या दक्षिण ।

अनम्यता-काठिन्य—वाम या दक्षिण ।

( Rigidity )

लोष्ठ—स्थिति, परिमाण, आकार, गणन, पृष्ठ,  
किनारे तथा संबन्ध ।

अंगुलिताइन—पिण्ड ( Mass ) के साथ आंत्र  
या यकृत का संबन्ध ।

श्रवण—गुड़गुड़ाहट ( Gurgling & Spla-  
shing )

श्रवणयुक्त अंगुलिताइन—आमाशय का परिमाण  
( Size )

विशेष परीक्षायें—

वमन तथा पुरीष—अणुवीक्षणायुक्त एवं  
रासायनिक ।

## शल्यतंत्रीय अजीर्ण एवं तत्संबंधी विशेष विचार

### विस्तार

#### वृत्त—

**सामान्य**—आमाशय एवं अग्नाशय के रोगों में निदान की दृष्टि से इतिवृत्त का बड़ा महत्त्व है। यदि इतिवृत्त ठीक प्रकार से लिया जाय तो बिना रोगी-परीक्षा के ही रोग का निदान करना संभव है। वृत्त में सर्वप्रथम रोगी की आयु, लिङ्ग, व्यवसाय तथा जाति के बारे में पूछना आवश्यक होता है। पाच्यवृण पंद्रह वर्ष की आयु के पूर्व क्वचित् ( १% ) मिलते हैं। तीस से पचास वर्ष की आयु में प्रायः इनमें घातक परिवर्तन ( **Malignant Changes** ) दिखाई पड़ते हैं। कदाचित् नवजात शिशुओं में भी एक वर्ष की आयु तक एतादृश वृणों के पाये जाने का उल्लेख पुस्तकों में मिलता है। इस अवस्था में ( शिशुओं में ) आमाशय की अपेक्षा पक्काशय के वृणों की अधिक संभावना रहती है। शल्य-चिकित्सा के लिये आने वाले रोगियों में आमाशयिक वृण वाले रोगियों की आयु पक्काशयिक वृण वालों की अपेक्षा कुछ अधिक होती है। शल्य-चिकित्सा में आने वाले रोगी प्रायः बहुत दिनों के बाद सब प्रकार की औषधि-चिकित्सा से निराश होकर आते हैं—कई बार इनमें रोग की कालमर्यादा पन्द्रह से बीस वर्षों तक की रहती है।

पुरुषों में पाच्य वृण ( **Peptic ulcer** ) स्त्रियों की अपेक्षा अधिक मिलते हैं। इनमें पुरुषों में ८०% तथा स्त्रियों में २०% का प्रमाण पाया जाता है। पाच्य वृणों में ७५% पक्काशय के तथा २५% आमाशय के होते हैं। स्त्रियों के वृणों में पक्काशयिक की अपेक्षा आमाशयिक अधिक पाये जाते हैं।

पाच्य वृण—व्यवसायियों, नौकरी पेशेवालों तथा खेलाड़ियों में अधिक पाये जाते हैं। ऐसा देखा गया है कि जिन व्यक्तियों को दिमागी काम ( चिन्ताशील ) अधिक करना पड़ता है; उनमें पाच्य वृणों की संख्या अधिक मिलती है। वातिक प्रकृति वालों में भी पाच्य वृण बहुतायत से मिलते हैं। पारिवारिक वृत्त भी एक तिहाई रोगियों में मिल सकता है।

भारतवर्ष में पाच्य वृण दक्षिण भाग में तथा अत्यधिक शीत या अत्यधिक उष्ण जलवायु वाले प्रदेशों में ( यूरोप, उत्तर अमेरिका, चीन ) पाये जाते हैं। उत्तर भारत में यह रोग बहुत ही अल्प संख्या में मिलता है। यह सभ्य जातियों का रोग है।

**वर्तमान दशा**—रोगी से पीड़ा, वमन, रक्त वमन, पचनशक्ति, मल-मूत्र प्रवृत्ति प्रभृति बातों के विषय में विस्तार से पूछना चाहिये।

**पीड़ा**—स्थान सामान्यतया सभी रोगियों में (पाच्य वृण) पीड़ा का स्थान ऊर्ध्व आमाशय प्रदेश में मध्य रेखा से दाहिने या बायें हो सकता है ( **Epi-gastric region** ) दाहिनी ओर होने से पक्काशय के बाईं ओर होने से आमाशय के वृण तथा पित्ताजीर्ण ( **Biliary Dyspepsia** ) की संभावना रहती है। पीड़ा के स्थान का सम्बन्ध यदि दक्षिण जघनखात से है तो वह आंत्रपुच्छीयाजीर्ण ( **Appendicular Dyspepsia** ) के कारण हो सकता है। पीड़ा एकाएक हुई या निरन्तर बनी रहती है—इस बात को भी रोगी से पूछे। नियतकाल में पीड़ा का होना ( **Periodicity** ) पाच्य वृणों का एक प्रधान लक्षण या आत्मलिङ्ग है। इन वृणों से पीड़ित रोगियों में इस प्रकार का वृत्त मिलता है कि उसे पीड़ा शुरू होती है तो कुछ पत्नों या महीनों तक चलती रहती है, पुनः शान्त हो जाती है और कुछ महीनों की विश्रान्ति के बाद पुनः प्रारंभ होती है।

नियतकालिक पीड़ा ( **Periodicity** ) का वृत्त आमशयिक की अपेक्षा पक्काशयिक पाच्य वृणों में अधिक मिलता है। पाच्य वृणों में पीड़ा अत्यन्त तीव्रस्वरूप की होती है और उसके कई प्रकार देखने को मिलते हैं। वेधन सदृश ( **Stabbing** ), तोदन ( चुभाने **Pinching** के समान ), जलने के समान ( दाहयुक्त ) या शूल रूप की ( **Golicky** )। पीड़ा का हेतु वृण-स्थान के स्थानिक आकुंचन ( **Spasm** ) के कारण उत्पन्न होती है। यह आकुंचन आंत्रपुरःसरण ( **Peristalsis** ) के समय पाया जाता है, इसीलिये आंत्रपुरःसरण की परमोच्च अवस्था में रोगी को अत्यधिक पीड़ा होती है।

पीड़ा भोजन के समय होती है, या भोजन के पश्चात् ? इस बात को रोगी से पूछना चाहिये। भोजन के पूर्व होनेवाली पीड़ा पक्काशय वृण ( **Dusdenal ulcer** ) में पाई जाती है। भोजन काल में निरन्तर या संतत पीड़ा का पाया जाना आमाशयिक ( **Gastric ulcer** ) वृण तथा आमाशयिक कैन्सर का विशेष लक्षण है। भोजन के पश्चात् होनेवाली पीड़ा वृण के स्थान के ऊपर निर्भर रहती है। आमाशय के पूर्व भाग में होने वाले वृणों में पीड़ा भोजन के आधे घंटे के पश्चात्; आमाशय के उत्तर भाग ( **Pyloric portion** ) में होने वाले वृणों में पीड़ा एक या डेढ़

घंटे के पश्चात् तथा पक्वाशय में होने वाले वृणों में भोजन के दो या ढाई घंटे के पश्चात् पाई जाती है।

भोजन से पीड़ा में शमन या वृद्धि ? आमाशयिक वृणों में खाना खाने पर रोगी को पीड़ा होती है तथा कुछ घंटों के बाद शान्ति मिलती है। पक्वाशय के वृणों में भोजन के पूर्व रोगी को पीड़ा होती है, परन्तु भोजन करते ही पीड़ा शान्त हो जाती है।

भोजन के पश्चात् या पूर्व होने वाली पीड़ा का समय प्रत्येक रोगी में (यदि वह नियत समय पर भोजन करता है, तो) दिन के निश्चित समय पर ही होगी। पित्ताजीर्ण तथा आंत्रपुच्छाजीर्ण में पीड़ा का भोजन के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता। भोजन की मात्रा के अधिक होने पर पीड़ा विलम्ब से किन्तु तीव्र स्वरूप की होती है। भोजन की मात्रा कम होने से पीड़ा जल्दी शुरू हो जाती है। पाच्य वृणों में पीड़ा उष्ण स्वेद तथा आराम ( विश्राम ) से कम हो जाती है। भोजन में मद्य, तम्बाकू, एवं तीक्ष्ण पदार्थों के रहने से पीड़ा की तीव्रता अधिक रहती है।

रात्रि में होने वाली पीड़ा पक्वाशय के वृणों में अत्यधिक तीव्रस्वरूप की होती है, जिसके कारण रोगी की निद्रा टूट जाती है। इस प्रकार की पीड़ा जो रोगी की निद्रा भंग करने में समर्थ हो ऐन्द्रिय विकृति ( **Organic in nature** ) का द्योतन करती है, ठीक इसी तरह जो पीड़ा रोगी के शयन काल में बढ़कर उसकी निद्रा की बाधक बन जाय, क्रिया सम्बन्धी विकार ( **Functional disorder** ) को दर्शाती है।

**पीड़ा शमन**—रोगी को पीड़ा यदि भोजन करने से या चार-सेवन से कम हो जाय; तो पक्वाशयगत वृण समझना चाहिये। यदि रोगी की पीड़ा वमन से शान्त हो तो आमाशयगत वृण का ज्ञान हो जाता है। पक्वाशयिक वृण में आमाशय की रिक्तावस्था में अधिक पीड़ा होती है और भोजन करने से शान्त हो जाती है, इसीलिये इसे लुत्तामता-लुधाजन्य पीड़ा ( **Hunger Pain** ) कहते हैं।

१. पक्वाशय एवं आमाशय से सम्बद्ध वृणों में होने वाली पीड़ाओं के आत्मलक्षण का प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख :-

परिणामशूल ( **Duodenal ulcer** )

“भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम्।”

सभी पाच्य वृणों में चारों के सेवन से पीड़ा शान्त होती है। पाच्य वृणों के उपद्रवस्वरूप अग्नाशय में वृण होने से रोगी को पीड़ा का अनुभव पीठ में होता है। पाच्यवृण के अतिरिक्त अन्य दशाओं में भी लुत्तामता ( **Hunger Pain** ) मिलती है—जैसे जीर्ण आंत्रपुच्छ शोथ, आमाशयिक कैंसर, जीर्ण पित्ताशय शोथ, अम्लातिशयता ( **Hyperchlorehydia** ) अधिक सिगरेट पीने से तथा कुछ वातिक रोगों में।

वृण के जीर्ण होने पर आवेगों की संख्या एवं अवधि बढ़ जाती है, ( **Number and duration** ) वेगों का अन्तरकाल (दो वेगों (दौरों) के बीच का समय) छोटा हो जाता है और लक्षणों की तीव्रता बढ़ती जाती है।

**लुधा**—सामान्यतया पाच्यवृणों में लुधा के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। आमाशयिक वृण के रोगी; भोजन के बाद होने वाली पीड़ा के भय से भोजन नहीं करना चाहते। यदि रोगी की भूख में कमी हो गई हो, तो वृण में कैंसर की उत्पत्ति हो रही है ऐसा समझना चाहिये। पक्वाशय के वृणों में रोगी की लुधा तीव्र होती है। यही कारण है कि प्रारम्भिक अवस्था में रोगी का भार ( वजन ) भी बढ़ा मिलता है। पक्वाशय वृण की जीर्णविस्था में तथा पक्वाशयगत अवरोध के चिन्ह उपस्थित होनेपर रोगी की भूख कम हो जाती है तथा अन्त में अरुचि उत्पन्न हो जाती है।

**मलमूत्र प्रवृत्ति**—को पित्ताजीर्ण, जीर्ण आंत्रपुच्छ शोथ तथा आमाशय के अवरोध प्रभृति अवस्थाओं में जीर्णकोष्ठबद्धता पाई जाती है। आमाशयिक वृणों में तथा आमाशयिक कैंसरों में कोष्ठबद्धता ( विबन्ध ) नहीं मिलती। रोगी से मल के रंग, मात्रा प्रभृति बातों के बारे में भी पूछें। पित्ताशय के विकार में मल का रंग चूने की तरह सफेद तथा रक्तखावी वृणों में मल का रंग कथे के रंग का रहेगा।

अन्नद्रव शूल ( **Gastric ulcer** )

पथ्यापथ्य प्रयोगेण भोजनाभोजनेन च

जीर्ये जीर्यत्य जीर्ये वा यच्छूलमुपजायते

न शमं याति निममात् सोन्नद्रव उदाहृतः

अन्न द्रवास्मश्लेषु न तावत् स्वास्थ्यमश्नुते

वान्तमात्रे जरत् पित्तं शूलन्वाशु व्यपोहति।

मा० नि० २६।

**वमन**—यदि रोगी में वमन का इतिहास मिले तो उसकी प्रकृति, राशि तथा उसका भोजन तथा पीड़ा से सम्बन्ध आदि के बारे में पूछे। वमन पीड़ा के पूर्व होता है या पीड़ा के पश्चात् ? आमाशयिक वृण में पीड़ा होने के अनन्तर रोगी को वमन करने की इच्छा होती है और वमन के हो जाने पर उसकी पीड़ा भी शान्त हो जाती है। आमाशयिक वृणों में भोजन के एक डेढ़ घण्टे के पश्चात् वमन का इतिहास मिलता है। वमन से शान्ति मिलने से कई बार रोगी अपने गले में अँगुलि डालकर वमन को प्रवृत्त करता है। वमन की अति प्रवृत्ति आमाशय के उत्तरार्ध भाग में अवरोध होने पर होती है। ऐसी दशा में पाया जाने वाला वमन अत्यन्त वेगयुक्त होता है। पक्काशय के वृणों में वमन प्रबलस्वरूप का नहीं होता, केवल एक डकार के साथ-साथ मुँह में पानी भरना पाया जाता है। आमाशयाभिस्तीर्णता या आमाशय के उत्तर भाग का पूर्ण अवरोध होने पर वमन की राशि तथा प्रवृत्ति संख्या में अधिक पाई जाती है।

वमन का रंग कत्थे के सदृश होने पर रक्तसावी वृण अथवा आमाशयगत कैंसर का अनुमान करना चाहिये। पित्त-युक्त वमन पित्ताजीर्ण में पाया जाता है। अवरोध के कारण उत्पन्न वमन की तीव्रता आराम तथा द्रव भोजन के सेवन से कम हो जाती है।

**रक्त**—वमन में रक्त का आना—यह आमाशय वृण के अतिरिक्त आमाशयिक कैंसर, तीव्र आमाशय शोथ ( *Acute Gastritis* ), यकृत दाल्युदर ( *Chirrhosis* ) तथा अन्ननलिकागत शिराकौटिल्य के विदार ( *Rupture of oesophageal Varix* ) आदि से भी हो सकता है। रक्त की राशि तत्स्थानगत धमनी या सिरा के आकार के ऊपर अवलम्बित होती है। कम रक्त-साव होने पर उसका रंग पाचक रसों की क्रिया के परिणामस्वरूप कत्थे के रङ्ग का होता है। रक्त की राशि के अधिक होने पर वमन का रंग चमकता हुआ लाल ( प्राकृत रक्त के रङ्ग का ) मिलता है। पक्काशयगत-व्रण का रक्तसाव गुदा द्वारा होता है और रक्त पाखाने के साथ मिला हुआ निकलता है तथा कुछ रक्त वमन द्वारा भी निकल सकता है।

आमाशय के पिछली दीवाल ( *Post Wall* ) में होने वाले वृणों में रक्तसाव की प्रवृत्ति अधिक होती है तथा उसके सामनेवाली दीवाल ( *Ant. Wall* ) में होने वाले वृणों में विदार की प्रवृत्ति अधिक मिलती है। केवल गुदा द्वारा होने वाला रक्तसाव पक्काशयज वृणों में और वमन द्वारा होने वाला

रक्तसाव बहुधा आमाशय वृणों में ही पाया जाता है। वृण के पृष्ठतल पर किसी बड़ी सिरा या धमनी की उपस्थिति रहने पर रोगी में रक्तसाव की बार-बार प्रवृत्ति पाई जाती है। पाच्य-वृणों में रक्तवमन की प्रवृत्ति तीस प्रतिशत वृणों में मिलती है।

पूर्ववर्ती दौरें तथा रोग का इतिहास—आघात, मंथरक ज्वर, प्रवाहिका, फिरंग तथा क्षय आदि का वृत्त लेना चाहिये। दौरे का इतिहास लेते समय रोग के प्रादुर्भाव काल से लेकर वर्तमान संभव तक का वृत्त, दौरे की संख्या, तीव्रता तथा आवान्तर काल ( *Interval* ) का ज्ञान करना चाहिये। दौरे का किस विशेष अन्न, व्यसन, चिन्ता आदि के साथ सम्बन्ध तथा आवान्तर काल में रोगी का पूर्णतया स्वस्थ ( लक्षणों से मुक्त ) रहना आदि के बारे में पूछ कर ज्ञान लेना चाहिये।

तदनन्तर रोगी के साधारण स्वास्थ्य के बारे में पूछना चाहिये। रोगी में बलक्षय, भारक्षय, दुःस्वास्थ्य आदि का पूर्ववर्ती वृत्त मिले तो उसे भी नोट कर लेना चाहिये। रोग का वर्ष में किसी ऋतु-विशेष में दौरा आता हो तो उसका भी उल्लेख रोगी से पूछकर करना चाहिये। पाच्य-वृणों के बहुत से रोगियों में दौरे की प्रवृत्ति शीत वसन्त ऋतुओं में अधिक पाई जाती है।

### दैहिक-परीक्षा—

**सार्वदैहिक**—रोगी की साधारण स्वास्थ्य-परीक्षा करके उसमें रक्तक्षय, दुःस्वास्थ्य आदि के विषय में देखना चाहिये। साथ ही रोगी के मुख, दाँत, गला, नाक एवं नासासम्बन्धी विवरों में ( *Nasal Accessory Sinuses* ) कोई पूति-केन्द्र ( *Septic focus* ) है या नहीं इस बात को ध्यानपूर्वक देख लेना चाहिये। इसके अनन्तर वक्ष, पृष्ठ-वंश तथा वातनाड़ी संस्थान की भी विधिवत् परीक्षा कर लेनी चाहिये।

### स्थानिक—

**दर्शन**—१. उदर के ऊर्ध्व भाग का निरीक्षण करके वहाँ पर प्रतिहारिणी ( *Portal* ) शिरा के अवरोधजन्य उत्पन्न लक्षणों की उपस्थिति को देखे।<sup>१</sup>

२. उदर के किसी विभाग में किसी लोष्ठ ( *Lump* ) की उपस्थिति तो नहीं है ? यदि है तो वह श्वास प्रश्वास की गति के साथ स्थानांतरित होता है या नहीं ? श्वासगति के साथ ऊर्ध्व आमाशय प्रान्त की गति होती है या नहीं ? उदर पर आमाशय की पुरःसारण गति यदि दृष्ट है तो उसकी दिशा तथा तीव्रता किस प्रकार की है ?

१. शिरा जाल, यकृत वृद्धि, पैर में सूजन, अर्श आदि।

आमाशय के उत्तर भाग में होनेवाले संकोच तथा अवरोध ( Pyloric Obstruction ) में आमाशयोर्ध्व प्रान्त में तीव्र पुरःसारण गति ( Peristalsis ) दिखाई पड़ेगी ।

**स्पर्शन**—इस परीक्षा में उदर के सभी अंगों का क्रमानुसार स्पर्शन करके उनकी प्राकृत अथवा विकृत अवस्था का ज्ञान कर लेना चाहिये । इसमें विशेष ध्यान यकृत, पित्ताशय, प्लीहा तथा दोनों पार्श्व के वृक्षों के ऊपर देना चाहिये ।

रोगी से पीडायुक्त स्थान को एक अंगुलि से बताने के लिये कहना चाहिये । इस स्थान की परीक्षा स्थानिक पीडनाक्षमता ( Tenderness ) काठिन्य या अनम्यता ( Rigidity ) प्रभृति बातों के लिये करे । आमाशयिक वृण में यह स्थान ऊर्ध्व आमाशय प्रान्त में मध्य से बायीं ओर तथा पक्वाशयिक वृण में मध्य से दाहिना ओर को मिलेगा । जीर्ण-वृणों में ऊपर निर्दिष्ट लक्षण स्थानिक परीक्षासे अधिक स्पष्टतया मालूम किये जा सकते हैं ।

यदि पीडनाक्षम और अनम्य स्थान ( Tender & Rigid ) पित्ताशय क्षेत्र में हों, तो रोगी में पित्ताशय के रोगों की संभावना हो सकती है । यदि ऐसा स्थान दक्षिण जघनखात में हो, तो नातितीव्र आंत्रपुच्छ-शोथ ( Sub Acute Appendicitis ) की संभावना रहती है, इन दोनों रोगों में अजीर्ण के लक्षण मिल सकते हैं । यदि स्पर्शन द्वारा ऊर्ध्व आमाशय क्षेत्र में लोष्ठ पाया जाता है तो उसकी परीक्षा अन्य लोष्ठों के सदृश ही करे । जैसे—स्थान, आकार, परिमाण, पृष्ठ, गठन, किनारे, समीपवर्ती अंगों से सम्बन्ध प्रभृति बातों को नोट करे ।

ऊर्ध्व आमाशय प्रदेश में लोष्ठ की उत्पत्ति आमाशयिक कैन्सर, जीर्ण आमाशयिक वृण, आमाशय के सौम्य विदार के परिणामस्वरूप उत्पन्न स्थानिक शोथ प्रभृति रोगों में होती है ।

**अंगुलिताडन**—इस परीक्षा से आमाशय का आकार, विस्तार तथा उसका प्लीहा तथा यकृत से सम्बन्ध निश्चित किया जाता है ।

**श्रवणयुक्त अंगुलिताडन**—इस विधि से आमाशय की पुरःसारण को सुन सकते हैं तथा उसके आकार की निश्चित भी की जा सकती है । आमाशयाभिस्तीर्णता में उसके निश्चय करने के लिये श्रवणयुक्त-अंगुलिताडन का विधान है । इसके लिये आमाशय के किसी स्थान पर श्रवणयंत्र का वक्षीय भाग ( Chest Piece ) रखकर आमाशय के दूसरे स्थान पर अंगुलि द्वारा दबाने से श्रवणयंत्र से जलतरङ्ग की ध्वनि सुनाई देती है ।

इसके द्वारा संशय की अवस्था में आमाशय की सीमा का निश्चित ज्ञान किया जा सकता है ।

**विशेष परीक्षाएँ—**

१. रासायनिक तथा अणुवीक्षणत्मक परीक्षा—वमन और मल की ( रक्त तथा कैन्सर के टूटे हुए धातुओं के लिये )

२. आमाशय-प्रचालन—राशि ( Amount ) तथा द्रव्य ( Material )

३. आमाशयरस-विश्लेषण ( Gastric Analysis ) .

४. पक्वाशयरस-विश्लेषण ( Duodenal Analysis ) .

५. क्षकिरणामेद्य द्रव्य ( बेरियम दूध ) को पिलाकर आमाशय तथा पक्वाशय का चित्रण—

बेरियम का घोल रोगी को पिलाने के पश्चात् आमाशय तथा पक्वाशय को दर्शक कांच में देखा जा सकता ( Screening ) है । इस परीक्षाकाल में रोगी को विभिन्न अवस्थाओं में घुमाकर उसकी आमाशय के स्थान, आकार, परिमाण, आमाशिक पदार्थ ( Contents ), प्राचीर ( Contour ) की परीक्षा की जा सकती है । प्राचीर ( आमाशय ) का निरीक्षण करते समय उसमें वृण के कारण उत्पन्न खात ( Niche ) या अर्बुदों के कारण उत्पन्न पूरण या भरण ( भरने का ) दोष ( Filling Defect ) प्रभृति बातों पर ध्यान दे । साथ ही आमाशय-पुरःसारण का भी ध्यानपूर्वक निरीक्षण करे ।

उदर को आमाशय-स्थान पर दबाकर स्पर्शासह्य ( Tender ) स्थान को विशेष ध्यानपूर्वक देखना चाहिये । आमाशय के श्लैष्मलकला की स्थिति तथा उसकी क्रिया-शीलता ( Functions ) का भी ज्ञान इस परीक्षा द्वारा संभव है । इसके पश्चात् तीन घंटे पर, छः घंटे पर और बारह घंटे पर आमाशयिक भाग का क्षकिरण-चित्रण किया जाता है । इससे वह स्थान साधारण नियत समय रिक्त होता है ( Normal Emptying Time ) या नहीं; इस बात का ज्ञान होता है । साधारणतया आमाशय बेरियम भोजन के पश्चात् प्राकृतावस्था में छः घंटे में पूर्णतया रिक्त हो जाता है । यदि छः घंटे पश्चात् लिये हुए चित्र में आमाशय में बेरियम की उपस्थिति चित्रित होती है तो उसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :—

१. आमाशयभ्रंश ( Gastropsis )

२. आमाशयाल्पबलता ( Gastric Hypotonia )

३. आमाशयोत्तर भाग संकोच या आकुंचन ( Pyloro-spasm ) or Pyloric stenosis )

आमाशयिक ब्रणों में उस स्थान पर आमाशय के रिक्त होने पर भी गहराई के कारण 'वेरियम्' अटका रहता है, जिससे ब्रणों का विनिश्चय किया जाता है। आमाशय के पीछे वाले दीवाल पर स्थित ब्रण इस विधि से नहीं देखे जा सकते। इनकी उपस्थिति का निश्चय करने के लिये कभी-कभी अन्य चिह्नों की सहायता भी अपेक्षित है जैसे—

१. आमाशय का ब्रण के स्थान पर निरन्तर आकुंचित रहना जिससे Greater Curvature पर एक खात दिखलाई देगा।

२. आमाशयिक श्लेष्मल-कला का स्थूल एवं अनियमित होना।

३. Lesser Curvature पर पीड़नाक्षम बिन्दु का मिलना— (क्षणकिरण दर्शन (Screening) के साथ-साथ स्पर्शन करते हुए अनुभव में आवेगा)।

४. Greater Curvature पर होनेवाले सभी ब्रण तथा Lesser Curvature पर १ इंच से अधिक लम्बाई वाले ब्रण अधिकतर घातक होते हैं। पक्वाशय-स्थित ब्रणों की उपस्थिति में ऊपर निर्दिष्ट लक्षणों के अतिरिक्त पक्वाशय-टोपी (Doudenal Cap) का विकृत पाया जाना महत्व का लक्षण है।

५. आमाशयान्तःदर्शन (Gastroscopy)

६. आमाशयान्तःचित्रण (Gastro-Photography)

७. उदरावृत्ति अंतःदर्शन (Peritoneoscopy)

८. अन्वेषणात्मक उदरविपाटन (कुक्षिपाटन) (Exploratory Laprotomy) यदि ऊपर निर्दिष्ट उपायों से रोग का निदान न हो सके तो अंत में उदर का भेदन करके रोग का निरीक्षण तथा विनिश्चय किया जा सकता है।

## दशम योजना

### विविध अश्मरियाँ तथा तत्सम्बन्धी विशेष विचार

#### आधार

#### इतिवृत्त—

वर्तमान आक्रमण, दौरा या आवेग।

प्रारम्भ-क्रमिक या अचानक (Gradual or Sudden)

तीव्रता (Severity)।

आत्मलिङ्ग (Character)।

स्थिति (Situation)।

अवधि (Duration)।

शमन का प्रकार : क्रमिक या अचानक।

व्यायाम तथा भोजन के साथ सम्बन्ध आदि।

हृदयावसाद (Collapse), कम्प (Shivering), वमन।

शोणित या रक्तमेह (Blood in Urine), कामला आंत्रावरोध,

भिन्न भिन्न रोगियों में, विभिन्न मात्रा में।

आवेग काल में कोई सूजन पाई गई ?

बहुलता (Frequency)

सापेक्ष तीव्रता तथा अवधि (Relative severity & duration)

आवेगों के मध्य में (Between attacks) दशा।

#### पूर्ववृत्त—

## दैहिक-परीक्षा—

## सार्वदैहिक—

(१) आवेग काल में  
मर्मरघात, शोफसमुत्थ-ज्वर आदि  
( Inflammatory fevers. )

(२) आवेग-मध्यकाल ।

## स्थानिक—

(१) आवेग-काल में ।

(२) आवेग-मध्यकाल में ।

भेदों के अनुसार दर्शन, स्पर्शन तथा  
अंगुलिताडन आदि ।

१. आवेग-काल—पीडनाक्षमता ( Ten-  
derness); पीड़ा का संबन्धन है या  
नहीं । अश्मरी के परिणामस्वरूप पूर्व  
भाग में अवरोध से उत्पन्न सूजन ।

२. आवेग-मध्यकाल

(क) उपसर्ग या वृण-शोफ के अभाव  
में चिह्नों की अनुपस्थिति ।

(ख) शोफ की अवस्था में इस अंग  
के ऊपर स्थायी स्पर्शनाक्षमता;  
सूजन की अनुपस्थिति ।

(ग) अवरोध की दशा में स्थायी  
शोफ ( Persistent  
Swelling ) तथा  
पीडनाक्षमता ।

## विशेष परीक्षाये—

क्षकिरण वस्ती, पित्ताशय, वृक्क-चित्रण ।

वस्ति-दर्शन ।

मूत्र-परीक्षा ।

एषणी-परीक्षा ।

गुद-परीक्षा ।

## विविध अश्मरियाँ' तथा तत्सम्बन्धी विशेष विचार

Calculi in general : Special feature.

## विस्तार

## इतिवृत्त—

वर्तमान आवेग—पीड़ा : वर्तमान् दौरे में पीड़ा का आक्रमण एकाएक  
हुआ या वह कुछ काल से संतत रूप से बना रहता है, इस बात को रोगी

१. शरीर में निम्न प्रकार की विविध अश्मरियाँ विभिन्न स्थानों में पाई जाती हैं :—

१) क-मूत्राश्मरी ( Urinary Calculus )

[१] वृक्कगत ( Renal ) ।

[२] गवीनीगत ( Ureteric ) ।

[३] वस्तिगत ( Bladder ) ।

[४] षीलागत ( Prostatic ) ।

[५] प्रसेकगत या मूत्रमार्गगत ( Urethral ) ।

[६] शिश्नचर्मगत ( Prepusal ) ।

ख-पित्ताश्मरी ( Biliary Calculus )

[१] पित्ताशयगत ।

[२] पित्ताशय नलिकागत ।

ग-अग्न्यारशाश्मरी ( Pancreatic Calculus ) ।

घ-लालाश्मरी ( Salivary Calculus ) ।

ङ-नाभिगताश्मरी ( Umbelical ) ।

च-पुरीषाश्मरी या मलाश्मरी ( Folcolith or Stercolith ) ।

छ-शुक्राश्मरी ( Spermolith ) ।

ज-रक्ताश्मरी ( Calcified thrombus )

पाठकों की जानकारी के लिये इन विविध प्रकार की अश्मरियों का नामोल्लेख किया है ।

इसमें प्रमुख प्रकार की अश्मरियों का उल्लेख पूरे अध्याय में मिलेगा । अप्रसद्धि या बहुत



से पूछे । साधारणतया गवीनीगत ( Ureteric ), पित्तनलिकागत ( Bileduct ) तथा अग्नाशयनलिकागत ( Pancreatic duct ) अश्मरियों में दौरे का प्रारंभ अचानक होता है; परन्तु वस्तिगत (Bladder), वृक्कज ( Renal ), लाला नलिकागत ( Salivary duct ) तथा छीलागत ( Prostatic ) अश्मरियों में पीड़ा कुछ समय से बराबर बनी रहती है ।

**तीव्रता**—जब सभी अश्मरियों में अश्मरी स्थान से च्युत होकर आगे बढ़ने का प्रयत्न करती है, उस समय पीड़ा की तीव्रता अत्यधिक होती है । उलनात्मक ढंग से विचार करने पर गवीनीजन्य तथा पित्तनलिकागत अश्मरियों में पीड़ा अत्यधिक तीव्र होती है । वस्तिगत अश्मरियों में तीव्रता सबसे कम पाई जाती है ।

**आत्मलिङ्ग ( Character )**—वृक्काश्मरी में मंद प्रकार की संतत वेदना तथा पार्श्व में भारीपन का होना मिलता है । लाला नलिकागत अश्मरियों में पीड़ा मुख के उस पार्श्व में निरन्तर मंदस्वरूप की तथा दवाव-युक्त पाई जाती है । अग्नाशयिक, गवीनीक, पित्ताशयिक अश्मरियों में पीड़ा वेधन एवं आकुंचनयुक्त ( Stabing & spasmodic ) मिलती है ।

कम पाई जाने वाली अश्मरियाँ हैं, उनका वर्णन अप्रासंगिक समझ कर छोड़ दिया गया है ।

प्राचीन ग्रन्थों में अश्मरी के पाठों में तीन अश्मरियों का वर्णन पाया जाता है—

१. वस्तिगत ( Vesical ), २. मूत्रमार्ग प्रसक्त ( Urethral ), ३. शुक्राश्मरी ( Spermolith Prostate or Seminal Vesicle ) इनमें वस्तिगत अश्मरी का सबसे विशद वर्णन पाया जाता है । वस्तिगत अश्मरियों के तीन भेदों का भी उल्लेख मिलता है । जैसे वाताश्मरी ( Oxalic ), पित्ताश्मरी ( Uric acid ), श्लेष्माश्मरी ( Phosphate ) । अन्य अश्मरियों का उल्लेख नामतः प्राचीन ग्रन्थों में नहीं हुआ है तथापि लाक्षणिक दृष्ट्या रोग प्रसंग जरूर आया है । जैसे गवीनाप्रसक्त अश्मरी का तूनी प्रतितूनी नाम से । शूलाधिकार में पठित विविध शूलों में भी पित्ताश्मरी पाठ आया है ।

बस्ति तथा छीलागत अश्मरियों में पीड़ा दाहयुक्त ( जलन सी ) पाई जाती है । बस्ति एवं छीलागत अश्मरियों में मूत्र-त्याग के काल में पीड़ा की वृद्धि एवं तीव्रता रहती है । लालागत अश्मरियों में भोजन के समय रोगी अत्यन्त पीड़ा का अनुभव करता है ।

**स्थान**—वृक्काश्मरी में पीड़ा दोनों पार्श्वों में पीछे की तरफ बारहवीं पर्शुका के स्थान में मिलती है । पित्ताशयिक में पीड़ा का स्थान सामने की ओर तथा दाहिनी दसवीं पर्शुका के ( X Rib anteriorly on Right Side ) अग्र पर पाया जाता है । गवीनीगत अश्मरी में शूलस्थान कटि-प्रदेश में पीछे तथा आगे की ओर ( Post and Ant ) होता है और उसकी पृष्ठति नीचे की ओर जाने की होती है । वस्तिगत अश्मरियों में पीड़ा ऊर्ध्वबस्ति प्रदेश में एवं शेष ( Penis ) के अग्र भाग पर मिलती है । छीलाश्मरियों में मूत्र तथा मल-त्याग के समय रोगी गुदा में पीड़ा का अनुभव करता है । लालाजन्य अश्मरियों में पीड़ा; नलिका के मार्ग में तथा तत्संबन्धी ग्रंथि में पाई जाती है । कभी-कभी इस प्रकार की पीड़ा नलिका के किसी वात-नाड़ी के सान्निध्य में ( समीप में ) पाये जाने के कारण भी हो सकती है । जैसे पंचशिरस्का नाड़ी के कर्णमूल ग्रंथिनलिका ( Parotid duct ) के समीप होने से ( सान्निध्य के कारण ) पीड़ा नाड़ी के सम्पूर्ण क्षेत्र में मिलती है ।

**अवधि**—पीड़ा कितने समय से है यह रोगी से पूछना चाहिये । दौरे के समय ऐसा इतिहास कुछ घंटों का भी मिल सकता है; परन्तु जिन अवस्थाओं में अश्मरी मन्दस्वरूप की पीड़ा पैदा करती है, उन अवस्थाओं में यह काल कुछ दिनों, मासों या वर्षों का मिल सकता है । पित्ताश्मरियों में यह काल प्रायः अधिक दिनों का होता है ( लम्बी अवधि ) ; परन्तु अन्य अश्मरियों में यह अपेक्षाकृत कम दिनों ( छोटी अवधि ) का होता है ।

**शूल शमन का प्रकार**—आकुंचनस्वरूप के शूलों की अवस्था में पीड़ा आकुंचन ( Spasm ) के समाप्त होने पर एकाएक या तत्काल शान्त हो जाती है; परन्तु अन्य स्वरूप के अश्मरी-जन्य शूलों में वह ( पीड़ा ) धीरे-धीरे कम होती है । वस्तिगत अश्मरी में मूत्र-त्याग के पश्चात् पीड़ा की तीव्रता कम हो जाती है । छीलाश्मरियों में ( Prostatic ) उष्ण बस्ति देने से पीड़ा की तीव्रता कम होती है । वृक्काश्मरियों में पार्श्व में कटि-प्रदेश पर दवाने से रोगी को आराम मिलता है ।

**पीड़ा का व्यायाम तथा भोजन के साथ सम्बन्ध**—व्यायाम के परिणामस्वरूप अश्मरी की स्थानच्युति होने से रोगी पीड़ा का अनुभव करता है। ऐसी अवस्था वृक्कगवीनी तथा बस्तिगत अश्मरियों में मिलती है। लालाशमरी, अग्नाशयाश्मरी तथा पित्ताशमरी का सम्बन्ध भोजन के साथ रहता है। इनमें भोजन करते समय लालाशमरियों में, या भोजन के कुछ घण्टों के पश्चात् पित्ताशमरियों तथा अग्नाशयाश्मरियों में रोगी पीड़ा का अनुभव करता है।

पीड़ा के दौरे के समय गवीनी तथा पित्ताशमरियों में अवसाद (Collapse) की अवस्था पाई जाती है। मूत्र-संस्थान में होने वाली अश्मरियों में मूत्र में रक्त की उपस्थिति का इतिहास मिलना सम्भव है। पित्ताशमरी में कामला का तथा कदाचित् आंत्रावरोध का भी इतिहास मिल सकता है। लालाशमरियों में तत्सम्बन्धी ग्रन्थि में पीड़ा तथा शोथ की उपस्थिति मिल सकती है।

**पूर्ववर्ती आक्रमण**—इसके पहिले इस प्रकार के शूल या पीड़ा का दौरा हुआ था या नहीं? पिछले दौरे के समय रोगी की दशा, पीड़ा की तीव्रता, औषधियोजना और दौरा कितने समय तक रहा? इन प्रश्नों को रोगी से पूछ कर पता लगा लेना चाहिये। दौरे के पश्चात् यदि रोगी में कोई विशेष लक्षण हुए हों तो उसे भी पूछना आवश्यक है जैसे—पित्ताशमरी में दौरे के पश्चात् कामला तथा बस्तिगत अश्मरी में शोणित मेह (मूत्र में रक्त पाया जाना) का इतिहास संभव है।

अश्मरी के एक स्थानपर स्थिर रहने से बार-बार दौरे की प्रवृत्ति कम होती है परन्तु अश्मरी के किसी नलिका में स्थित होने पर दौरे जल्दी तथा तीव्र-स्वरूप के होते हैं। चल अश्मरियों में पीड़ा अधिक होती है तथा अचल अश्मरियों में अपेक्षतया कम पाई जाती है।

आवेगों के पश्चात् रोगी का स्वास्थ्य पूर्ववत् (पूर्ण स्वस्थ या प्राकृत) हो गया था या नहीं? पित्ताशमरी तथा वृक्काशमरी में अश्मरी के निर्माणकाल में पीड़ा की तीव्रता अत्यधिक रहती है।

### दैहिक परीक्षा—

**सार्वदैहिक**—दौरे के समय रोगी में मर्माभिघात (Shock) तथा शोफजन्य ज्वर मिल सकता है। रोगी की स्थिति दौरे के काल में किस प्रकार की है, उसमें मर्माघात के लक्षणों की तीव्रता किस कोटि की है—इन बातों का ज्ञान रोगी की नाड़ी, श्वास, रक्त-निपीड प्रभृति बातों की परीक्षा द्वारा

करनी चाहिये। इसी प्रकार तद्-तद् स्थानगत विकारों के अनुसार उन-उन संस्थानों की पूर्ण परीक्षा भी कर लेना आवश्यक होता है।

आवेग-मध्यकाल (Between the attacks) में आकुंचनयुक्त पीड़ावाली अश्मरियों में रोगी का साधारण स्वास्थ्य प्राकृत रहेगा। कभी-कभी इस अवस्था में आलस्य तथा मंद पीड़ा का अनुभव रोगी को होगा। बस्तिगत अश्मरी में मूत्र में रक्त जाने का इतिहास मिल सकता है।

**स्थानिक-परीक्षा**—तद्-तद् स्थानगत अश्मरियों के अनुसार विभिन्न स्थानों की परीक्षा दर्शन, स्पर्शन, अंगुलिताड़न प्रभृति विधियों से करनी चाहिये। परीक्षा करने का अवसर दो परिस्थितियों में मिलेगा १. आवेग काल (दौरे के समय) में २. आवेगान्तर काल (दौरे के बीच के समय) में। इन दोनों दशाओं में स्थानिक परीक्षा के द्वारा विकार का ज्ञान करना चाहिये।

**लालाशमरी (Salivary Calculus)**—इसमें मुख के अंदर तथा बाहर नलिकामार्ग को सावधानी से देखना चाहिये और स्पर्शन द्वारा (एक अंगुलि मुख में और एक अंगुलि बाहर उनके बीच दबाकर देखना, अंगुलद्वय परीक्षा (Bimanual Examination of the mouth) परीक्षा करके अश्मरी स्थान का निश्चय (स्पर्शलभ्य) किया जा सकता है। इस परीक्षा में उस नलिका से सम्बन्धित ग्रन्थि के स्थानिक विकृति भी दर्शन एवं स्पर्शन से जानी जा सकती है। ग्रन्थि में मार्गावरोध के कारण सूजन, वृद्धि, विद्रधि प्रभृति उपद्रव हो सकते हैं।

**पित्ताशमरी (Biliary Calculus)**—पित्ताशमरीजन्य शूल में दौरे के समय दक्षिण पर्शुकाधःस्थान (Right Hypochondrium) में स्थानिक काठिन्य (अनभ्यता Rigidity) की उपस्थिति तथा स्पर्शन में 'मर्फी' का चिह्न अस्यात्मक मिलेगा। पूर्ण मार्गावरोध होने से स्थानिक सूजन या उत्सेध भी कदाचित् मिल सकता है। इसमें स्पर्शन परीक्षा द्वारा अश्मरी स्पर्शलभ्य (Palpable) नहीं होती। परन्तु अश्मरी के मार्गावरोध के उपद्रवस्वरूप में होने वाली स्थानिक विकृतियों के कारण पित्ताशय शोफयुक्त होकर स्पर्शलभ्य तथा स्पर्शासह्य (Tender) हो जाता है। ऐसी अवस्था में दौरे के पश्चात् काल में की गई स्थानिक परीक्षा से ऊपर लिखी हुई बातों का निश्चय कर सकते हैं।

**मूत्राशमरी**—मूत्रसंस्थानज अश्मरी (Urinary Calculus)

वृक्काश्मरियों में दर्शन या स्पर्शन से रोग-निदान अत्यन्त कठिन है। इसका निदान रोगी के इतिहास, लक्षण तथा अन्य परीक्षाओं से (क्षकिरण चित्रण) ही संभव होता है। वृक्काश्मरी के परिणामस्वरूप यदि वृक्क में शोफ उत्पन्न हुआ हो तो स्थानिक स्पर्शासह्यता अधिक मिलेगी। गवीनीजन्य मूत्राश्मरी में स्थानिक परीक्षा से कोई विशेष लक्षण नहीं मिलते। इसका निदान शूल की विशेषता के ऊपर ही निर्भर करता है। अश्मरी का गवीनी में (Ureter) अधिक काल तक उपस्थिति रहने से उससे सम्बन्धित वृक्क के ऊपर प्रभाव पड़ने के कारण वह वृक्क आकार में बढ़ जाता है, जिसे जलवृक्क (Hydro-Nephrosis) कहते हैं। बस्ति तथा शीलाश्मरी—इन अश्मरियों में भी दर्शन एवं स्पर्शन द्वारा कुछ विशेष ज्ञान नहीं हो पाता, गुद परीक्षा से इसका निदान संभव है।

सभी प्रकार की अश्मरियों में पीड़ा का संवहन अपना वैशिष्ट्य रखता है।

**वृक्काश्मरी**—पार्श्व में पीछे की और तथा तत्सम्बन्धी अण्डकोष में तथा तत्पार्श्वगत उरु के अन्तर्भाग में।

**पित्ताश्मरी**—१. दक्षिण अंसफलक (Scapula) अधोकोण (Inf. Angle) पर। २. अंसफलकान्तरीय-स्थान (Inter Scapular Space)। ३. दक्षिण ऊर्ध्व अंसफलकीय स्थान (Right Supra Scapular region)।

**बस्तिअश्मरी**—शोफ के अग्र भाग पर।

**लालाश्मरी**—१. पंचमशिरस्का नाड़ी के क्षेत्र पर। २. कदाचित् तत्पार्श्वगत कर्ण में।

**शीलाश्मरी**—गुदा में तथा मूलाधार प्रदेश में (Perineal)।

**आवेग मध्य-काल में—**

१. व्रण-शोफ (Inflammation) की अनुपस्थिति में कोई भी स्थानिक चिह्न किसी भी प्रकार की अश्मरी में नहीं मिलेंगे।

२. व्रण-शोफ के स्थायी (Persistent) रहने पर तद्-तद् स्थान से सम्बन्धित आशयों में स्पर्शासह्यता की उपस्थिति मिलेगी।

३. अश्मरी के कारण मार्गावरोध होने पर तत् सम्बन्धी विभिन्न आशयों में सूजन तथा स्पर्शासह्यता निरन्तर (Constant) बनी रहेगी। सम्पूर्ण

मार्गावरोध के परिणामस्वरूप वृक्कापजनन, कामला या मूत्रावरोध प्रभृति लक्षण उपस्थित होते हैं। अपूर्ण (Incomplete) मार्गावरोध के परिणामस्वरूप अवरोधपूर्व नलिका की (Proximal portion to the obstruction) विस्तृति (Dilatation) तथा संबन्धित आशयों में भी विकृति पाई जाती है।

**विशेष परीक्षायें—**

**लालाश्मरी—**

१. लालासाव की परीक्षा लालाश्मरी के कर्णों के लिये।
२. लालानलिका की ऐषणीशलाका (Probe) द्वारा परीक्षा करना।
३. क्षकिरण-चित्रण, सामान्य तथा क्षकिरणामेद्य द्रव्य से नलिका चित्रण।

**पित्ताश्मरी—**

रक्त ; मल-मूत्र प्रभृति दूष्यों की परीक्षा।  
क्षकिरण-चित्रण। क्षकिरणामेद्य द्रव्य से पित्तवह स्रोतों का तथा पित्ताशय का चित्रण (Cholecystography)।

**मूत्राश्मरी (Urinary Calculus)—**

मूत्र-परीक्षा, साधारण तथा अणुविच्छेदात्मक।  
क्षकिरण-चित्रण मूत्रवहसंस्थान-चित्रण (Pyelography)  
बस्तिदर्शक यंत्र के द्वारा बस्ति का दर्शन तथा गवीनीचित्रण (Cystoscopy and Ureterography)  
गुदा-परीक्षा।  
मूत्रशलाका द्वारा परीक्षा (Sounding)

## एकादश योजना

### मूत्र-संस्थान या मूत्र-पथ के रोग एवं तत्संबन्धी विशेष विचार

#### आधार

वृत्त—

वर्तमान दशा— आयु, लिङ्ग, अवधि ।

पीड़ा :—मूत्रोत्सर्ग के साथ सम्बन्ध ।

समय—मूत्रोत्सर्ग के पूर्व, मूत्रत्याग-काल में  
या मूत्रोत्सर्ग के अनन्तर ।

कहाँ ? स्थिति, संवहन ( Radiation ),  
कुक्षि ( Loin ), कटि ( Groin )  
भगोर्ध्व भाग ( Supra-Pubic ),  
मूलाधारीय ( Pepineal ) या शेफ-  
सीय ( Penile ) ।

प्रारंभ का प्रकार ( Mode of onset )  
क्रमिक ( Gradual ) या एकाएक  
( Sudden ) ।

शमन का प्रकार— क्रमिक या एकाएक ।

परिश्रम से वृद्धि होती है या नहीं ?

बार-बार मूत्रोत्सर्ग की प्रवृत्ति ( Frequency )

बढ़ी या नहीं ?

रात्रि में या दिन में ?

( १४३ )

परिश्रम या विश्राम का प्रभाव ।

परिश्रम से पीड़ा में वृद्धि होती है या नहीं ?

धारा ( Stream )

परिमाण ( Size )

वेग ( Force )

बाधा या रुकावट ( Interruption )

अवरोध ( Retention )

मूत्र-राशि ( Amount )

विशिष्ट गुरुत्व ( Specific Gravity )

आत्मलिङ्ग ( Character )

स्वच्छ, घना, मण्डवत्

( Clear, thick or  
Creamy );

रक्त, थक्का, चमकता हुआ लाल या  
गाढ़ा लाल या कथई ( Dark ) मूत्र ।

रक्त पूय या अन्य स्रावों के आने पर—  
प्रारंभ में उसकी अधिकता या अंत में  
या मूत्र में मिला हुआ ( Diffuse )  
मिश्रित । थक्के का आकार यदि हो ।  
शर्करा या अशमरी के प्रमाण ।  
केश, मल, वायु, दुर्गन्धित स्राव की  
उपस्थिति ।

पूर्ववृत्त—

दैहिक परीक्षा ( Physical Examination )

सार्वदैहिक—क्या रोगी अस्वस्थ दीखता है ? तृषा शिरः-

शूल, कुशता ( Emaciation )  
प्रभृति ।

स्थानिक—१. उदर-वृक्क, गवीनी, वस्तिप्रभृति की  
दर्शन, स्पर्शन, अंगुलिताडन द्वारा  
परीक्षा ।

२. शेफस एवं प्रसेक—दर्शन, स्पर्शन ।

( १४४ )

३. फलकोष एवं मूलाधार ( **Scrotum & Perineum** ) दर्शन-स्पर्शन ।  
गुदा-परीक्षा— छीला ( **Prostate** ), शुक्र कोष ( **Seminal Vesicles** ), वस्ति आधार, गवीनी ( **Ureters** ) तथा गर्भाशय ( **Uterus** ) ।  
योनि-परीक्षा— स्त्रियों में—वस्ति आधार तथा गवीनी की स्थिति का ज्ञान ।  
करद्वय स्पर्शन ( **Bimanual palpation** )  
वस्ति का । क्वचित् बच्चों में वस्तिगत-अश्मरी का अथवा अर्बुद का संभव ।

#### विशिष्ट परीक्षाएँ—

क्षकिरण परीक्षा—पूरे मूत्रपथ की—क्षकिरणामेय द्रव्यों के प्रवेश से या वायुभरण से अथवा बिना इनकी सहायता के ।

यंत्र-प्रयोग — ( **Instrumentation** )—मूत्र-नाड़ी ( **Catheter** ), मूत्र-शलाका ( **Bougies & Sounds** ) वस्ति-दर्शक ( **Cystoscope** ) यंत्र ।

मूत्र—चौबीस घंटे की पूरी राशि ।

सामान्य परीक्षा—वीक्षणत्मक ( **Macroscopical** ), भौतिक ( **Physical** ), विशेष गुरुत्व, रात्रि या दिन की विभिन्नता ( **Variation** ), घनी-भवत ।

रासायनिक ( **Chemical** )

अणुवीक्षणत्मक ( **Microscopical** )

तृणान्विक ( **Bacteriological** )

प्रत्येक वृक्क; गवीनी का नाड़ी-संयोजन

( **Ureteric Catheterisation** ),

वृक्क-चित्रण ( आरोही तथा अवरोही )

( **Pyelography -I. V. and Retrograde** )

( १४५ )

( **Pyelography** )—विसर्गी ( **Excretory** ) or विपरीत चित्रण ( **Retrograde** )

रंग-विसर्जन ( **Dye-Excretion** )

( **Urea Concentration** )

रक्तगत मिह आदि ( **Blood urea etc.** )

#### मूत्रपथ के रोग एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार

( **Disease of Urinary tract : Special feature** )

#### विस्तार

#### वृत्त—

**वर्तमान दशा**—आयु तथा लिङ्ग—अश्मरी के वृत्त में रोगी की आयु एवं लिङ्ग के ज्ञान का बड़ा महत्त्व है ।

मूत्र-संस्थान में एक ही प्रकार के लक्षण उत्पन्न करने वाले रोग का हेतु रोगी की अवस्थानुसार भिन्न-भिन्न हो सकता है । जैसे मूत्रावरोध का कारण बालकों में अश्मरी एवं निरुद्ध प्रकश ( **Phimosi** ); युवा व्यक्तियों में प्रसेक शोथ ( **Urethritis** ) तथा प्रसेक सन्निरोध ( **Urethral Stricture** ); वृद्धों में छीला वृद्धि ( **Enlarged Prostate** ) तथा वस्ति पेशियों की अल्पबलता ( **Atony** ) ।

मूत्रपथ की अश्मरियाँ स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा बहुत ही कम पाई जाती हैं । इसी प्रकार प्रसेक सन्निरोध ( **Stricture** ) भी स्त्रियों में अपेक्षाकृत कम पाया जाता है । रोग की अवधि का ज्ञान रोगी से पूछकर कर लेना चाहिये । इस ज्ञान से रोग तीव्र, जीर्ण या सहज अवस्था का है यह ज्ञान संभव है । विभिन्न प्रकार के मूत्रसंस्थानीय शूल ( **Colic** ), तीव्र मूत्रावरोध ( **Retention** ), चलवृक्कावरोध ( **Twist of movable kidney** ) तथा मूत्रसंस्थानगत अवयवों का तीव्र-शोफ, शोणित मेह ( **Haematuria** ) प्रभृति रोग तीव्रविस्था के द्योतक होते हैं । इनमें अवधि या काल-प्रकर्ष ( **Duration** ) अल्पकालीन होता है । जीर्ण व्याधियों ( **Chronic** ) में मूत्रसंस्थानगत अवयवों के क्षय, जलवृक्क ( **Hydro Nephrosis** ), पूयवृक्क ( **Pyo-Nephrosis** ), विभिन्न मूत्र-पथ-गत अश्मरियाँ, मूत्र-

संस्थान के अवयवों के अर्बुद तथा मूत्र-मार्गावरोध ( **Obstruction of urine outflow** ) प्रभृति मिलते हैं, जिनमें कालमर्यादा अधिक दिनों की मिलेगी। कुछ रोगों में अवधि-काल जन्म से ही होता है। जैसे—निरुद्ध प्रकश ( **Phymosis** ), वहिर्वस्ति ( **Ectopia Vesica** ), बाल्यावस्था में पाया जानेवाला अर्बुद या शिशु मांसाबुद या विलय का अर्बुद ( **Embryoma, Infant's Sarcoma or Wilms Tumour** )—इन विकारों को सहज या जन्मजात ( **Congenital** ) कहते हैं।

**पीड़ा**—मूत्रवह-संस्थान के रोगों में इतिवृत्त लेते समय रोगी से संस्थानगत लक्षणों ( पीड़ा, मूत्र की धारा, बारम्बार मूत्र-प्रवृत्ति, मूत्र की राशि एवं तत्सम्बन्धी विशेषता प्रभृति ) की विशेषताओं को पूछकर उसे एकैकशः नोट कर लेना चाहिये। इसी का विशद विवेचन नीचे किया जा रहा है। यदि रोगी पीड़ा का वृत्त दे तो उससे पूछना चाहिये कि पीड़ा का मूत्रत्याग के साथ क्या सम्बन्ध है? वह मूत्रत्याग के पूर्व है; साथ-साथ है या मूत्रत्याग के पश्चात् है? तीव्र ष्टीला-शोथ में तथा तीव्र वस्ती-शोथ में रोगी मूत्रत्याग के पूर्व पीड़ा का अनुभव करता है। मूत्रत्याग-काल में, यदि पीड़ा का अनुभव हो तो तीव्र मूत्र-प्रसेक-शोथ ( **Acute Urethritis** ) की उपस्थिति समझे। वस्ति में अश्मरी की उपस्थिति होने से रोगी को मूत्रत्याग के पश्चात् वेदना का अनुभव होता है।

**पीड़ा का स्थान तथा हेतु**—मूत्र-संस्थान के रोगों में पीड़ा का स्थान तत्स्थानगत स्थानिक विकृति के ऊपर अवलम्बित रहता है। स्थानानुसार उसकी विविध संज्ञायें भी दी जाती हैं। जैसे वृक्क-पीड़ा ( वृक्क में ), गवीनी-शूल ( गवीनी में ), वस्ति-पीड़ा ( वस्ति में ), ष्टीला पीड़ा ( ष्टीला में ), प्रसेक-पीड़ा ( प्रसेक **Urethra** में )। उपर निर्दिष्ट स्थानों में पीड़ा के प्रादुर्भाव के दो मुख्य कारण हैं—(१) तत्स्थानगत शोथ (२) तत्स्थानगत अश्मरियों की उपस्थिति। शोथ के कारण उत्पन्न होनेवाली पीड़ा धीरे-धीरे शुरू होती है और संततस्वरूप की होती है ( **Constant and of Gradual onset** )। अश्मरीजन्य पीड़ा व्यायाम या परिश्रम के पश्चात् एकाएक शुरू होती है और वह आकुंचनस्वरूप ( **Spasmodic and of Acute onset** ) की मिलती है। इस पीड़ा का शमन भी एकाएक

१. इस विकार में वृक्क की अत्यधिक वृद्धि होती है, पीड़ा एवं रक्तस्राव ( शोणित मेह ) का अभाव रहता है।

( अश्मरी के उस स्थान से हट जाने पर ) होता है। शोथ के कारण उत्पन्न पीड़ाओं का शमन, शोथ के पूर्णतया शान्त हो जाने पर होता है। अश्मरी-जन्य-पीड़ा परिश्रम के पश्चात् अत्यन्त तीव्र होती है; परन्तु शोथ-जन्य-पीड़ा का परिश्रम के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं होता।

मूत्र-संस्थान में पाई जाने वाली पीड़ा विकृत स्थान के अनुसार स्थानिक तथा कभी-कभी उस स्थान से दूरवर्ती किसी स्थान पर संवाहित होकर अनुभूत होती है। जैसे—१. वृक्क-पीड़ा का अनुभव क्वचित् उदर में सामने की ओर नवें पशुका के अग्र के एक इंच नीचे तथा पार्श्व में वृक्ककोण<sup>१</sup> पर होता है। यह पीड़ा संततस्वरूप की होती है और इसका कारण वृक्कावरण का तनाव ( **Tension of Renal Capsule** ) होता है। २. गवीनी-शूल का अनुभव वृक्ककोण पर होता है और उसका संबन्धन तत्पार्श्वगत अण्ड, उरु के अंतःभाग पर ( **Inner side of Thigh** ) एवं कुच्छि ( **Loin** ) में होता है। यह पीड़ा आकुंचनस्वरूप की होती है इसलिये इसे शूल नाम से कहा गया है। गवीनी में अश्मरी साधारणतया तीन स्थानों पर अटक सकती है। १. गवीनी के मुख पर, २. त्रिकोत्सेध ( **Promontary of Sacrum** ) के सतह पर तथा ३. गवीनी के अंतिम भाग में ( **At the opening of the ureter into the Bladder** )। ऊपर में बतलाये गये स्थानों के अनुसार पीड़ा का संबन्धन विभिन्न स्थानों पर पाया जाता है। जैसे—गवीनी के मुख पर स्थित अश्मरी से उत्पन्न पीड़ा का स्वरूप वृक्क-शूल की तरह रहेगा तथा उसका उस पार्श्व के अंडकोष में संबन्धन होगा। त्रिकोत्सेध के सतह पर अश्मरी के रुक जाने से पीड़ा दोनों पार्श्व में तथा कमर के पीछे होती है। गवीनी के अन्तिम भाग में अश्मरी के रुक जाने से पीड़ा वस्तीगत-शूल के सदृश ऊर्ध्व भ्रूणास्थ स्थान ( **Suprapubic area** ) में तथा शोफज के अग्र-भाग में संवाहित होती है।

३. वस्ति पीड़ा—यह पीड़ा ऊर्ध्व-भ्रूणास्थ-स्थान ( **Supra Pubic Region** ) में एक बेचैनी ( **Discomfort** ) के स्वरूप की होती है, इस अवस्था में रोगी को बार-बार मूत्र-त्याग की उत्कट इच्छा होती है ( **Strangury** )। इस पीड़ा के साथ कभी-कभी मूत्र-त्याग के पश्चात् मूत्र-मार्ग से रक्तस्राव की भी प्रवृत्ति मिलती है। इस प्रकार की पीड़ा वस्तिगत अश्मरी तथा

१. यह कोण उदर के पार्श्व भाग में बारहवीं पशुका तथा ( **Erector Spineal** ) पेशी के मध्य में बनता है।

वस्तिगत कैंसर में होती है। इस पीड़ा का संबन्धन मूत्र-प्रसेक मार्ग में तथा शोफस के अग्र-भाग पर होता है। इसलिये जिन बच्चों में वस्तिगत अशमरी की उपस्थिति रहती है वे बच्चे शोफस-चर्म को हाथ से आगे की ओर खींचते रहते हैं।

४. छीला-पीड़ा—मूत्र-त्याग के पूर्व तथा मूत्र-त्याग काल में श्रोणि (Pelvis) के निचले (अधो) भाग में टपक के स्वरूप (Throbbing) के रूप की होती है। स्थान-सामीप्य के कारण मल-त्याग-काल में भी क्वचित अतिशय तीव्रस्वरूप की पीड़ा मूलाधार-प्रदेश में मिलती है। यह पीड़ा छीला-ग्रंथि की शोथ, विद्रधि तथा कैंसर में पाई जाती है। इस प्रकार की शोथ के कारण पाई जाने वाली पीड़ा की तीव्रता मूलाधार-प्रदेश पर उष्ण स्वेद करने से अथवा उष्ण जल की वस्ति लेने से कम होती है। (Hot Fomentation to Perineum and Hot Water Enema)।

५. प्रसेक-पीड़ा—मूत्र-त्याग काल में तथा मूत्र-त्याग के पश्चात् (जलन) दाहस्वरूप की तत्स्थानगत शोथ के परिणामस्वरूप पाई जाती है। यह पीड़ा स्थानिक तथा मूलाधार (Perineum) प्रदेश में अनुभूत होती है तथा इसका संबन्धन संपूर्ण प्रसेक में होता है।

**मूत्र की बार-बार प्रवृत्ति (बहुलता Frequency)**—रोगी में मूत्र-त्याग की बार-बार प्रवृत्ति होती है या नहीं, इस बात को पूछ लेना चाहिये। यदि है तो रात्रि में या दिन में? और इस प्रवृत्ति का आराम या परिश्रम से क्या सम्बन्ध है? मूत्रत्याग-काल में पीड़ा होती है या नहीं?

यदि रोगी में दिन में बार-बार मूत्र-त्याग की प्रवृत्ति मिलती है, तो उसका कारण वस्तिगत-अशमरी हो सकती है, रात्रि में यदि इस प्रकार की प्रवृत्ति हो तो उसे छीलाग्रंथि की वृद्धि के कारण समझना चाहिये।

तरुण व्यक्तियों में इस प्रकार की प्रवृत्ति का मिलना, वृक्क-क्षय का एक मुख्य लक्षण है। इस प्रकार की प्रवृत्ति (बार-बार मूत्र करने की) मूत्र-संस्थान के रोगों के अतिरिक्त श्रोणिगत उदरावृत्ति-शोथ (Pelvic Peritonitis) तथा समीपवर्ती अङ्गों (आंत्रपुच्छ-शोथ, बीजवाहिनी तथा बीजकोष-शोथ) के विकारों में भी मिल सकती है। सामान्यतया इस प्रवृत्ति का हेतु वस्तिगत-क्षोभ (Irritation) है। ऐसा क्षोभ वृक्काशमरी, पश्चात्-प्रसेक-शोथ (Post-Urethritis), छीला-शोथ प्रभृति विकारों में पाया जाता है। इस क्षोभ का कारण यदि अशमरी हो तो परिश्रम के पश्चात् इस प्रकार की मूत्र-प्रवृत्ति अधिक मिलेगी; परन्तु शोथ-जन्य होने पर आराम से प्रवृत्ति में कमी पाई जावेगी। मूत्र-त्याग बार-बार होने के साथ ही साथ

यदि पीड़ा भी मिले तो वह किसी शोथ या अशमरी के कारण हो सकती है; परन्तु ऐसे प्रवृत्ति के साथ पीड़ा का अभाव छीला-ग्रंथि की वृद्धि का सूचक होता है।

**मूत्र की धारा (Stream)**—मूत्र की धार स्वाभाविक है या अस्वाभाविक? एक है या दो? मूत्र-त्याग-काल में धार टूट जाती है (संज) या अखण्ड बनी रहती है? इन बातों को भी रोगी से पूछना चाहिये।

प्रसेक-शोथ के परिणामस्वरूप उत्पन्न व्रण-वस्तु के कारण मूत्र-प्रसेक में मार्गावरोध उत्पन्न होता है, फलतः धारा पतली हो जाती है। प्रसेक के अतिरिक्त शिशन-चर्मावरोध (निरुद्ध प्रकश या Phimosi) में भी धार पतली हो जाती है। शिशन के मुख के ऊपर व्रण-वस्तु के कारण अवरोध होने से धार विभाजित होकर दो में बँट जाती है। प्रसेक में अशमरी के आ जाने से धारा का प्रवाह बीच में एकाएक बन्द हो जाता है, कभी-कभ पुनः जोर लगाने से अशमरी मूत्र के साथ निकल जाती है। निरुद्ध प्रकश के उपद्रवस्वरूप उत्पन्न शिशन-चर्म की अशमरी में मूत्र की धारा में अन्तर आ जाता है। छीला-वृद्धि (Enlarged Prostate) में मूत्र की धारा के प्रारंभ में देर लगती है, तथा रोगी का ध्यान किसी कारण यदि दूसरी ओर खिंच जाय तो मूत्र की धार एकाएक बन्द हो जाती है। इसके विपरीत व्रण-वस्तुजन्य प्रसेकावरोध (Stricture) में रोगी के अत्यधिक जोर लगाने पर मूत्र की पतली धार निकलती है और मूत्र-प्रखाव के अन्त तक उसमें किसी प्रकार की रुकावट नहीं पाई जाते। मूत्र की धार ठीक होने पर यदि उसमें एकाएक संग (रुकावट) हो जाय तो उसे वस्तिगत अशमरी या वस्तिगत अंकुराबुद (Papilloma) के प्रसेक-मुख (Urethral orifice) पर आ जाने से समझना चाहिये। इस प्रकार की रुकावट स्थिति के बदलने (Change of posture) से दूर हो जाती है एवं धार पूर्ववत् हो जाती है।

**मूत्र-प्रखाव संबन्धी अन्य बातें**—रोगी में मूत्र की राशि, वर्ण, गंध, रक्त, वायु आदि की उपस्थिति के बारे में भी रोगी से पूछना चाहिये। साथ ही मूत्र-मार्ग से मूत्र के अतिरिक्त किसी विशेष खाव की उपस्थिति है या नहीं? यह भी पूछना चाहिये।

वृक्कगत रोगों में या मूत्र-प्रसेकावरोध में मूत्र की राशि में अस्वाभाविकता का मिलना संभव है। अशमरियों में मूत्र का रंग चूने के पानी के समान, कामला में पीत एवं कड़ुए तेल की तरह, तीव्र-वस्ति-शोथ (Acute cystitis) में मूत्र गाढ़ा एवं चिपचिपा पाया जाता है। मूत्र में रक्त की उपस्थिति, वृक्क,

गवीनी, वस्ति, प्रसेक प्रभृति अंगों के विकृतों (Legions) के कारण मिल सकती है। यदि रोगी में शोणित मेह का इतिहास मिले तो वह रक्त मूत्र के साथ मिला हुआ आता है या पृथक्? मूत्र-त्याग पूर्व या पश्चात् आता है? इसे रोगी से पूछें। मूत्र-त्याग के पूर्व आने वाला रक्त प्रसेकगत विकृतियों के कारण मिलता है; मूत्र-त्याग के अनन्तर पृथक् से आनेवाला रक्त वस्ति के विकारों का निर्देशक है, यदि रक्त मूत्र के साथ पूर्णतया मिला हुआ आता है तो वृक्क तथा वस्ति के विकारों की संभावना रहती है। जमे हुए रक्त के थक्कों (स्कंदनों) का मूत्र के साथ निकलना वस्तिगत-रक्त-स्राव का प्रधान लक्षण है। इसी प्रकार पूय का (Pus) का भी वृत्त रोगी से लेना चाहिये। मूत्र के साथ वायु तथा मल का निकलना वस्ति का मलाशय से वैकारिक सम्बन्ध सूचित करता है (वस्ति मलाशय भगंदर Recto Vascular fistula) तीव्र पूय-मेह में मूत्र के अतिरिक्त मूत्र मार्ग से अत्यधिक पूय-स्राव भी निकलता है—जीर्ण-पूयमेह में इस प्रकार स्राव कम मात्रा में पाया जाता है।

**मूत्राघात या मूत्रस्राव (Suppression)** ऊपर निर्दिष्ट मुख्य लक्षणों के अतिरिक्त मूत्रावरोध (Retention), मूत्रकृच्छ्र (Dy-

१. शोणित मेह (Haematuria) के हेतु—

वृक्क के घातक अबुद, वस्ति का अंकुराबुद, वृक्कगत अशमरी, मूत्र-संस्थान के अभिघात, मूत्र-संस्थान का क्षय, वृक्क-श्रोणि (Renal Pelvis) के अबुद, वस्तिगत अशमरी, गवीनी के अभिघात तथा सार्वदैहिक रक्तस्रावी रोग। तथा औषधि-प्रयोग के परिणामस्वरूप।

२. मूत्रावरोधके हेतु—

(१) मूत्रके निकासमें अवरोध।

शोफसमें—निरुद्ध प्रकाश, शोफसके चारों ओर मुद्दिका सदृश बंध (Bands round Penis), धातुकाबुद।

प्रसेकमें—सन्निरोध (Stricture), अँटकी हुई अशमरी, विदार।

छीलामें—परिपुष्टि (Hypertropy), अबुद शोफ।

वस्तिमें—अबुद, अशमरी।

वस्तिग्रीवामें बाहरसे—अबुदोंका पीड़न, गर्भित गर्भाशयका पश्चिम अंश, गर्भाशयिक सौत्राबुद (Uterine Fibroids)।

(२) वातिक (Nervous) सुपुम्नाके रोग, मस्तिष्क तथा सुपुम्नाके अभिघात, गुदा एवं प्रजनन संस्थानके शल्यकर्म, अपतंत्रक (Hysteria)।

(३) वस्तिकी अल्पबलता (Atony)—अतिशय भरा होना, तीव्र एवं जीर्णवस्तिशोथ वृद्धावस्था (संभवतः छीलावृद्धिमें)।

surea), अनियंत्रित मूत्रोत्सर्ग (Incontinence) या वृक्कगत-उत्सेध प्रभृति लक्षणों के सम्बन्ध में भी रोगी से प्रश्न करना चाहिये।

**पूर्ववृत्त**—रोगी से इसके पूर्व मूत्र-संस्थानगत कष्टों के विषय में पूछें। वर्तमान कष्ट इसके पहिले भी कभी हुए हैं? यदि हुए हैं तो कितनी बार यह भी पूछें। रोगी से क्षय, फिरंग तथा पूयमेह प्रभृति रोगों के बारे में भी पूछ लें। साथ ही रोगी ने किसी रोग की चिकित्सा के लिये—संख्या, सल्फोनामाइड या क्विनिन इत्यादि औषधों का प्रयोग किया है या

१. अनियंत्रित मूत्रोत्सर्ग के हेतु (Incontinence) :—

[i] सक्रिय (Active)—बालकों का शय्यामूत्र या रात्रीय अनियंत्रित मूत्रोत्सर्ग (Nocturnal Incontinence) अस्वाभाविक रीति से वस्ति-केन्द्र (Vesicle Centre) की प्रत्यावर्तित उत्तेजनाएँ (Reflex stimulation) उदाहरणार्थ—वस्ति का क्षणिक आध्मान (Distension), गुदागत कृमि या अर्श (Polypus), निरुद्ध प्रकाश, शर्करा (Uric Acid Gravel) भावुकतायें (Emotions)।

[ii] निष्क्रिय (Passive)—संकोचनी पेशी की अक्षमता या संकोचन-क्रिया का दोष—(Paralysis of the Sphincter or disturbances of Sphincter Mechanism)।

क—घातज (Paralytic)—सुपुम्नास्थित वस्ति-केन्द्र का आघात (Injury) इसमें संकोचनी पेशियों का घात हो जाता है, वे शिथिल पड़ जाती हैं। मूत्र गवीनी से प्रसेक तक बूँद बूँद करके सीधे चला आता है। वस्ति रिक्त तथा संकुचित रहती है।

ख—यांत्रिक (Mechanical)। यदि वस्ति-मुख पर कोई अशमरी या अबुद भार डालता हो। स्त्री-प्रसेक (Female Urethra) का अतिशय आध्मान।

ग—अभिघातज (Traumatic) शल्य-कर्म में दोनों संकोचनियों की क्षति (मूला-धारीय छीला-छेदन)।

[iii] मिथ्या (False)—वस्ति के अत्यधिक भरे होने से, मूत्र का बूँद बूँद करके निकलना (Overflow incontinence) पाया जाता है। ऐसी दशा निम्न कारणों से हो सकती है—

क—अवरोध छीला-वृद्धि, प्रसेक या मूत्र-मार्ग सन्निरोध।

ख—सुपुम्ना के अभिघात (Trauma of Spinal Cord)।

ग—गर्भाशय की विकृत स्थिति (Retroverted Uterus)।

नहीं यह भी इतिहास पूछना चाहिये । अकस्मात् उत्पन्न शोणित-मेह ( Haematuria ) में इस प्रकार का वृत्त या इतिहास महत्व रखता है ।

### शारीरिक-परीक्षा—

**सार्वदैहिक**—विभिन्न संस्थानों की विशेषतः मूत्र-संस्थान की पूर्ण परीक्षा कर लेनी चाहिये । फुफ्फुस और हृदय की परीक्षा करते समय फुफ्फुस-पाक के चिह्नों को तथा हृदय में औपसर्गिक अंतः हृदयवृत्ति-शोथ ( Infective Endocarditis ) के ऊपर विशेष ध्यान देना चाहिये । वृक्क में होने वाले घातक रोगों ( Malignant Diseases ) में द्विर्बुद ( Metastasis ) की उत्पत्ति औपद्रविक रूप से फुफ्फुस एवं अस्थि में होती है । उपचुल्लिकाग्रन्थि ( Parathyroid ) के अर्बुदों में वृक्क में अश्मरियाँ पाई जाती हैं । अतः गले की परीक्षा उपचुल्लिकागत अर्बुदों की उपस्थिति के लिये करें । वातिक-रोगों ( Nervous ) के कारण मूत्रावरोध या अनियंत्रित-मूत्रोत्सर्ग की संभावना रहती है—इसलिये इन विकारों के निराकरण के लिये वातिक-संस्थान ( Nervous System ) की भी परीक्षा आवश्यक है । मस्तिष्कगत पीयूष-ग्रन्थि ( Pituitary ) के परिणाम-स्वरूप मूत्रसंस्थान के वैकारिक परिवर्तनों के अभाव में भी बहुमूत्रता मिल सकती है । इसी प्रकार की बहुमूत्रता मधुमेह में भी मिलती है । मूत्रवह-संस्थान का क्षय बहुधा किसी अन्य अंग में आश्रित प्राथमिक क्षय के उपद्रव-स्वरूप में पाया जाता है ।

रोगी की जिह्वा, तृषा, नाड़ी, श्वसन, रक्त-क्षय की उपस्थिति, मल-मूत्र-प्रवृत्ति प्रभृति बातों को भी देखना चाहिये । रोगी में मूत्र-विषमयता ( Uremia ) की उपस्थिति का ज्ञान उपर्युक्त बातों के ध्यानपूर्वक निरीक्षण के अनन्तर ही हो सकता है ।

**स्थानिक-परीक्षा—दर्शन**—सम्पूर्ण उदर को देखे कि उसमें कोई उत्सेध उपस्थित है या नहीं ? वृक्क के कारण उपस्थित उत्सेध पार्श्वों में दिखाई देते हैं । उत्सेधों के अधिक बड़े होने पर वे सामने की दीवाल की ओर से भी देखे जा सकते हैं । नाभि के नीचे भगोर्ध्व-प्रदेश के मध्य में दिखलाई पड़ने वाला उत्सेध सामान्यतया वस्ति-विस्फार ( Distended Bladder ) के परिणामस्वरूप रहता है । परन्तु यदि भगोर्ध्व-प्रदेश के उत्सेध में शोथ के चिह्न उपस्थित हों तो वह भगोर्ध्व-प्रदेश की उदर-प्राचीर के विद्रधि के परिणामस्वरूप भी हो सकता है इसे ध्यान में रखे ।

बच्चों में यदि किसी पार्श्व में सामने की ओर विस्तृत उत्सेध दिखाई दे तो 'विल्म के अर्बुद' की आशंका होती है । दाहिने पार्श्व में इस प्रकार का उत्सेध यकृदात्युदर ( Enlarged Liver ) का और वाम पार्श्व में होने पर प्लीहावृद्धि ( प्लीहादर ) का अम पैदा कर सकता है । वृक्कगत-उत्सेध तथा यकृत और प्लीहागत-उत्सेध—इनमें सापेक्ष निदान करने के लिये यह ध्यान में रखे कि यकृत या प्लीहा से सम्बन्धित उत्सेध श्वसन-क्रिया के साथ चलायमान होते हैं परन्तु वृक्क से संबंधित उत्सेधों में श्वसन-क्रिया में इस प्रकार का परिणाम नहीं देखा जाता । शेफस ( Penis ) तथा फलकोष ( Testes ) का भी निरीक्षण उनमें उपस्थित विकारों के निराकरण के लिये करना आवश्यक होता है । साथ ही मूलाधार-प्रदेश ( Perineum ) का दर्शन भी आवश्यक हो जाता है । शिशु तथा शिशु-चर्म को उनके तीव्र या जीर्ण ब्रणों के लिये, निरुद्ध प्रकश ( शिशु चर्म के संश्रय ) के लिये देखना चाहिये । मूलाधार प्रदेश को किसी विद्रधि की उपस्थिति के लिये तथा अण्डकोष को उसमें क्षय के परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तनों के लिये देखना चाहिये । मूत्र-विस्तृती में ( Extravasation of urine ) अण्डकोष, शेफज तथा भगोर्ध्व-प्रदेश में तनावयुक्त सूजन मिलेगी । यदि मूत्र विस्तृती होकर कुछ दिन बीत गये हों तो ऐसी अवस्था में इन प्रदेशों में ( Cellulitis ) के चिह्न मिल सकते हैं ।

बैठे हुए रोगी में पीठ की तरफ सूजनयुक्त उभार उस पार्श्वगत-वृक्कसमीप विद्रधि ( परिवृक्किय विद्रधि Perinephric Abscess ) के कारण पाया जाता है ।

**स्पर्शन**—रोगी को बैठा कर तथा लेटाकर दोनों स्थितियों में स्पर्शन करना चाहिये । बैठे हुए रोगी में स्पर्शन करते हुए उसके स्पर्शान्नात्म स्थान का पता लगाना चाहिये । विशेषत मर्फीकोण ( Murphy's angle ) में स्पर्शन विधियों से देखे; यदि उस स्थल पर रोगी पीड़ा का अनुभव करे तो वृक्कगत रोगों की उपस्थिति का अनुमान लग जाता है । परिवृक्क-विद्रधि के उपस्थिति में इस स्थान पर स्थानिक शोफ, दवाने पर गड्ढा पड़ना ( नम्य Pitting on Pressure ) इन दोनों चिह्नों की उपस्थिति मिलेगी

१. मर्फी का कोण ( Murphy's Angle )

पीठ पर मेरुदंडीका पेशी ( Erector Spinous Muscle ) और १२वीं पशुका के मिलने से बना हुआ कोण ।

तथा वृक्काश्मरी में भी इस स्थान पर अंगूठे से दबाने पर रोगी पीड़ा का अनुभव करेगा ( Renal punch ) । रोगी को उस्तानासन में दोनों पैरों को मोड़कर लिटाकर स्पर्शन द्वारा परीक्षा करनी चाहिये । यह विधि वृक्क-परीक्षा के लिये सर्वोत्तम विधि है ।

**करद्वय-परीक्षा ( Bimanual Examination )**—परीक्षक अपने बायें हाथ को मर्फीकोण पर रखे एवं दाहिना हाथ उदर पर सामने की ओर पार्श्व की तरफ रखे । इसके पश्चात् रोगी को धीरे-धीरे साँस लेने को कहे । प्रत्येक श्वसन की गति के साथ अपने दाहिने हाथ को वह धीरे-धीरे नीचे की ओर दबावे । इस प्रकार दबाने से दो-तीन श्वसन के बाद, वृक्क के सामने के पृष्ठ-तल का स्पर्शन करने में वह समर्थ होगा । साधारणतया वृक्क स्पर्शलभ्य नहीं होते । मर्फी के कोण पर रखे हुए बायें हाथ से ऊपर को धक्का देनेसे वृक्क ऊपर की ओर उछलेगा और दाहिने हाथ से उसका स्पर्शन किया जा सकेगा । इसी विधि से दोनों हाथों को थोड़ा-थोड़ा ऊपर या नीचे को हटाकर किया जाय तो सम्पूर्ण वृक्क के स्पर्शन परीक्षा द्वारा स्थानिक अर्बुद या अन्य प्रकार के उत्सेधों का निदान करना संभव है ।

वृक्क स्थित अश्मरी का ज्ञान स्पर्शन द्वारा असंभव है । वृक्काबुद की उपस्थिति मिलने पर उनका अन्य स्थानों के अर्बुदों की तरह स्थान, आकार, परिमाण, विस्तार, गठन, किनारे तथा समीपवर्ती अंगों से संबन्ध प्रभृति बातों का स्पर्शन द्वारा विनिश्चय करना चाहिये । गठन के सम्बन्ध में यह जानना आवश्यक है कि वृक्क में कठिन तथा जलमय दोनों प्रकार के अनुभवों का मिलना उत्सेधों में संभव है । कठिन उत्सेध बहुधा क्षयजन्य या अर्बुदजन्य होते हैं । जलमय उत्सेध वृक्कज द्रव ग्रंथि, (Cyst) जलवृक्क, ( Hydro Nephrosis), पूय-वृक्क ( PyoNephrosis ) तथा बहुद्रव-ग्रंथियुक्त वृक्क ( Polycystic Kidney ) के कारण मिलते हैं । गवीनी का स्पर्शन असंभव है ।

ऊर्ध्व-भगास्थि प्रदेश में उत्सेध की उपस्थिति होने पर उसके स्थान, परिमाण, आकार प्रभृति बातों का विनिश्चय स्पर्शन द्वारा करना चाहिये । वस्ति के आध्मान के कारण उत्पन्न उभार स्पर्श में मृदु एवं लचकीले ( स्थितिस्थापक ) होते हैं । इस प्रदेश में इसी प्रकार के सीमित उत्सेध, एकदेशीय उदरावृत्ति विद्रधि ( Localised Peritoneal Abscess ) के कारण मिल सकते हैं । इन दोनों दशाओं की सापेक्ष निश्चिति आगे

बताई गई परीक्षाओं के द्वारा करना संभव है । विद्रधि की उपस्थिति में शोथ के लक्षण मिलना संभव है । ( Parital abscess )

शोफस के निचले भाग का स्पर्शन प्रसेक ( Urethra ) स्थित अश्मरी, शल्य या ब्रणवस्तु प्रभृति विकारों की उपस्थिति के लिये करना चाहिये । स्पर्शन द्वारा परि-प्रसेकीय विद्रधि ( Peri-urethral Abscess ) का निदान संभव है । साथ ही सम्पूर्ण मूलाधार प्रदेश का भी तत्स्थानगत शोफ या नाड़ीव्रण के लिये स्पर्शन करते हुए विनिश्चय करना चाहिये ।

तदनन्तर फलकोष, अण्ड, उपाण्ड, वृषण-रज्जू ( Spermatic Cord ) प्रभृति रचनाओं का स्पर्शन उनकी स्थानिक विकृतियों की उपस्थिति के लिये करें । इस परीक्षा-विधि का विशेष विवेचन फलकोषीय वृद्धियों के अध्याय में किया जा चुका है ।

**अंगुलिताडन**—इस विधि द्वारा उत्सेध की निश्चित परिसीमा जानी जा सकती है । बस्ति-प्रदेश में स्थित उभार आंत्रों के आध्मान के कारण है या बस्ति-विस्फार के कारण है—इसका विनिश्चय इस परीक्षा-विधि से किया जा सकता है । बस्ति-विस्फार-जन्य उभार अंगुलिताडन से मंदध्वनियुक्त मिलेगा । भगोर्ध्व-प्रदेश में स्थित विद्रधि भी अंगुलिताडन से मंदध्वनियुक्त मिलेगी परंतु उसमें साथ ही शोथ के लक्षण भी उपस्थित मिलेंगे ।

**विशेष परीक्षाएँ—**

**गुदा-परीक्षा**—जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इस परीक्षा द्वारा मूत्र-संस्थान के कई विकारों का ज्ञान संभव है । इस परीक्षा द्वारा छीला-ग्रंथि बस्तिमूल ( Base of Bladder ), गवीनी, गर्भाशय प्रभृति अवयवों का स्पर्शन करते हुए उनसे सम्बन्धित स्थानिक विकारों का ज्ञान किया जा सकता है । कभी-कभी बस्तिस्थित अश्मरियों ( विशेषतः वच्चों में ) इस परीक्षा के द्वारा स्पर्श-लभ्य हो सकती हैं । इसी के साथ-साथ करद्वय परीक्षा ( Bi-manual Examination ) भी की जा सकती है ।

**योनि-परीक्षा**—स्त्रियों में इस परीक्षा के द्वारा बस्ति की स्थिति तथा उसके विकारों का ज्ञान आसानी से होता है । जैसे बस्ति-योनि भगंदर ( Vesico-Vaginal fistula ) का दर्शन भी किया जा सकता है ।

**क्षकिरण परीक्षा**—क्ष-किरण द्वारा मूत्रसंस्थान चित्रण—

१. साधारण चित्रण ( Plain Skiagram ) इस चित्रण द्वारा मूत्र-संस्थानगत विभिन्न स्थानों में स्थित अश्मरियों तथा वृक्क की परि-सीमा का

ज्ञान संभव है। उसी प्रकार से वृक्क के घातक अर्बुदों के द्विर्बुदों की ( Metastasis ) की उपस्थिति के लिये वक्ष तथा अस्थियों का चित्रण।

२. वृक्कचित्रण—यह दो प्रकार का होता है। १—सिरा द्वारा ( I. V. Pyelography—Descending Pyelography ) अवरोही वृक्कचित्रण क्षकिरणामेघद्रव का प्रवेश कराके वृक्क, गवीनी, गवीनी-वृक्ष ( Pelvis ), वस्ति प्रभृति अंगों का चित्रण किया जाता है। इस विधि को अवरोही वृक्कचित्रण ( Descending Pyelography ) कहते हैं। २—आरोही वृक्कचित्रण ( Ascending Pyelography ) वस्तिदर्शक यंत्र ( Cystoscope ) की सहायता से, गवीनी छिद्र से गवीनी मूत्रनाड़ी ( Ureteric Catheters ) के द्वारा क्षकिरणामेघ द्रव्य को प्रविष्ट करके गवीनी तथा गवीनी-वृक्ष का चित्रण किया जाता है। इस विधि को आरोही वृक्कचित्रण ( Ascending Pyelography ) या विपरीत चित्रण ( Retrograde Pyelography ) कहते हैं।

यंत्र-प्रयोग ( Instrumentation )—मूत्र-नाड़ी, शलाका ( Bougies & Sounds ) तथा वस्तिदर्शक यंत्र ( Cystoscope ) तथा प्रसेकदर्शक-यंत्र ( Urethroscope ) के द्वारा परीक्षा की जाती है।

मूत्र-परीक्षा—सामान्य तथा विशेष परीक्षाएँ। भौतिक, रासायनिक आदि। अवक्षेपों की—अणुवीक्षणत्मक। कृत्रिम संवर्द्धन ( Culture )।

वस्तिदर्शक यंत्र की सहायता से दोनों वृक्कों से आनेवाले मूत्रों को पृथक् पृथक् इकट्ठा करके उपर्युक्त विधियों के अनुसार परीक्षा करनी चाहिये।

**वृक्ककर्म-परीक्षा ( Kindey Function Test )**—१. रंजन द्वारा २. मिह परीक्षा द्वारा।

१. रोगी को 'मेथिलिन ब्ल्यू' का सिरा द्वारा प्रवेश कराके वस्तिदर्शक-यंत्र की सहायता से दोनों वृक्कों से होनेवाले निःसरण ( Excretion ) को देखना चाहिये तथा परीक्षा के लिये प्रत्येक वृक्क से आये हुये मूत्र का अलग-अलग संचय भी कर सकते हैं। प्रत्येक वृक्क की कार्यक्षमता का ज्ञान तथा विकृति की निश्चिति हो सकती है।

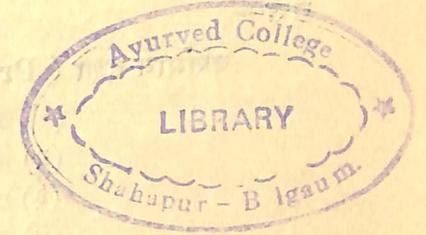
२. मिह-परीक्षा ( Urea Concentration Test )—इसमें रोगी को १५ ग्राम मिह लवण ( Urea ) को १०० सी० सी० में घुलाकर देते हैं। इस औषध के सेवन के बाद होने वाले प्रथम मूत्र को छोड़कर शेष के आने वाले मूत्रों में मिहीय लवणों का प्रतिशत प्रमाण देखा जाता है। यह प्रमाण इस अवस्था में २॥% से ऊपर होने पर वृक्क स्वस्थ है तथा अपना कार्य सुचारु-

रूप से कर रहा है, यह समझा जाता है। २% से प्रमाण के कम होने पर वृक्क के कार्य में बाधा हो रही है या वृक्क अपना कार्य करने में असमर्थ है; यह समझना चाहिये।

### रक्त-परीक्षा—

१. सकल तथा सापेक्ष श्वेतकायाणु-गणन।

२. रक्तगत मिह की मात्रा—Non Protien Nitrogen का प्रति १०० सी०सी० में प्रमाण। यह प्रमाण प्राकृतावस्था में २०-४० मिलीग्राम होता है; परन्तु मूत्रवह-संस्थान के कई रोगों में इसकी मात्रा २०० मिलीग्राम या उससे अधिक हो सकती है। इससे शस्त्रक्रिया-संशय ( Operative risk ) का उस रोगी में प्रमाण क्या है, इस बात का पता लग सकता है। रक्तगत मिह की राशि जितनी ही अधिक होती है उतनी ही शल्य-क्रिया संशय ( Risk ) भी बढ़ा हुआ माना जाता है।



## द्वादश योजना

विविध स्तन-रोग या स्तनगत उत्सेध एवं

तत्सम्बन्धी विशेष विचार

( Swellings of the Breast )

आधार

वृत्त—

वर्तमान दशा ( Present condition )—

- (१) अवधि ?
- (२) कैसे पता लगा ?
- (३) अभिघात
- (४) लोष्ठ ( Lump )—बढ़ने की गति ( Rate of Growth ), आकार में घटाव-बढ़ाव ( क्षय या वृद्धि ) ।
- (५) पीड़ा तथा उसका ऋतुस्त्राव के साथ सम्बन्ध ।
- (६) चुचुक ( Nipple ) का स्त्राव रक्ताभ ( Bloody ), दुग्धवत् ( Milky ), जलाभ ( Watery ) या पूयाभ ( Purulent )
- (७) त्वक्-गत विचर्चिका ( Eczema )
- (८) स्तन-आकार में परिवर्तन ।

पूर्ववृत्त—

- (१) स्तन में यदि कोई विकार रहा हो ।

( १५९ )

- (२) गर्भ-स्थिति—यदि कोई रही हो; बच्चा स्तन-पायी या बोटलपायी ( Breast or Botte-fed ) हो ।

शारीरिक परीक्षा—

सार्वदैहिक—

स्थानिक—उत्सेध दृष्ट है ? यदि है तो वह एक-दैशिक ( Localised ) या सर्वसर ( diffuse ) है ।

- (१) पार्श्व—दाहिना या बायाँ ।
- (२) विभाग ( Quadrant ) ।
- (३) स्तन का भ्रंश या स्थानान्तरण ( Displacement )—अक्षक से चुचुक स्थानांतर दक्षिण या वाम ।

मध्यवक्त्र से चुचुक ( Midsternum to nipple ), दक्षिण या वाम ।

- (४) चुचुक की दशा तथा चुचुक का अवनमन ( Retraction of nipple )
- (५) अन्य निरीक्षण ( Observation )—त्वचा; सूजन, त्वचा की अवनति ( Puckering ) गजचर्म ( शूकर चर्म ) ( Pig skin ), विचर्चिका ( Eczema )
- (६) दूसरे पार्श्व का अवलोकन ।

स्पर्शन—

सीधा खड़ा करके या झुकी हुई स्थिति में करे ।

- (१) क्या कोई अर्बुद है ?
- (२) एक या अनेक ( Single or Multiple )

अर्बुद—

- (१) गठन
- (२) पृष्ठ
- (३) किनारा
- (४) आकार

(५) परिमाण (६) स्थान

(७) विस्तार तथा सम्बन्ध

(क) त्वचा से ।

(ख) उरच्छदा पेशियों से ( Pectoral Muscles )

(ग) वक्ष की दीवाल से ।

(घ) कक्षीय ग्रंथियों की परीक्षा ।

**विशेष परीक्षाएँ—**

क्या दूसरा स्तन प्राकृत है ?

**स्तनगत उत्सेध**

( Swellings of Breast )

**विस्तार****इतिवृत्त—**

**वर्तमान दशा-अवधि**—स्तन की व्यथा से पीड़ित रोगियों से पूछना चाहिये कि सूजन कितने समय से है । काल-मर्यादा या अवधि का पता लगाने से रोग की तीव्रतावस्था है या जीर्णवस्था इसका ज्ञान हो जाता है । तीव्र-स्तन-शोफ तथा स्तन-विद्रधि में कालमर्यादा कम रहती है; परन्तु कैंसर, सौत्र-ग्रंथ्यबुद् ( Fibro Adenoma ), सजल-ग्रंथ्यबुद् ( Cyst Adenoma ), जीर्ण स्तन-शोफ ( Chronic Mastitis ), सद्रवग्रंथि ( Cysts ) प्रभृति रोगों में अवधि लम्बी पाई जाती है ।

रोगी को विकृति का पता कब और कैसे लगा ? यह भी पूछना चाहिये । कभी-कभी छोटे से सजल ग्रंथ्यबुद् का पता नहाते समय या स्तन की सफाई करते समय रोगी को लगता है । बच्चों में उत्पन्न नवजात-स्तनशोफ ( Mastitis Neo-Natorum ) का पता सर्वप्रथम माता को या दाई को लगता है । दूध पीने के बाद बच्चे के मुख पर खून का दाग देखकर चूचुक विदार ( Cracked Nipple ) का पता माता को लग सकता है । ऐसा लक्षण चूचुक विदार के अभाव में दुग्धहारी नलिका के अंकुराबुद् ( Papilloma of the duct ) के कारण हो सकता है । कई उत्सेधों का रोगी को पता स्तन में होने वाली पीड़ा के कारण होता है ।

**अभिघात**—स्तन पर आघात का वृत्त रोगी में मिलता है या नहीं ?

आघात सुई या अन्य किसी नुकीले शस्त्र के चुभने से होने पर जीर्ण-रक्त-ग्रन्थि ( Blood cyst ) या विद्रधि की उत्पत्ति हो सकती है । स्तन पर मूक आघातों ( Blunt Trauma ) के पश्चात् अभिघातज-मेदकोथ ( Traumatic Fatty necrosis ) की उत्पत्ति हो सकती है । लटकानेवाले पैण्ट के क्लिप के स्तन भाग पर रगड़ खाने से ( उत्पन्न अभिघात से ) उस पार्श्व में स्तन-शोफ की उत्पत्ति हो सकती है । इसके परिणामस्वरूप कदाचित् कैंसर की भी उत्पत्ति उस अंग में हो सकती है । स्तन में अधस्तनीय ( Sub-mammary ) जल भरण ( Infusion ) के कारण उत्पन्न अभिघात के उपद्रव स्वरूप में उस पार्श्व में विद्रधि तथा अभिघातज मेदकोथ की भी संभावना रहती है ।

**लोष्ठ**—स्तन में लोष्ठ की उत्पत्ति होने पर लोष्ठ की बढ़ने की गति उसमें बढ़ाव घटाव ( वृद्धि एवं हानि ) तथा आकार परिवर्तन को प्रवृत्ति किस प्रकार की है ? इस बात को रोगी से पूछना चाहिये । इससे वह लोष्ठ किस प्रकार का है इस बात का ज्ञान हो सकता है । साधारण तथा सौम्य अर्बुदों में बढ़ने की गति मंद रहती है, परन्तु घातक अर्बुदों में यह गति तीव्र होती है । स्तन विद्रधि में लोष्ठ की बढ़ने की गति बहुत शीघ्र होती है । अवरोधज सद्रव-ग्रन्थि ( Retention Cyst ) क्रमशः तथा धीरे-धीरे बढ़ती है । सौम्य अर्बुद जब घातक अर्बुदों में परिवर्तित हो जाते हैं उस समय उनकी बढ़ने की गति एकाएक तेज हो जाती है । सजल ग्रन्थ्यबुद् में ( इसके सौम्य प्रकारों में होने पर भी ) बढ़ने की गति तीव्र होती है तथा उसमें घातकता के परिवर्तनों की ( malignancy ) संभावना भी अधिक रहती है ।

**लोष्ठ के आकार की वृद्धि एवं हानि (Fluctuation in size)**—विद्रधि के विदीर्ण होने ( फट जाने ) पर सूजन का आकार छोटा हो जाता है । अर्बुदों में औपद्रविक उपसर्ग ( Secondary Infection ) के परिणाम स्वरूप आकार में परिवर्तन संभव है । ग्रन्थ्यबुद् ( Adenoma ) में जल की उत्पत्ति होने पर उसका आकार बढ़ जाता है परन्तु सौत्रिकधातुओं ( Fibrous tissues ) की अधिकता होने पर उसका आकार छोटा हो जाता है । अवरोध से उत्पन्न सद्रव ग्रंथि ( Cysts ) में कभी-कभी यदि अवरुद्ध साव बाहर निकल आवे तो उभार का परिमाण छोटा हो जाता है ।

**पीड़ा**—यदि सूजन में पीड़ा की प्रवृत्ति है तो उस पीड़ा का ऋतुसाव के समय के साथ क्या सम्बन्ध है ? इस बात को भी रोगी से पूछना चाहिये ।

अश्रम-कैंसर ( Scirrhous cancer ) में प्रारंभिक अवस्था में पीड़ा नहीं पाई जाती, परन्तु मस्तुलुम्भ-कैंसर ( encephaloid ) में पीड़ा प्रारंभ से ही अत्यधिक रहती है। वातिक-प्रकृति ( Neurotic ) की स्त्रियों में अंतःसोतंसीय सौत्र ग्रन्थ्यबुद् ( Intra-Canalicular Fibro-Adenoma ) में ऋतु-काल में अत्यन्त पीड़ा होती है। संवरण सद्रवग्रन्थि में (Involution Cyst) पीड़ा आर्तवन्त्रय (Menopause) के समय स्तन में पाई जाती है। इसमें स्तन के बाह्य एवं आधो भाग में ( outer & lower segment ) छोटी-छोटी तनावयुक्त बहुसंख्यक उभारों ( Swellings ) पाई जाती हैं जिनमें पीड़ा की उपस्थिति रहती है। स्तनशूल ( Mastodynia ) के कारण उत्पन्न पीड़ा ऋतुकाल में ही पाई जाती है। बहुधा स्तन में उत्पन्न होने वाले उभार प्रथमावस्था में पीड़ा कर नहीं होते, उन में पीड़ा की उपत्ति होना घातक परिवर्तनों के फलस्वरूप या सांवेदनिक नाडियों पर दबाव पड़ने के कारण पाया जाता है।

**चूचुक से स्राव**—स्तन से किसी विशेष प्रकार का स्राव यदि हो रहा हो तो उसका भी रोगी से पूछ कर पता लगा लेना चाहिये। स्तन से होने वाला स्राव चूचुक से आ रहा है या वह समीपवर्ती चर्म के किसी विकार के कारण आ रहा है, इसका भी पता रोगी से पूछ कर लेना चाहिये। स्तन से निम्न-लिखित विभिन्न प्रकार के स्राव होते हैं जैसे—

( अ ) रक्ताम—( रक्तसदृश ) यह स्राव दुग्धनलिका के अंकुराबुद् ( Papilloma ) कैंसर तथा स्तन के क्षय ( T.B. ) में मिलता है। चूचुक विदार में भी संभव है।

( ब ) १—जलाम ( जलसदृश ) ( Serous )—दुग्ध नलिका के अंकुराबुद् की प्रारंभिक अवस्था में ( Primary stage of duct papilloma )

२—संयोजक स्तनशोफ में ( Interstitial mastitis ) वाद्ध्यजन्य स्तन-संवर्णावस्था में ( Involution of the Breast )

४—नवजात स्तनशोफ में।

( क ) पूयाम—१—तीव्र विद्रथियों में तथा अर्बुदों में पाकोत्पत्ति ( Secondary Infection ) होने पर।

२—क्षीराम ( दुग्धवत् ) क्षीरज वृद्धि ( Galactocele ), ( Gynacomrazia )।

३—स्तन्यकाल ( Lactation )।

**विचर्चिका ( Eczema )**—रोगी को स्तन के कृष्णमण्डल ( Areola ) पर या अन्य किसी भाग पर खुजली हुई थी या नहीं? चर्म पर खुजली या स्राव का वृत्त पैगेट के रोग, ल्वक्षोफ ( Dermatitis ) तथा चर्मगत कैंसर में पाया जाता है।

**स्तन के आकार में परिवर्तन**—साधारणतया स्तन के आकार में युवा-वस्था के प्रारम्भिक अवस्था में तथा आर्तवन्त्रय के समय होनेवाले परिवर्तन प्राकृतिक होते हैं। अन्य अवस्थाओं में यदि स्तन के आकार में परिवर्तन हुआ हो तो रोगी से पूछकर नोट कर लेना चाहिये। यह परिवर्तन एक पार्श्व में ही सीमित है या उभय-पार्श्वीय है यह भी पूछना चाहिये। पैंतालीस वर्ष की आयु के पश्चात् स्तनों के संवरणजन्य परिवर्तनों से ( Involution ) स्तन का आकार क्रमशः छोटा होता जाता है। यदि इन अवस्थाओं के अतिरिक्त स्तन में परिवर्तन पाये जायें तो वैकारिक स्थिति है अर्थात् यह किसी रोग से उत्पन्न हो रहा है, ऐसा समझना चाहिये। यौन अंतःस्राव ( Sexual Hormones ) की कमी होने से अविवाहिता स्त्रियों में स्तनका आकार छोटा हो जाता है। ( स्तन-शोष Atrophy of the Breast )। ऐसी अवस्था स्तनशोष-कैंसर ( Atrophic Scirrhous Cancer ) तथा जीर्ण-संयोजक स्तनशोफ ( Chronic Interstitial Mastitis ) में भी पाई जाती है।

**पूर्ववृत्त**—स्तन में इसके पूर्व होने वाले रोग का वृत्त भी लेना चाहिये। कभी-कभी वर्तमान रोग स्तन के पूर्ववर्ती रोग के उपद्रवस्वरूप हो सकता है। जैसे जीर्णसंयोजक-स्तनशोफ में घातक परिवर्तनों ( Malignant Changes ) का होना; अवरोधजन्य सद्रव-ग्रंथिमें ( Retention Cyst ) में अप जनन ( Degeneration ) का उद्भव, मस्तुलुङ्ग कैंसर, Encephaloid Cancer ) का चर्म के बाहर फट कर व्रण का बनना; चर्मगत विचर्चिका ( Eczema ) का चर्म के कैंसर में परिवर्तन प्रभृति।

रोगी को गर्भ-स्थिति हुई है या कि नहीं? यदि हुई है तो स्तन्य-काल में बच्चे को स्तन का दूध पिलाया गया था या बोतल ( शीशी ) का? क्षीरज-वृद्धि

( १ ) सकण्डुः १पडिका श्यावा बहुलावा विचर्चिका। विचर्चिका ( Eczema. )

( Galactocele ) की उपस्थित स्तन्य-काल में बोटलपायी ( Bottled ) बच्चों के माताओं में पाई जाती है। एकदेशीय जीर्ण-विद्रधि ( Localised chronic abscess ) हमेशा प्रसूना स्त्रियों में ही मिलती है। स्तन पिलानेवाली माताओं की अपेक्षा बोटल से बालकों का पोषण करनेवाली माताओं में स्तन के रोग अधिक पाये पाते हैं।

### शारीरिक परीक्षा—

**सार्वदैहिक**—रोगी की शारीरिक गठन की परीक्षा यौन अंतःस्त्रावों की कमी के ज्ञान के लिये कर लेना चाहिए। दुःस्वास्थ्य ( Cachexia ) की उपस्थिति तथा उसकी कोटि का पता लगा लेना चाहिये। उम्र की उपस्थिति या अनुपस्थिति, फिरंगद्वय प्रभृति रोगों के प्रमाण तथा उनके परिणामस्वरूप विभिन्न अंगों पर पाये जानेवाले लक्षणों का भी पता लगावे। ऋतु सम्बन्धी बातों की जानकारी तथा स्त्री-श्रोणिगत अंगों की परीक्षा भी कर लेनी चाहिये। पाण्डु या रक्ताल्पता की उपस्थिति या अनुपस्थिति का भी ज्ञान कर लेना चाहिये। इसके अनन्तर यकृत तथा सम्पूर्ण उदर की औपद्रविक अर्बुदों के लिये ( अर्धबुद् ) भी परीक्षा करना आवश्यक होता है।

### स्थानिक परीक्षा—

**दर्शन**—१. स्थानिक परीक्षा करने के पूर्व रोगी के ऊर्ध्व अंग के सभी दन्तों को हटाकर प्रकाशयुक्त स्थान में रोगी को रख कर परीक्षक को उसके सामने बैठ कर देखना चाहिये। उत्सेध ( Swelling ) दृश्यमान है या नहीं? यदि दृष्ट है तो वह एकदेशीय है ( सीमित ) या सर्वसर ( व्यापक ) है। दृश्यमान उत्सेध स्तनशोफ, स्तन-विद्रधि, सजल ग्रंथ्यबुद्, मांसाबुद् ( सारकोमा ) प्रभृति रोगों में मिलता है। उत्सेध के व्यापक होने पर उसका कारण अतिवृद्धि ( Hypertrophy ) गर्भकालीन तीव्र कैंसर, संयोजक स्तन-शोफ ( व्यापक स्वरूप का ) Diffuse Interstitial Mastitis ) प्रभृति होते हैं। उत्सेध के एकदेश में सीमित होने पर उसका हेतु सद्रवग्रन्थि ( Cyst ), सौत्रग्रन्थ्यबुद् ( Fibro Adenoma ) तथा विविध प्रकार के कैंसर प्रभृति हैं।

**पार्श्व**—यह देखना आवश्यक है कि सूजन किस पार्श्व में है? दाहिने या बायें। निदान के लिये इस बात का कोई विशेष महत्त्व न होते हुए भी विकार का स्थान-निर्देश इस प्रकार से करना आवश्यक है। यह देखा गया है कि कैंसर बायें स्तन में दाहिने की अपेक्षा अधिक मिलता है।

**विभाग ( Quadrant )**—स्थान निर्देश में सरलता लाने के लिये पूरे स्तन को काल्पनिक चार भागों में विभाजित करके वर्णन करने की परिपाटी है।

ऊर्ध्व अंतः	ऊर्ध्व-बाह्य	१—ऊर्ध्व बाह्य ( Upper & out ), २—ऊर्ध्व अंतः ( Upper & inner ), ३—अधोबाह्य ( Lower & out ), ४—अधो अंत ( Lower & in )।
अधो अंतः	अधोबाह्य	

इन विभागों में पाये जाने वाले विकारों की कुछ अपनी विशेषतायें भी होती हैं। जैसे ऊर्ध्व बाह्य विभाग में पाये जाने वाले उत्सेधों में साठ प्रतिशत उत्सेध कैंसर के होते हैं। दूसरे शब्दों में स्तन में पाये जाने वाले कैंसरों में साठ प्रतिशत तक इसी विभाग में हुआ करते हैं। विभिन्न भागों के अनुसार कैंसर का प्रतिशत प्रमाण निम्नलिखित है :—

ऊर्ध्व-बाह्य	६०%	अधो-अंत	६%
ऊर्ध्व-अंतः	१२%	कृष्ण-मण्डलगत	१२%
अधो-बाह्य	१०%		

**स्तन-भ्रंश ( Displacement )**—स्तन का भ्रंश स्तन में होनेवाले उत्सेधों के दबाव के कारण या संकोच के कारण विभिन्न दिशाओं में हो सकता है। इसका ज्ञान दोनों स्तनों के चूचुक की स्थिति से निम्न-प्रकार से करना चाहिये। (१) चूचुक का अक्षकारिस्थ से (clavicle) दूरी का पता लगाकर दोनों की तुलना से स्तन ऊपर की ओर उठ गया है या नीचे की ओर सरक गया है इसका ज्ञान किया जा सकता है। (२) इसी प्रकार वक्ष की मध्यबिन्दु से दोनों तरफ के चूचुक की दूरी का अनुमान करके तुलना करते हुए विकृत स्तन भीतर की ओर खसका है या बाहर की ओर इसका ज्ञान हो सकता है।

**चूचुक की स्थिति**—ऊपर निर्दिष्ट परीक्षा करते समय इस बात पर भी ध्यान देना चाहिये कि चूचुक ऊपर की ओर उभरा हुआ है या अंदर की ओर घुमा हुआ है ( Prominent or retracted )। ऊर्ध्व-बाह्य भाग में स्थित कैंसर के कारण उस पार्श्व का चूचुक ऊपर की ओर उठा ( उभरा ) मिलता है। चूचुक का आकार तथा परिमाण को भी दोनों पार्श्वों के तुलना करते हुए देखना चाहिये। चूचुक का प्रकृत से अधिक व्यक्त ( Prominent ) होना तत्स्थानगत सद्रव-ग्रन्थि ( Cyst ) या अवरोधक ग्रन्थि ( Reten-

tion cyst ) की उपस्थिति का द्योतक है तथा अन्दर की और सिकुड़ा रहना तत्स्थानगत कैंसर का लक्षण है ।

**चूचुक का अवनमन ( Retraction )**—यह एक अत्यन्त महत्त्व का चिन्ह है । कुछ व्यक्तियों में स्वाभाविक रीति से ही दोनों पार्श्वों में अवनमन पाया जाता है । अवनमन की उत्पत्ति यदि विकृति के साथ साथ हुई हो, तो उसे कैंसर का एक मुख्य लक्षण समझना चाहिये । 'पैगेट' के रोग में चूचुक सम्पूर्णतया नष्ट हो जाता है तथा उसके स्थान पर घातक व्रण ( Malignant ulcer ) की उत्पत्ति होती है । चूचुक में विदार, चर्म-रोग प्रभृति बातों की उपस्थिति है या नहीं यह देख लेना चाहिये । यदि चूचुक से कोई स्राव निकलता हो, तो उस स्राव की परीक्षा रंग ( वर्ण ) रूप, गंध प्रभृति बातों को ध्यान में रखते हुए कर लेनी चाहिये । यदि उस स्थान से कोई स्राव आ रहा हो तो वह चूचुक से ही स्रवित हो रहा है या चूचुक समीपवर्ती चर्म से यह देखे ।

**स्तन कृष्णमण्डल ( Areola )**—को ध्यान से देखना चाहिये । कृष्णमण्डल के आकार में दोनों पार्श्वों में अन्तर है या नहीं ? कैंसर के कारण होनेवाले चूचुकावनमन के परिणामस्वरूप उस स्थान का कृष्णमण्डल छोटा दिखलाई पड़ता है । कृष्णमण्डल के चर्म की उसी प्रकार वर्ण, आकार, विकार, स्राव प्रभृति बातों के लिये परीक्षा कर लेनी चाहिये । 'पैगेट' के रोग की प्रारम्भिक अवस्था में कृष्णमण्डल का वर्ण गुलाबी हो जाता है । स्तनगत विचर्चिका दोनों पार्श्वों में मिलती हैं, परन्तु 'पैगेट' का रोग एक ही स्तन में उपस्थित रहता है ।

**अन्य निरीक्षण**—इसमें सर्वप्रथम स्तन के चर्म का वर्ण, उत्सेध, सिराजाल, सूजन, तनाव, अवनमन प्रभृति चिन्हों के लिये निरीक्षण करना चाहिये । व्रणशोफ की अवस्था में स्तन-चर्म तनावयुक्त तथा लालिमा लिये हुए ( Red & tense ) मिलेगा । सिराजाल की उत्पत्ति तत्स्थानगत मांसाबुद ( सारकोमा ) के कारण मिलती है । चमड़े की सूजन या मोटापन ( सन्तरे के छिल्के जैसी ) का पाया जाना कैंसर के परिणामस्वरूप उत्पन्न होनेवाले स्थानिक लसीका वाहिनीगत अवरोध का लक्षण है । शीघ्रता से बढ़नेवाले स्तनाबुदों के कारण उनके ऊपर के चर्म का शोष ( Atrophy ) हो जाता है । चर्म का अवनमन तत्स्थानगत कैंसर का एक विशेष चिन्ह है । स्तन के कैंसरों में उपद्रवस्वरूप में होनेवाले कक्षीय लसीका ( Axillary ) वाहिनी

के अवरोध के कारण उस बाहु ( हाथ ) में तीव्रस्वरूप की गाढ़ी सूजन तथा त्वक्-काठिन्य ( चमड़े का कड़ापन ) भी मिल सकता है ( Brawny Indurated arm कठिन उत्सेधयुक्त बाहु ) । कक्षीय लसीका ग्रन्थियाँ दिखलाई पड़ती हैं या नहीं ? इसे भी नोट कर ले । अन्तिम निरीक्षणों में यह देखना चाहिये कि दूसरे पार्श्व का स्तन प्राकृत है या नहीं ? बहुधा स्तन के कैंसर एक-पार्श्वीय ( Onesided ) होते हैं; परन्तु जीर्ण संयोजस्तन-शोफ ( Ch. Int. Mastitis ) सदैव उभय-पार्श्वीय ( Bilateral ) मिलते हैं ।

**स्पर्शन**—रोगी को बैठा कर और लेटा कर दोनों तरह से स्पर्शन करना चाहिये । स्तन का स्पर्शन अंगुलियों से न करके तलवों से करें । अंगुष्ठ एवं अंगुलियों से किये अनुमानों में भ्रम हो सकता है । जैसे जीर्ण संयोजक स्तनशोफों ( Ch. Int. Mastitis ) में इस प्रकार से अनुमित लोष्ठतलवों के द्वारा स्पर्शन करने से नहीं प्रतीत किया जा सकता । स्पर्शन यथाविधि ऊपर निदिष्ट प्रत्येक विभागों का निम्नाङ्कित क्रमानुसार करे । सर्वप्रथम ऊर्ध्व अंतः, ततः अर्ध्व बाह्य, तत्पश्चात् अधोअंतः, फिर अधोबाह्य; फिर सबके अन्तमें चूचुक तथा इसके अंतस्थित भाग की परीक्षा करे । स्पर्शन परीक्षा में स्थानिक तापक्रम की उपस्थित तत्स्थानगत व्रण-शोफ के कारण मिल सकती है । स्पर्शन-परीक्षा से लोष्ठ की उपस्थिति का निश्चय होने पर उसका वर्ण-स्थान, विस्तार, परिमाण, आकार, पृष्ठ, किनारे, गठन तथा उसका समीपवर्ती धातुओं से सम्बन्ध ( Position, Size, shape, Extension, Surface, Edges, Consistency & relation ) आदि के अनुरूप करना चाहिये ।

**स्थान**—ऊर्ध्व एवं बाह्य भाग में होने वाले कठिन उत्सेध कैंसरजन्य होते हैं । विस्तार, आकार एवं परिमाण—वह सम ( Uniform ) है या विषम ( Irregular ) ? गोलाकार या अण्डाकार ? एकदेशीय ( सीमित ) है या

१. एक देशीय ( Localised )

( क ) मृदु एवं तरंगयुक्त—क्षीरजवृद्धि ( Galactocoele ), विभिन्न सद्रवग्रन्थियाँ, शीतविद्रधि ( Cold abscess ) सद्रवग्रन्थियुद्ध ( Cyst adenoma ), कृमिज द्रवग्रन्थि ( Hydatid cyst )

( ख ) घन ( ठोस ) १. स्तन के अन्दर चलायमान—

सर्वसर ( व्यापक )? सद्रवग्रन्थि गोलाकार, एकदेशीय तथा सम प्रकार की मिलती है। सौम्य अर्बुद एकदेशीय होते हैं। घातक सर्वसर ( diffuse ) होते हैं।

**पृष्ठ**—सम है या विषम ( उबड़-खाबड़ )? ग्रन्थ्यर्बुद में समान; किन्तु कैन्सर में विषम आकार का पृष्ठ तक मिलता है।

**किनारे**—सौम्यार्बुद एवं सद्रव ग्रन्थि के किनारे सीमित ( Limited ) रहते हैं; परन्तु घातक अर्बुदों के किनारे ( अनियमित असीम ) ( Irregular and ill defined ) होते हैं। जीर्ण-संयोजक-स्तनशोफ ( Ch. Int. mastitis ) में किनारों के अनियमित होते हुए भी यह प्रारम्भिक अवस्थामें घातकस्वरूप का नहीं होता है।

**गठन**—कठिन, मृदु या द्रव्युक्त है ( सद्रव ) अशम कैन्सर अतिशय कठिन होते हैं। सद्रव ग्रन्थियाँ द्रव्युक्त होती हैं तथा स्पर्श करने से मृदु प्रतीत होती हैं। गन्ध्यर्बुद मृदु एवं कठिन दोनों प्रकार का स्थानानुसार हो सकते हैं। विद्रधि मृदु होती है और उसमें तरंग प्रतीति मिलेगी।

सौत्र ग्रन्थ्यर्बुद ( Fibro adenoma ), दुग्धनलिकागत अंकुरार्बुद ( Duct papilloma )  
२. दूरेस्तन के साथ चलायमान—  
जीर्ण स्तन-शोफ नलिकागत कैन्सर मांसार्बुद अशम कैन्सर ( अवस्थानुसार समीपवर्ती धातुओं में संसक्त होकर क्रमशः चलायमान होते हैं )

२. सर्वसर उत्सेध ( Diffuse Swelling )

(क) स्तन कोप ( Milk engorgement )

(ख) तीव्र स्तनशोफ; ( Acute mastitis )

(ग) स्तनकालीन कैन्सर ( Lactation caucer )

(घ) विद्रधियाँ

(ङ) अतिवृद्धि परिपुष्टि।

(च) सर्वसर जीर्ण संयोजकस्तनशोफ ( Diffuse. chronic Int. Mastitis )

(छ) स्तनक्षय ( T. B. )

**सम्बन्ध**—लोष्ठ को हाथ से पकड़कर उरःच्छापेशियों ( Pectoral Muscles ) के ऊपर हिलाने से सम्बन्ध का निश्चय होता है। कैन्सर के कारण उत्पन्न लोष्ठ उरःच्छापेशियों की कलाओं ( Fascia ) से सम्बन्धित होते हैं फलतः चलायमान नहीं होते। सौम्य अर्बुद इस प्रकार से हिलाये जाने पर चल प्रतीत होते हैं। लोष्ठ का चर्म के साथ सम्बन्ध है या नहीं? इसके निर्णय के लिये लोष्ठ के ऊपर केचर्म को चुटकी से उठाकर देखना चाहिये। यदि चर्म अधो स्थित लोष्ठ से सम्बन्धित है; तो चमड़े के उठाने से लोष्ठ भी ऊपर को उठेगा। ऐसी चर्म संश्लिष्ट लोष्ठ की अवस्था कैन्सर के कारण उत्पन्न लोष्ठ में पाई जा सकती है। लोष्ठ वक्ष प्राचीर ( Thoracic wall ) से सम्बन्धित है या नहीं? इसका ज्ञान लोष्ठ को वक्ष-प्राचीर पर हिला कर देखने से होता है। सब से अन्त में रोगी के दूसरे पार्श्वके स्तनमें, विकृति की उपस्थिति जानने के लिये स्पर्शन द्वारा परीक्षा करके देखे। विकृति चूचुक दबाकर उसमें से कोई, स्राव निकलता है या नहीं? इस बात पर ध्यान दे। तदनन्तर कक्षीय ग्रन्थियों तथा अक्षकोपरि ग्रन्थियों का उनकी वृद्धि के लिये स्पर्शन करे।

**विशेष परीक्षाएँ**—(१) रक्त—सकल सापेक्ष श्वेतकायाणु गणन के लिये।

(२) अणुवीक्षण यंत्र द्वारा विकृत स्थान की धातुओं तथा स्रावों की परीक्षा ( Biopsy )

(३) क्षकिरण-चित्रण अस्थि तथा फुफ्फुसों का।

(४) स्तन में उत्पन्न होनेवाले कैन्सरों से निम्नाङ्कित स्थानों द्विर्बुद ( Secondary deposits

१. रोगी को विकृत पार्श्व हाथ कमर पर रखने को कहे। लोष्ठ को प्रथम पेशी, सूत्रों की दिशा में हिलावे। पश्चात् उसे समकोण ९०% की दिशा में हिलावे। पश्चात् रोगी को हाथ को खूब जोर से कमर पर दबाने को कहे। ऐसा करने पर उरःच्छापेशी कड़ी हो जायगी। पुनः लोष्ठ को पूर्वोक्त विधि से हिला कर देखे। लोष्ठ के उरःच्छापेशी या कला से संलग्न होने पर किसी भी दिशा में नहीं हिलाया जा सकेगा।

२.—विकीर्णन, अर्ध्यर्बुदन या अस्थ्यर्बुदन या द्विर्बुदन ( Dissemination, Metastasis or secondary deposits ) घातकार्बुदों में चार प्रकार से सम्भव है।

१—सातत्य ( Continuity ), इस विधि से ऊपरी त्वचा, उरःक्षर पेशियाँ, वक्ष प्राचीर, अस्थियों, बाह्य फुफ्फुसावृत्ति तथा उदरावृत्ति में

( १७० )

or Metastasis ) उत्पन्न होते हैं । फलतः इन अंगों की परीक्षा इस ज्ञान के लिये विशेष ध्यान से करनी चाहिये ।

- (१) फुफुस २. अस्थि (कशेरुक) पशुका उर्वस्थि प्रभाडस्थि आदि । ३. यकृत ४. बीजकोष ( Ovary ) ५. अन्य समीपवर्ती लसीका ग्रन्थियाँ ।

द्विरबुद्धों की उत्पत्ति हो सकती है ।

२—सान्निध्य ( Contiguity ), इस विधि से कैंसर के सम्पर्क में आनेवाले अन्यत्र का चर्म, हृदयावृत्ति, अतः फुफुसावृत्ति तथा उदर आदि द्विरबुद्धों से प्रभावित होता है ।

३—दोनों पार्श्वों की लसीका ग्रन्थियाँ—अक्षकोपरि, उभय फुफुस मध्यगत तथा कक्ष की लसीका वाहनियों द्वारा प्रभावित होती हैं और उनमें द्विरबुद्धों की उत्पत्ति होती है ।

४—रक्तवह स्रोत से—अस्थि, यकृत फुफुस प्रभृति अंगों में द्विरबुद्धों की उत्पत्ति होती है ।

## त्रयोदश योजना

### ग्रीवा के उत्सेध एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार

( Swellings of the Neck : Special feature )

आधार

इतिहास—

वर्त्तमान् दशा—अवधि

कैसे पता लगा ? स्वयं या दूसरे से ।

कोई उत्पादक हेतु, उदाहरणार्थ—अभिघात, ब्रणशोथ, चिन्ता आदि ।

पीड़ा—उपस्थित या अनुपस्थित ? यदि उपस्थित तो उत्सेध के पूर्व से या उत्सेध के अनन्तर ? आत्मलिङ्ग एवं स्थान ।

बढ़ने की गति या परिमाण में परिवर्तन, क्षयवृद्धि ( घटाव-बढ़ाव Fluctuation in size ) प्रगति तथा विकास ( Progress & Development ) विशेषतः उसके प्रसार ( Extension ) में, यदि रहे ।

निगलने, श्वास लेने, बोलने या देखने में कोई बाधा सहगामी सार्वदैहिक विकार ( Associated General disturbances ) जैसे ज्वर, भारक्षय, घबड़ाहट या चिड़चिड़ापन प्रभृति ।

## पूर्ववृत्त—

कोई सार्वदैहिक विकार—उदाहरणार्थज्वर, दुःस्वास्थ्य, रक्ताल्पता ( पाण्डु ), कास अपचन आदि ।

कोई स्थानिक विकार, जैसे मुखपाक, गले का विकार ( Sorethroat ), अन्य प्रकार मुख एवं नासिका सम्बन्धी कोई वृत्त, अन्य कोई विकार स्थानिक पूति केन्द्र ( Local focus ), तत्सदृश कोई अन्य पूर्ववृत्ती उत्सेध आदि !

## कुलवृत्त—

क्षय, पिरङ्ग, आघात प्रभृति । तत्सदृश उत्सेधों की पूर्व उपस्थिति ।

## स्थानिक परीक्षा—

सार्वदैहिक—मुखावृत्ति, रक्ताल्पता ( Anaemia ), दुःस्वास्थ्य ( Cachexia ), वलक्षय ( Wasting ) ताप, नाड़ी, वक्ष, उदर एवं रक्त परीक्षा आदि ।

## स्थानिक—

## दर्शन—स्थान

- १—मध्यरेखा ( Midline ), हन्वथः त्रिकोण ( Submental Triangle ) के साथ ।
- २—पूर्व त्रिकोण ( Anterior Triangle ) तथा उसकी सीमायें ( Boundries )
  - (क) अर्ध्व हन्वाधः त्रिकोण ( Sub-maxillary Triangle )
  - (ख) मातृका त्रिकोण ( Carotid Triangle )
  - (ग) पेशीय त्रिकोण ( Muscular Triangle )
- ३—पश्चात् त्रिकोण ( Posterior Triangle ) तथा उसकी सीमायें ( Boundries )
  - (क) अर्ध्व अनुशीर्ष त्रिकोण ( Upperoccipital  $\Delta$  )

(ख) अधो अक्षकोपरि त्रिकोण ( Lower supra-Clavicular Triangle )

उत्सेध—परिमाण एवं आकार; एक या अनेक ( Single or multiple ) उत्सेध के ऊपर के चर्म की दशा; प्रभावित या नहीं ( Involved or not ) यदि हो तो उत्सेध का भाग बनता है या नहीं ? लालिमा शिरा-जाल ( विस्फारित रक्तवाहिनियाँ Distended vessels ) सूजन ( Puckering ) स्पन्दन—(Pulsation) उपस्थित है या नहीं ।

निगलने की क्रिया या जिह्वा को बाहर निकालने में उसकी चलायमानता ।

ग्रीवाकी गति ( चलाने Movement ) में उसके कारण कोई बाधा ।

पारदर्शकता—( Trans lucency )

स्पर्शन—उष्मा ( उष्णता Heat ) तथा पीड़ना-क्षमता ( Tenderness ) एक या अनेक ।

उत्तान या गभीर ( Superficial or deep )

स्पंदन—संवाहित अथवा आकुंचन विस्फार युक्त ( Transmitted or Expansile )

१—गठन—सभीभागः अवपीड्यता ( पीडन की योग्यता ) ( Compressibility ) यदि है तो सस्वन या निःस्वन ( गुड़ागुड़ाहट के साथ या बिना ? ( With or Without Gurgling ) ।

२—पृष्ठ ( Surface ) सम्पूर्ण तथा विभिन्न भागों का ।

३—किनारे—सुनिश्चित या अनिश्चित ( Well defined or ill defined ) ।

४—समीपस्थ धातुओं के साथ सम्बन्धः ( Relation with surrounding structures ) ।

( क ) त्वचा—स्वतंत्र या संसक्त ( Free or

Adherent) ? तनाव युक्त ( Streching )  
या भरण युक्त ? ( Infiltrating ), प्रभावित या  
नहीं ? प्रभाव—प्राथमिक या औपद्रविक ? (Involve-  
ment primary or secondary )

( ख ) पेशी से सम्बन्ध ( Attachment ) या भरण  
( Infiltration ) ? पेशी के भीतर  
( Intramuscular )

( ग ) रक्तवाहिनियाँ—स्थानान्तरण ( Displacement )  
या संसक्त ( Incorporation )

( घ ) वातनाडियाँ—प्रभावित या नहीं ।

( ङ ) अन्य गहराई की रचनायें—जैसे स्वरयंत्र (Larynx)  
( Trachea ) तथा अन्ननलिका ( oesopha-  
gus) का स्थानान्तरण या भरण ( Displaceme-  
not or Infiltration )

( च ) चलत्व तथा स्थिरत्व ( स्थैर्य ) ( Mobility or  
Fixation ) कोटि एवं दिशा ( Degree and  
Direction )

अंगुलिताडन -- वृत्तक उत्सेध सतत बना हो तो इस परीक्षा  
विधि का महत्त्व है, अन्यथा नहीं ।

श्रवण—नर्मरध्वनि ( Bruit ) जैसे धमनी विस्फार, रक्तवह  
दुर्बुद ( vascular Tumours ) आदि ।

विकार के प्रसार का प्रमाणः निम्नलिखित प्रकारों से धातुओं  
के सातत्य से (Continuity of the tissues)  
स्थानिक भरण ।

धातुओं के पारस्परिक सान्निध्य ( Contiguity ) से ।

लसीका वाहिनियों से ( Lymphatics )

रक्त-वह-स्रोत से ( Blood stream )

विशेष परीक्षाएँ—

विकार के प्राथमिक या आदि केन्द्र का पता लगाना,  
एतदर्थ अंतःदर्शकयंत्रों से दर्शन ( Endo-scropy ),

क्षिण चित्रण-विधियों के अनुसार ( Accordiny  
to indication ) वक्ष तथा उदर के ।

रक्त परीक्षा—उपसर्ग के प्रमाणों तथा रक्त के रोगों के निरा-  
करण के लिये रक्त तथा रक्त वारि या लसीका परीक्षा  
( Serological test ) ।

( B.M.R. )—यदि अणुका ग्रंथि के उत्सेध हों। वैका-  
रिक तथा तृणान्वीय शोधों के लिये स्थानिक धातु की  
अणुवीक्षणत्मक परीक्षा ( Biopsy )

## ग्रीवागत उत्सेध एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार

Sellings of the Neck: Special feature

विस्तार

वृत्त—

इस विभाग में अक्षकस्थि से लेकर हृन्वस्थि तक के ग्रीवागत उत्सेधों का  
वर्णन किया जायगा। अणुका ग्रंथि के उत्सेधों में स्थानिक तथा सार्वदैहिक  
विशेषता होने के कारण उसका विवरण एक स्वतंत्र अध्याय में आगे आयेगा।

अवधि—सर्वप्रथम रोगी से रोग की अवधि के बारे में पूछना चाहिये।  
कई रोग जन्म-जात होते हैं—जैसे ब्रंकीयल सिस्ट ( Branchial  
cyst ), जिह्वावटुका द्रवग्रन्थि ( Thyroblossal cyst ) ग्रीवा जलाबुद  
( Cystic hygroma of the neck ) तथा अक्षक द्रवग्रन्थि ( Der-  
moid cyst ) कई रोग अल्प-अवधि के तथा तीव्र स्वरूप के मिलते हैं, जैसे  
ग्रीवागत वातोत्फुल्लता ( Emphcsema of the neck ), अक्षक-शोथ  
( Cullulitis ) विद्रधि आदि। कई रोगों में अवधि लम्बी रहती है जीर्ण  
रोग—जैसे गण्डमाला ( T. B. Adenitis ), जीर्ण-शोथ या कैन्सर के  
परिणामस्वरूप होनेवाली लसीका ग्रन्थियों की वृद्धि, गलनालिका ( Pharyusk )  
स्वरयंत्र ( Larynx ) तथा अन्ननलिका ( Oesophagus ) के कैन्सर;  
धमनी विस्फार ( Aneurism ) अन्ननलिका कोष ( Diverticular  
of oesophagus ), वल्मीक रोग ( Actino mycosis ) तथा हापकिन  
का रोग प्रभृति ।

इसके बाद रोगी से पूछें कि उसे इस उभार का पता कैसे लगा। स्वयं अनुभव हुआ या किसी अन्य व्यक्ति ने बतलाया। उत्सेध यदि बहुत मोटा या बड़ा हो तो उसका पता रोगी को स्वयं या दूसरे देखनेवाले को आसानी से लग जाता है। यदि उत्सेध छोटा हो तो उसका पता रोगी को हाथ ट्योलते हुए अचानक लग जाता है। कुछ उत्सेध खाना खाते समय या उसके पश्चात् अधिक स्पष्ट दीख पड़ते हैं। जैसे लालाश्मरी (Sativery calculus) के कारण सूजन का ज्ञान भोजन करते समय रोगी को होता है।

जिह्वा अनुष्टका द्रवग्रन्थि तथा अन्ननलिका विस्फार ( Oesophagus diverticulum ) के उत्सेध का ज्ञान रोगी के बोलते समय ( जिह्वा की गति के कारण ) ऊपर नीचे हिलने से होता है। उत्सेध के उत्पन्न करनेवाले कारणों का भी पता रोगी से पूछ कर लगाना चाहिये। जैसे अभिघात, शोफ, चिन्ता प्रभृति। अभिघात के कारण धमनी विस्फार या रक्ताबुद् ( Haemotoma ) की उत्पत्ति होती है। वृद्ध के ऊपर चोट लगने से ग्रीवा की वातोत्फुल्लता मिलती है। ब्रणशोफ के परिणामस्वरूप स्वरयंत्र के शोफ, विद्रधि, अध-स्त्वक्पाक ( Cullulitis ) प्रभृति विकार हो सकते हैं।

**पीड़ा**—शोफ-जन्य सभी व्याधियों में पीड़ा का मिलना एक प्रमुख लक्षण है। सौम्य अबुद् एवं द्रवग्रन्थियों में शोथ या अपजनन होने ( Degeneration ) से पीड़ा उत्पन्न होती है। सौम्य अबुद्दों में समीपवर्ती नाडियों ( Nerves ) के दबाव के कारण भी पीड़ा उत्पन्न हो सकती है। पीड़ा की उपस्थिति होने पर वह ( पीड़ा ) सूजन दिखलाई पड़ने के पूर्व थी या पश्चात् हुई इस बात को भी रोगी से पूछ लेना चाहिये। गलनलिका एवं स्वरयंत्र के कैंसर में पीड़ा सूजन के दृश्यमान होने के पूर्व से ही पाई जाती है। अन्य अबुद्दों में पीड़ा समीपवर्ती वातनाडियों पर दबाव के कारण होती है। पीड़ा की उपस्थिति होने पर उसका आन्तर्लिंग तथा स्थान का भी रोगी से वृत्त लेना चाहिये।

क्षोफयुक्त उत्सेधों में पीड़ा जलन तथा टाकन युक्त होगी, परन्तु अन्य हेतुओं से उत्पन्न पीड़ा दबाव युक्त होगी।

**उत्सेध की वृद्धि की गति एवं परिवर्तन**—सौम्य अबुद् तथा सजल ग्रन्थियों में बढ़ने की गति अत्यन्त कम पाई जायेगी। कैंसर के कारण उत्पन्न उत्सेधों में गति अपेक्षाकृत तीव्र रहेगी, परन्तु ब्रणशोथ तथा आघात के कारण

उत्पन्न वातोत्फुल्लता में यह गति अत्यन्त शीघ्र रहेगी। कभी-कभी उत्सेधों के आकार में अवस्थानुसार परिवर्तन मिलता है। इस प्रकार का परिवर्तन उत्सेध में हुआ है या नहीं इस बात को भी रोगी से पूछना चाहिये। अन्न-नलिका कोष ( Oesophageal diverticulum ) में भोजन करने के पश्चात् उत्सेध का आकार बड़ा हो जाता है। यही दशा तुम्बी बनानेवालों में स्वरयंत्र वृद्धि ( Laryngocele ) की उपस्थिति में तुम्बी बजाने के समय पाई जाती है।

द्रव-ग्रन्थियों में विदार के पश्चात् आकार छोटा हो जाता है। सूजन की उपस्थिति से रोगी को निगलने में, बोलने में या श्वास लेने में कोई परिवर्तन हुआ हो तो उसे भी रोगी से पूछना चाहिये। स्वरयंत्र तथा गलनलिका के अबुद्दों में रोगी को श्वास लेते समय तथा खाना खाते समय पीड़ा का अनुभव होगा। जिह्वागत कैंसर के परिणामस्वरूप उत्पन्न ग्रीवाग्रन्थियों में रोगी का उच्चारण अस्पष्ट तथा भारी हो जायेगा। स्वरयंत्रगत कैंसर के परिणामस्वरूप स्वर में परिवर्तन मिलेगा। आघातजन्य ग्रीवागत, वातोत्फुल्लता में रोगी को श्वास लेने में अत्यन्त कठिनाई मालूम होगी। ग्रीवा के अन्य कारणों से उत्पन्न अबुद्दों का श्वासनलिका पर दबाव पड़ने से रोगी श्वसन में कष्ट का अनुभव करेगा।

**शारीरिक परिवर्तन**—उत्सेध के साथ-साथ यदि अन्य शारीरिक परिवर्तन हुए हों तो उनके विषय में रोगी से पूछें। जैसे ज्वर, भारक्षय, बलक्षय, चिड़चिड़ापन प्रभृति। हाँजकिन के रोग में एक विशेष प्रकार का ज्वर रोगी में मिलता है। कैंसर में दुःस्वास्थ्य तथा क्षय में बलक्षय, भारक्षय, रक्ताल्पता, प्रभृतिलक्षण मिलेंगे। अबुद्का ग्रन्थि की क्रियाधिक्य या वृद्धि में चिड़चिड़ापन, शीघ्रकोप प्रभृति वातिक लक्षण रोगी में मिलेंगे।

**पूर्ववृत्त**—रोगी की सामान्य दशा, ज्वर, दुःस्वास्थ्य, रक्तक्षय, कास, अजीर्ण, मन्दाग्नि प्रभृति के बारे में पूछना चाहिये। स्थानिक विकारों के पूर्ववृत्त में मुख, नासा, गला प्रभृति अंगों में पूर्व रोग अथवा वर्तमान उत्सेध के पूर्व उसी तरह के कोई उत्सेध की उपस्थिति हुई हो तो उसे भी रोगी से पूछ लेना चाहिये।

**पारिवारिक वृत्त**—१. क्षय का वृत्त ले। २. उसी प्रकार के उत्सेध अन्य परिवार के व्यक्तियों में हुए हैं या नहीं यह भी पूछ लेना चाहिये। माता-पिता में फिरंग का इतिहास महत्व रखता है।

**दृष्टिक परीक्षा—**

**सार्वदैहिक—**मुखावृत, दुःस्वास्थ्य, रक्त क्षय, भारक्षय, बलक्षय ज्वर, नाड़ी, श्वास तथा पचन संस्थान की विस्तृत परीक्षा करनी चाहिये। 'हाजकिन' के रोग में उदर परीक्षा से प्लीहा वृद्धि तथा औदरिक लसीका ग्रंथियों की वृद्धि की उपस्थिति मिलेगी। गरुडमाला में फुफ्फुस की परीक्षा से तत्स्थानगत दृश्य का प्रमाण मिलना संभव है। अण्डका की वृद्धि में रोगी की मुखाकृति एक विशेष प्रकार की दिखाई देती है। कैंसर के परिणाम स्वरूप रोगी में दुःस्वास्थ्य और कृशता मिलेगी।

**स्थानिक—**

**दर्शन—**सामान्य उत्सेधों की भांति ही इन की परीक्षा करे स्थान, परिमाण, आकार, ऊपर के चर्म की स्थिति, गठन एवं सम्बन्ध आदिका।

स्थान-ग्रीवा की मध्यरेखा में सब से नीचे की ओर अण्डका, उसके उपर जिह्वावटुका द्रव-ग्रंथि (Thyro Glossal cyst), आदि। यदि उत्सेध ग्रीवा की मध्य रेखा के दाहिने या बाईं ओर को हो तो वह (Branchial cyst) या ग्रीवा गत लसीका ग्रंथियों की वृद्धि के परिणाम स्वरूप अथवा मातृकाबुद् (Carotidtumour) के कारण हो सकता है।

उत्सेध ग्रीवा के किस विशेष त्रिकोण में हैं इस बात को भी देखें। हन्वाधः त्रिकोण में पाई जानेवाली सूजन बहुधा लालाशमरी के परिणामस्वरूप या तत्सम्बन्धी ग्रंथि में सूजन होने के कारण मिलती है। इसके अतिरिक्त अन्य त्रिकोणों में पाई जानेवाली ग्रंथियों की सूजन क्षय या कैंसर के परिणामस्वरूप मिलती है।

ग्रीवा के पार्श्व भाग में पाये जानेवाले उत्सेधों का उरः कर्णमूलिका पेशी के साथ सम्बन्ध को भी देखना आवश्यक होता है। ब्रांकिजल सिस्ट (Bran-

ग्रीवा के त्रिकोण—(क) पूर्व त्रिकोण १—ऊर्ध्व हन्वाधःत्रिकोण (Submaxillary)

(Ant. Triangle) २—मातृका त्रिकोण (Carotid).

३—पेशीय त्रिकोण (Musular)

(ख) वश्वात् त्रिकोण (Posterior Triangle)

१—ऊर्ध्व अनुशीर्ष त्रिकोण (Upperoccipital)

२—अधोअंसकोपरि त्रिकोण

(Lowesupraclavicular)

chial cyst) इस पेशी के उत्तरीय एक तृतीयांश भाग से सम्बन्धित रहती है। मातृकाबुद् (Carotidtumour) भी इस पेशी के मध्य भाग पर जत्रुकास्थि (Hyoid Bone) की सतह पर पाया जाता है। इस पेशी के पार्श्व भाग में मिलनेवाली ग्रंथियों की सूजन सिर के पश्चात् भाग में पाये जानेवाले शोफ (Inflammatory lesions on the occipital region of the head) के कारण होती है।

इसके पश्चात् उत्सेध का आकार परिमाण तथा वह एक है या अनेक इसका भी उल्लेख करें—तदनन्तर सूजन के ऊपरी चर्म का भी निरीक्षण करें। उसमें व्रण एवं नाडीव्रण प्रभृति विकारों की उपस्थिति के लिये ध्यान से देखें। चर्म का वर्ण सिराजाल, चर्म की अवनति (Puckring), सूजन प्रभृति बातों को देख लेना चाहिए। ऊपरी चर्म का नीचे के उत्सेध के साथ संसक्ति क्षय या कैंसर के परिणाम स्वरूप होनेवाली ग्रंथियों की विशेषता है। अण्डका जात उत्सेधों में स्थानिक दबाव के कारण सिराजाल विस्तृति पाई जाती है। जिह्वावटुका-द्रव-ग्रंथि (Thyroglossal cyst) या ब्रांकिजल सिस्ट (Branchial cyst) में उपसर्ग के अनन्तर नाडीव्रणों (Sinuses) की उपस्थिति मिलती है। उत्सेध के उपर का चर्म यदि चमकीला या लालिमा युक्त हो तो तत्स्थानगत विद्रधि की आशंका रहती है। उत्सेध का सम्बन्ध धमनी से हो; या उत्सेध धमनी विस्फार (Aneurysm) के कारण हो तो उसमें स्पंदन दृश्यमान होगा। पानी के निगलने के साथ-साथ यदि उत्सेध में चलायमानता मिले तो वह अण्डका ग्रंथि से सम्बन्धित होने के कारण या अण्डका ग्रंथि की वृद्धि के कारण है ऐसा समझना चाहिए। जिह्वावटुका द्रव ग्रंथि के रोगी में जिह्वा के बाहर निकालने पर वह ऊपर की ओर उठती है। ग्रैवेयक कशेरुकों के क्षयज विद्रधियों में ग्रीवा की गति (हिलाने में रोगी असमर्थ रहता है) कम पाई जाती है। प्रकाश परीक्षा के द्वारा यदि उत्सेध शुन्ददर्शी (Translucency) मिले तो जलाबुद् (Cystic Hygroma) की संभावना रहती है।

**स्पर्शन—**इस परीक्षा के काल में परीक्षक को रोगी के पीछे खड़ा होना चाहिए। तत्पश्चात् रोगी को ग्रीवा की पेशियों को शिथिल करने को एवं हनु को वक्ष पर झुकाने को कहे। परीक्षक स्पर्शन द्वारा ग्रीवा के विभिन्न त्रिकोणों में स्थित ग्रंथियों का उनके स्थान, आकार, परिमाण गठन एवं समीपवर्ती धातुओं से सम्बन्ध प्रभृति बातों का विनिश्चय करे।

उत्सेध की उग्रस्थिति होने पर उस स्थान में त्रण शोफों के चिह्नों के ज्ञान के लिये परीक्षा करे। स्पर्शन के द्वारा उत्सेध एक है या अनेक इसका भी निर्णय करे। कभी-कभी दर्शन परीक्षा से एक दिखलाई पड़नेवाला उत्सेध स्पर्शन काल में अनेक ज्ञात होता है। उत्सेध में स्पंदन की प्रतीति होने पर वह स्पंदन संवाहित है या स्वयंजात (वैस्फारिक) (Transmitted or Expansile) है इसका निर्णय पूर्व कथित विधियों (त्रिविध अबुर्द अध्याय में वर्णित विधानों के अनुसार) से करे।

**गठन**—उत्सेध का गठन सम्पूर्ण उत्सेध में एक ही प्रकार का है या उसके विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार का गठन पाया जाता है? क्षय ग्रन्थियों में किलायी भवन (Caseation) के परिणाम स्वरूप विभिन्न प्रकार का गठन मिलना संभव है। उसी प्रकार अबुर्दका ग्रन्थि की वृद्धि में अपजनन (Degeneration) के परिणाम स्वरूप मृदु एवं कठोर दोनों प्रकार का गठन मिल सकता है।

**आकार परिवर्तन**—उत्सेध को दबाने पर उसके आकार एवं परिमाण परिवर्तन उपस्थित है या नहीं यह भी देखना चाहिये। गल नलिका कोषजन्य उभार (Diverticula of the oesophagus) दबाने पर आवाज (गुड़गुड़ाहट Gurgle) के साथ छोटे या लुप्त होते हैं। अबुर्दका के युवा त्रियों में मिलनेवाले उत्सेध श्रुतुकाल में बड़े हो जाते हैं।

**पृष्ठ एवं किनारे**—इसके बाद उत्सेध के पृष्ठ एवं किनारों के विषय में जैसे की अबुर्दों के सम्बन्ध में बतलाया गया है, नोट करना चाहिये। क्षय के कारण उत्पन्न ग्रन्थियाँ आपस में संसक्त रहती हैं; परन्तु 'हाजकिन' के रोग में पाई जानेवाली ग्रन्थियाँ पृथक् मिलती हैं। अबुर्दका ग्रन्थि के Adenoma में पृष्ठतल उबड़ खाबड़ (विषम) पाया जाता है।

**सम्बन्ध**—चर्म तथा समीपवर्ती धातुओं से सम्बन्ध एवं उसकी चलायमानता प्रभृति बातों का विनिश्चय स्पर्शन द्वारा करना चाहिए। क्षय ग्रन्थियों में शोथ के कारण ऊपरी चर्म ग्रन्थि से संसक्त मिलता है। उत्सेध का किसी पेशी के साथ सम्बन्ध होने पर उत्सेध पेशी के भीतर है या उसके आवरण के साथ सम्बद्धित है, इस बात निर्णय पेशी के आंकुचनों के द्वारा किया जा सकता है। विशेषतः उत्सेध का उरःकर्ण-मूलिका पेशी के साथ सम्बन्ध की निश्चिति करनी चाहिये। यदि सूजन इस पेशी के नीचे भाग में स्थित हो तो

पेशी को आंकुचित करके कड़ा करने से सूजन लुप्त हो जायेगी। साथ ही उस सूजन की चलायमानता में भी कमी पाई जायेगी। सूजन के पेशी के ऊपर स्थित होने पर पेशी को कड़ा करने से वह उत्सेध अधिक व्यक्त हो जायेगा और स्पष्ट दिखलाई देगा। साथ ही आंकुचित (कड़े की हुई) पेशी पर वह चलायमान भी रहेगा।

उत्सेध के कारण ग्रीवागत रक्तवाहिनियाँ अपने स्थान से हटी हैं या उस उत्सेध से संसक्त हैं इस बात को भी देखना चाहिए। मातृकाबुर्द (Carotid Tumour) मातृका धमनियों से संसक्त पाया जाता है। अबुर्दका के घातक उत्सेध, अबुर्दका ग्रन्थिकोष से संसक्त मिलते हैं। इनके परिणामस्वरूप समीपवर्ती वात नाडियों पर दबाव पड़ने से श्वरगत परिवर्तन भी पाया जाता है। अधो-हृन्वस्थि के घातकाबुर्दों में जिह्वा की वात नाडियों पर दबाव पड़ने से उस पार्श्व में जिह्वा-शैथिल्य पाया जाता है। इसकी परीक्षा रोगी को यदि जिह्वा बाहर निकालने को कहा जाय तो आसानी से हो सकती है। ऐसी अवस्था में जिह्वा को बाहर निकालने पर वह स्वस्थ पार्श्व की ओर झुक जायेगी।

इसके अनन्तर स्पर्शन परीक्षा द्वारा स्वरयंत्र (Pharynx) श्वासनलिका (Trachea), अन्ननलिका का प्राकृत स्थिति का भी ज्ञान करना चाहिये। यह देखना चाहिये कि वे अपने स्वाभाविक स्थान पर हैं या स्थानभ्रष्ट हुये हैं।

इसके बाद उत्सेध की चलायमानता एवं स्थिरता का की पता लगावें। यदि चलायमान हो तो उसकी कोटि (Degree) एवं दिशा (Direction) का ज्ञान करें।

**अंगुलिताडन**—ग्रीवागत उत्सेधों में इस परीक्षा का कोई विशेष महत्व नहीं है। कभी कभी उत्सेधों का वक् के साथ सम्बन्ध निश्चित करने के लिये इतनी परीक्षा का व्यवहार करते हैं। इसके द्वारा उत्सेध वक् गुहागत विकारों के कारण है या उससे अलग है इस बात का निश्चित पता लग सकता है। स्वरयंत्र कोष (Diverticulum Larynx) या अन्न नलिका कोष (Diverticulum of oesophagus) में अंगुलि ताडन से अपेक्षाकृत निनादित मिलेंगे।

**श्वरण-परीक्षा**—उत्सेध के धमनी विस्फार के परिणाम स्वरूप होने पर या उत्सेध का किसी बड़ी धमनी के साथ सम्बन्ध होने पर धमनी स्पन्दन इस

परीक्षा के द्वारा सुना जा सकता है। उत्सेध में रक्तास्नाधिक्य के कारण मर्मर-ध्वनि सुनाई पड़ेगी।

उत्सेध के प्रसार का प्रकार निम्नलिखित भागों से होता है। फलतः इसका भी निर्णय कर लेना चाहिये :—

सातत्य से ( Continuity ).

सान्निध्य से ( Contiguity ).

लसीका वाहिनियों से ( Lymphatics ).

रक्तवह स्रोतस् से ( Blood Vessels ).

( १ ) विशेष-परीक्षाएँ—मुख, गला, स्वरयंत्र, श्वासनलिका (Trachea) प्रभृति अंगों की अंतः दर्शन यंत्रों द्वारा परीक्षा करनी चाहिये।

( २ ) रक्त का सकल तथा सापेक्ष श्वेत कायाणु गणन, अवसादन गति।

( ३ ) व्रण एवं नाडी व्रणगत स्रावों की अणुवीक्षणत्मक परीक्षा करके देखना चाहिये।

( ४ ) क्ष-किरण—ग्रीवागत केशेरुकों की चित्रण द्वारा परीक्षा, श्वासनलिका (Trachea) स्वरयंत्र अन्ननलिका, फुफ्फुस आदि का क्ष-किरण चित्रण। लालाशमरी की आशंका होने पर तत्स्थान गत क्ष-किरण चित्रण।

( ५ ) उत्सेध के धातुओं की अणुवीक्षणत्मक परीक्षा।

( ६ ) मौलीय समवर्त—( Basal Metabolic rate ) गति की परीक्षा।

## ग्रीवा के उत्सेध का परिशिष्ट

### अवटुका उत्सेध

#### ( Thyroid Swellings )

यदि ग्रीवा के उत्सेध ऊर्ध्व मध्यवक्त्रास्थि स्थान ( Supra-sternal Region ) में ग्रीवा की मध्य-रेखा में स्थित हों तो इतिहास लेते समय ऊपर-निर्दिष्ट क्रम के अतिरिक्त निम्नलिखित विशेषताओं को भी ध्यान में रखे।

वर्तमान दशा—रोगी से रोग की अवधि तथा उसके हेतु भूत कारणों का ज्ञान करे। साथ ही उत्सेध की वृद्धि की प्रगति का तथा उसके परिमाण

में हुए परिवर्तनों का भी वृत्त ले। इस उत्सेध में यदि परिवर्तन हुए हों तब वे अचानक हुए या क्रमशः इस बात को भी पूछ कर नोट कर लेना चाहिये। इस प्रकार की परिवर्तनों की आशंका ग्रीवा-गत अवटुका ग्रन्थि ( Thyroid ) के उत्सेधों में रहती है। अठारह से बीस वर्ष तक की आयु की लड़कियों में इस प्रकार के उत्सेध मासिक ऋतु-स्राव के समय अधिक बढ़े हुए दिखलाई पड़ते हैं अन्य अवस्थाओं में उससे कुछ कम रहते हैं।

पीड़ा—पीड़ा के विषय में पूछते समय अवटुका के उत्सेधों में पीड़ा का मिलना तीव्र शोथ ( Thyroiditis ) के कारण हो सकता है। ऐसी दशा में शोथ के अन्य लक्षण भी उपस्थित मिलेंगे। अवटुका ग्रन्थि के जीर्ण-उत्सेधों ( Old swellings ) में पीड़ा का अचानक उत्पन्न होना उसमें उत्पन्न घातक परिवर्तनों का एक मुख्य लक्षण समझना ( Malignant changes ) चाहिये। पीड़ा का उत्सेध के परिमाण ( Size ) के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। अर्थात् उत्सेध बड़ा होने पर भी पीड़ा-रहित रह सकता है या छोटे उत्सेधों में भी पीड़ा की उपस्थिति मिल सकती है। इसके पश्चात् उत्सेध के परिणाम स्वरूप समीपवर्ती अंगों में दबाव के लक्षण उपस्थित हैं या नहीं? यह भी पूछे। श्वास नलिका के ऊपर दबाव पड़ने से सांस लेने में कठिनाई होगी। अन्न नलिका ( Oesophagus ) के ऊपर दबाव पड़ने से रोगी निगलने में कठिनाई का अनुभव करेगा। ग्रीवा की शिराओं एवं धमनियों पर दबाव पड़ने से उत्तान शिरायें अधिक व्यक्त हो जायेंगी।

इसके पश्चात् अवटुका ग्रन्थि की क्रियाधिक्य ( Increased activity of Thyroid ) से उत्पन्न होनेवाले लक्षणों के बारे में रोगी से पूछे। जैसे हृदय की धड़कन ( Palpitation ), स्वेदाधिक्य ( Perspiration ), भस्मक रोग के लक्षण ( Increased appetite ), चिड़चिड़ापन ( Irritability ) तथा मेदक्षय ( Wasting ) प्रभृति। अवटुका-क्रियाधिक्य के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न चिन्हों की उपस्थिति के बारे में भी रोगी से पूछना चाहिये। वहिर्नेत्रता ( Exophthalmos ), कम्पन ( Tremors ) आदि। साथ ही अंतः स्रावी ग्रन्थियों ( Endocrine glands ) के विकारों के सम्बन्ध में भी रोगी से पूछ कर पता लगाना चाहिये। जैसे स्त्रियों में मासिक ऋतु स्राव, मधुमेह आदि का इतिहास, उत्सेध के कारण रोगी में स्वर का परिवर्तन हुआ हो तो उसका भी पता लगाना चाहिये। अवटुका ग्रन्थि के उत्सेधों में इस प्रकार के परिवर्तन का पाया जाना उस अंग के कैंसर का द्योतक है।

पुनः रोगी से उसकी कीहुई चिकित्सा एवं चिकित्सा के परिणामों के बारे में पूछ लेना चाहिये। साथ ही विश्राम अथवा परिश्रम का कोई प्रभाव उसके लक्षणों पर पड़ता है या नहीं? यह भी पूछना आवश्यक होता है। थोड़े ही परिश्रम से लक्षणों का बढ़ जाना अक्टुका के क्रियाधिक्य में पाया जाता है।

**सार्वदैहिक परीक्षा**—इस परीक्षा में रोगी की नाडी-गति, ताप-क्रम, मुख-गत पूतिकेन्द्रों ( Focal sepsis ) की उपस्थिति, भार, प्रभृति बातों पर ध्यान देना चाहिये। सांस्थानिक परीक्षा में विशेषतः हृदय तथा रक्त वह संस्थान, श्वसन संस्थान एवं वातनाडी संस्थानों की परीक्षा करनी चाहिये।

### स्थानिक परीक्षा—

**दर्शन**—सर्वप्रथम ग्रीवा का उत्सेध अक्टुका ग्रन्थि के कारण ही है। यह निश्चित कर लेना चाहिये। इसके लिये रोगी में निगलने की क्रिया कराके देखना चाहिये। ग्रीवा की मध्यरेखा में स्थित उत्सेध यदि इस क्रिया से ऊपर की ओर जाता है तो वह निश्चित रूप से अक्टुका ग्रन्थि से ही सम्बन्धित है ऐसा समझे। पुनः उत्सेध एक देशीय है या फैला हुआ? दोनों पार्श्वों में समान है या असमान ( Symmetrical or Asymmetrical )? उसका पृष्ठ तल चिकना ( Smooth ) है या उबड़-खाबड़? उसके ऊपर चर्म प्राकृत है या अस्वाभाविक? उसके ऊपर नाडीव्रण की उपस्थिति है या नहीं? आदि बातों को ध्यानपूर्वक देखे।

अबुर्दों के कारण होनेवाले उत्सेध एक देशीय होते हैं, परन्तु शोथ के कारण उत्पन्न उत्सेध प्रसरित ( Diffused ) होते हैं। जीर्ण-शोफों के परिणामस्वरूप बननेवाले उत्सेध दो प्रकार के होते हैं जिनमें 'हाशीमायो' के रोग में उत्सेध प्रसरित होता है; परन्तु 'रीडल' के रोग में वह शोथजन्य होने पर भी एक देशीय तथा एक पार्श्वीय होता है।<sup>२</sup>

गलगण्ड ( Goitre ) में द्रव ग्रन्थि के रूप में अपचय होने ( Cystic degeneration ) में पृष्ठ तल उबड़-खाबड़ ( Uneven-विषम ) मिलता

- |   |   |
|---|---|
| १. 'हाशीमायो' का रोग<br>( अक्टुका-लसीका-शालूक )<br>( Lymph Adenoid<br>thyroiditis ) | २. 'रीडल' का रोग<br>( दावी अक्टुका शोथ )<br>( Woody thyroiditis )<br>क—युवा पुरुषों में मिलता है। |
|---|---|

है अन्यथा वह सर्वदेशीय ( Diffuse Goitre ) अवस्था में चिकना एवं समतल पाया जाता है। गलगण्ड में रक्ताधिक्य होने पर पृष्ठ-तल की रक्त-वाहिनियाँ अधिक व्यक्त हो जाती है तथा उनमें क्वचित् स्पन्दन भी पाया जाता है। मन्या-प्रमनी ( Carotid Artery ) के साथ गलगण्ड का सम्बन्ध होने पर संवाहित स्पन्दन ( Transmitted Pulsation ) मिल सकता है।

**स्पर्शन**—दर्शन द्वारा प्राप्त चिह्नों को स्पर्शन द्वारा निश्चिति की जा सकती है। इसमें उत्सेध के गठन, परिमाण, आकार, स्थान किनारे, पृष्ठ तल तथा समीपस्थ धातुओं के साथ सम्बन्ध की निश्चिति की जाती है।

समीपवर्ती धातुओं से उत्सेध के सम्बन्ध की निश्चिति बहुत अंशों में ऊपर निर्दिष्ट लक्षणों के द्वारा हो जाती है। मन्या धमनियों के साथ उसका सम्बन्ध तथा उरो-गुहा के भीतर उसके प्रसार की उपस्थिति के लिये विशेष रूप से देखना चाहिये। इसके पश्चात् ग्रीवा की लसीका ग्रन्थियों की परीक्षा करनी चाहिये।

**अंगुलि ताडन**—इस परीक्षा के द्वारा विशेषतः उत्सेध उरो-गुहा के अंदर फैला हुआ है या नहीं? इस बात का विनिश्चय किया जाता है।

**श्रवण**—इस का महत्त्व स्पंदन युक्त अक्टुका ग्रन्थि के उत्सेधों में रहता है। जिनमें इस परीक्षा के द्वारा मर्मर ध्वनि सुनी जा सकती है।

क—स्त्रियों में ४०-६० वर्ष की

आयु तक पाया जाता है।

ख—अक्टुका कार्य-हीनता के

लक्षणों की प्रवृत्ति रहती है।

ग—सम्पूर्ण अक्टुका ग्रन्थि फैला

हुआ रहता है।

घ—दबाव के लक्षणों का अभाव

रहता है।

ङ—स्पर्श में लचकीला तथा मृदु

(Soft Elastic) रहता है।

च—'रेडियन्' द्वारा चिकित्सा

साध्य है।

ख—नहीं।

ग—यह एक पार्श्वीय और एक

देशीय (सीमित) रहता है।

घ—दबाव के भयंकर लक्षण (Gra-

ve) पाये जाते हैं।

ङ—स्पर्श में काष्ठवत् कड़ा होता है।

च—यह शल्य कर्म साध्य है।

## विशेष परीक्षण—

१. मौलीय समवर्त्तगति की परीक्षा ( B. M. R. )
२. रक्त का सकल एवं सापेक्ष श्वेतकायाणुगणन ।  
श्रवसादन गति, कान कसौटी ।
३. स्वरान्तः दर्शक यंत्र (Laryngoscope) श्वसनिकान्तः  
दर्शक यंत्र ( Bronchoscope ) के द्वारा परीक्षा ।
४. द-किरण परीक्षा ।  
( क ) अस्थियों की द्विबुंदों की उपस्थिति के लिये ।  
( ख ) फुफ्फुस की, अंतःवक्षीयगलगण्ड ( Intra-  
thoracic Goitre ) के लिये । तथा हृदय  
की दशा देखने के लिये ।  
( ग ) श्वास नलिका ( Trachea ) की दबाव की  
मात्रा एवं उसकी उपस्थिति के ज्ञान के लिये ।  
( घ ) अन्ननलिका की 'बेरियम' द्वारा दबाव की उप-  
स्थिति की जानकारी के लिये ।

## विशेष चिन्ह —

१. Von Graefe का चिन्ह—रोगी को नीचे को देखने को कहने पर उसके आंख  
का उर्ध्व पलक ऊपर ही रह जाता है ।
२. भोएवियस का चिन्ह—रोगी नासा की सिधाई में पकड़ी हुई वस्तु को देखने  
के लिये आंखों को मध्य बिंदु की दिशा में लाने में असमर्थ होता है ।
३. Joffroy का चिन्ह—रोगी को गर्दन नीचे झुकाकर ऊपर देखने को कहने पर  
माथे पर सलवटों का अभाव ।

## चतुर्दश योजना

## जिह्वागत रोग एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार

## आधार

## वृत्त—

- वर्त्तमान् दशा—अवधि प्रादुर्भाव (Onset) : दन्तक्षोभ आदि अर्बुद  
या व्रण ।  
पीड़ा—खाना खाते समय संवहन या स्थिति ( कान  
आदि ) ।  
साव—दुर्गन्धित ( Foetid ) रक्त ।  
जिह्वा—गति या चलायमानता । उच्चारण सम्बन्धी  
दोष ।  
पूर्ववृत्त—मद्य, फिरंग, धूम्रपान । तथा कृत्रिम दंत ।

## शारीरिक परीक्षा—

- सार्वदैहिक—फिरङ्ग, क्षय, रक्ताल्पता, अग्रिमांथ ।  
स्थानिक दर्शन—श्लेष्मलकला की सर्व साधारण दशा ।  
व्रण—संख्या, परिमाण, आकार, स्थिति । वृद्धि की मात्रा,  
स्थानिक धातुनाश की मात्रा प्रमृति ।  
अर्बुद—स्थिति, रूप ( Appearance ) जिह्वा की गति  
शीलता ।  
दन्तों की ( विशेषतः प्रभावित भाग के समीप वालों  
की ) दशा ।  
'स्पेकुला' की सहायता से मुख विवर की परीक्षा ।

कान में कोई पीड़ा ?  
उच्चारण—दोष ।  
श्वास की दुर्गन्ध ।

स्पर्शन—व्रण पृष्ठ—( Surface )  
किनारे—( edges )  
आधार ( Base )  
साव ( Discharge )

अबुर्द—गठन ।

पृष्ठ

किनारे

सम्बन्ध

फैलाव—( Extention ) का प्रमाण—

## विविध जिह्वागत रोग एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार

Diseases of Tongue : Special feature.

### विस्तार

वृत्त—

**वर्तमानदशा**—अवधि जिह्वागत रोगों में रोगी से पूछ कर रोग की पूरी अवधि या कालमर्यादा का पता लगा लेना चाहिये । क्योंकि इसी के ऊपर व्याधि की सहजता, तीव्रता एवं जीर्णता ( Acuteness & chronicity ) प्रभृति बातें निर्भर करती है । जन्म जात या सहज रोग—रसना संग ( Tonguetie ) द्विजिह्वता ( Tongue cleft ) जिह्वातिपुष्टि ( Macroglossia ) इनमें रोग की अवधि जन्मकाल से ही पाई जाती है । तीव्ररोगों में जिह्वा कटक ( Sup. Acute glossitis ) जिह्वागत विद्रधि ( Sub-lingual Abscess ) जिह्वा की सत्रणता प्रभृति रोगों में इतिहास कम दिनों का मिलता है । जीर्ण रोगों में जीर्ण जिह्वाकटक ( Chronic superficial glossitis ) जिह्वा का क्षय या फिरंग, जिह्वागत विविध अबुर्द अलासग्रन्थि ( Ranula ) तथा उपजिह्विका ( Ranula ) इनमें रोग के वृत्त का समय दीर्घ मिलता है ।

**प्रारंभया समुत्पत्ति**—रोग अचानक प्रारम्भ हुआ या क्रमिक ( धीरे-धीरे ) ? श्रौषधियों के कारण मुख पाक ( जिसमें पारद मुख है ) विविध विद्रधियाँ, अभिघात तथा आगन्तुक व्रण ( Traumatic ) प्रभृति रोगों में रोग के एकाएक उत्पन्न होने का वृत्त मिलता है । क्रमिक समुत्पत्तिवाले जिह्वा के किसी स्थान पर बराबर क्षोभ, चोट या अर्दन ( Irritation ) होने से रोग की उत्पत्ति ( जैसे कृमिदन्तों Carious teeth के कारण ) ऐसे रोगों का इतिहास लम्बे अर्धों का पाया जाता है । इसी प्रकार के कई अन्य रोग अबुर्द, फिरंग तथा कैन्सर आदि मिलते हैं जिनमें विकार का क्रमशः प्रादुर्भाव होने का वृत्त मिलता है ।

**पीड़ा**—रोगी में जिह्वा के व्रणों की उपस्थिति में उसमें पीड़ा है या नहीं ? इस बात को पूछें । सभी प्रकार के व्रणों में ( फिरंगज व्रणों को छोड़कर ) पीड़ा व्रणस्थान पर होती है । पीड़ा स्थानिक है या वह किसी विशेष दिशा में संवाहित होती है ? कैन्सर जन्य व्रणों में पीड़ा रोगी के उस पार्श्व के कान में संवाहित ( Radiated ) होती है । जिह्वा में होनेवाले साधारण अबुर्द, द्रवग्रन्थि ( Cyst ), फिरंगज गोंदोबुर्द ( Gumma ) तथा अंकुराबुर्द एवं फिरंगज व्रणों में पीड़ा नहीं होती । सभी व्रणों में भोजन में अम्ल या मिर्च एवं मसालेदार भोजनों के सेवन से रोगी को पीड़ा होती है । जीर्ण जिह्वाकटक ( Ch. Sup. Glossitis ) में व्रण के उत्पत्ति के पूर्व भी पीड़ा अत्यधिक होती है ।

**साव**—तीव्र मुख पाक या सर्वसर ( Acute Stomatilis ) के कारण मुख से लालासाव होता है ! लालासाव की अधिकता पारद जन्य मुखपाक एवं जिह्वाशोथ में पाई जाती है । कैन्सर तथा क्षयज व्रणों से रक्त मिश्रित साव होता है । बदबूदार साव ( दुर्गन्धयुक्त ) का होना कैन्सर के व्रणों की विशेषता है ।

**जिह्वा की चलायमानता तथा उच्चारण**—जिह्वा स्थानिक विकृति के परिणामस्वरूप यदि समीपवर्ती अवयवों से संसक्त हो जाय तो वह पूर्णतया चलायमान या गति-शील नहीं रहती । परिणामस्वरूप रोगी लड़खड़ाते हुए बोलता है । यदि रोगी में यह लड़खड़ापन जन्म जात है तो उसका कारण सहज रसना संग ( Congenital Tongue Tie ) हो सकता है । जिह्वा के किनारों पर मिलनेवाले व्रणों की उपस्थिति में भी पीड़ा के कारण बोलने में

रोगी असमर्थ रहता है ( लड़खड़ा कर बोलता है ), परन्तु इस अवस्था में जिह्वा की समीपवर्ती अवयवों से संसक्ति नहीं रहती है। कैंसर जन्य व्रणों में जिह्वा के समीपवर्ती अवयवों से संसक्त होने के कारण रोगी के बोलने में यह लड़खड़ाहट मिलती है। फिरंगज व्रणों में जिह्वा गति-शील रहती ( **Freely movable** ) है। जीर्ण जिह्वा कंटक ( **Chronic Superficial glossitis** ) में रोगी का उच्चारण विकृत होकर और भारी एवं अस्पष्ट हो जाता है। कैंसर में जिह्वा की गति नहीं हो पाती, साथ ही रोगी को निगलने में भी बाधा ( कठिनाई ) होती है।

**पूर्ववृत्त**—रोगी के मद्य, तम्बाकू सेवन सम्बन्धी वृत्तों को लेना चाहिये। इनके अति सेवन से विभिन्न प्रकार के मुखपाक तथा कैंसर प्रभृति रोगों की उत्पत्ति होती है। रोगी से क्षय तथा फिरंग आदि के बारे में भी पूछ लेना आवश्यक होता है।

इसी प्रकार जीर्ण ज्वरों में ( मंथरक, काल ज्वर आदि ) कर्दम-मुखपाक ( **Gangrenous Stomatitis** ) की संभावना रहती है। इसलिए इस प्रकार के वृत्तों पर भी ध्यान रखना चाहिये। अंत में रोगी के किसी विशेष औषधि का सेवन ( विशेषतः पारद के योग ) का वृत्त लेकर उसका भी उल्लेख करना चाहिये।

#### शारीरिक परीक्षा—

**सार्वदैहिक**—फिरंग, क्षय, प्रभृति रोगों की अन्य अंगों में उपस्थिति के लिए परीक्षा कर लेनी चाहिये। इसी तरह जीर्ण विबंध या अजीर्ण का भी वृत्त मिले तो उसका भी उल्लेख करना चाहिये। तदनन्तर नेत्र, नाडी, श्वास, ज्वर, रक्तक्षय प्रभृति बातों पर ध्यान देना चाहिये। इसी प्रकार। जीवितिकि “वी” के कमी के चिन्हों की उपस्थिति का भी विचार कर लेना चाहिये।

स्थानिक स्थानिक परीक्षा करते समय रोगी को मुख को विस्तृत रूप से खोलने के लिए कहना चाहिये। जिह्वा के रोगों का उल्लेख ऊपर में दो विभागों में स्वतंत्रतया १. व्रण या २. अर्बुद में किया गया है। इसी आधार पर स्थानिक परीक्षाओं के सम्बन्ध में भी ( दर्शन स्पर्शन प्रभृति विधियों के साथ नीचे में विवेचन किया जायगा।

सर्व प्रथम जिह्वा की श्लेष्मलफला का दर्शन उसमें उपस्थित व्रण, अंकुर ( **Papillae** ), विदार ( **Fissures** ), शोफ ( **Inflammation** ),

उत्सेध ( **Swelling** ), प्रभृति बातों के लिए करे। जीर्ण जिह्वा कंटक ( **Chronic Snperficial Glossitis** ) में समीपवर्ती अंकुर उभरे हुए तथा रक्तवर्ण के मिलेंगे। और जिह्वा के सम्पूर्ण किनारे रक्तवर्ण के दिखाई देंगे। फिरंग में जिह्वा लाल चमकीली ( **Glazed** ) दीखेगी। जिह्वा का परिमाण यदि प्राकृत से बड़ा मिले तो उसे जिह्वा के लसोकाबुद या जिह्वातिपुष्टि ( **Macro Glossia** ) रोग का सूचक समझे।

व्रण की उपस्थिति होने पर उनकी संख्या, आकार, परिमाण, ( **Situation** ), किनारे ( व्रणान्त ) तथा स्राव प्रभृति के बारे में वर्णन करना चाहिये। संख्या में अधिक मिलने वाले व्रण क्षय, परीसर्प ( **Herpes** ), जीर्ण जिह्वा कंटक या अजीर्ण जन्य ( **Dyspeptic** ) होते हैं। संख्या में एक होने वाले व्रणों में कैंसर, दन्तज व्रण ( **Dental ulcers** ) इ० [ जिन व्रणों में **Whooping Caugh** ( कुकास ) हुआ हो उनमें व्रण संयोजनिका ( **Frenulum** ) के ऊपर पाया जाता है। यदि इस प्रकार के व्रण कारणभूत दाँत के निकालने के पश्चात् एक पक्ष के भीतर नहीं भर पाते ( रोपण नहीं होता ) तो उस अवस्था में उन्हें श्लेष्मलकलाबुद ( **Epithelioma** ) जन्य होनेवाला व्रण समझना चाहिये ]। तथा फिरंग गोंदोबुद के परिणाम स्वरूप होते हैं।

**आकार एवं किनारे**—शोथजन्य व्रण आकार में गोल उथले ( **Shallow** ) होते हैं और उनके किनारे लालरंग के होते हैं। गोंदाबुद जन्य व्रण उथले तथा फैलने की प्रवृत्ति वाले होते हैं तथा उनके किनारे अनियमित आकार होते हैं। क्षयज व्रण अनियमित आकार के, उनके किनारे पतले, अन्दर की धँसे हुए और अधिक गहरे होते हैं। इनका पृष्ठ श्वेत अंकुरों से भरा हुआ रहता है। दन्तजव्रण ( **Dental ulcers** ) छोटे, उत्तान ( **Superficial** ) तथा कारण भूत दाँत से सम्बन्धित भाग पर पाये जाते हैं। फिरंग की द्वितीयावस्था में होने वाले जिह्वा के व्रण संख्या में अधिक, छोटे, गोल तीक्ष्ण कटे हुए किनारेवाले ( **Sharply Cut Margin** ) होते हैं और इनका पृष्ठ भरे रंग में का होता है। कैंसरजन्य व्रण अनियमित ( **Irreglnar** ), गहरे, उठे हुए किनारेवाले ( **Raised Margin** ) होते हैं और इनका पृष्ठ गाढ़े पूय से ( **Slough** ) से भरा हुआ रहता है।

**स्थान**—फिरंगजव्रण जिह्वा के अग्रपर पार्श्व ( किनारे ) पर मिलते हैं। क्षयजव्रण जिह्वा के पूर्वाद्ध ( **Anterior half** ) में तथा ( अग्र तथा किनारे

पर) पाये जाते हैं। कैंसर के व्रण जिह्वा के किनारे पर पूर्व २/३ तथा पश्चात् १/३ के संयोग स्थल ( Junction of Anterior २/३ & Posterior १/३ ) पर पाये जाते हैं। गोंदोबुर्द अन्य उत्पन्न व्रण जिह्वा के पश्चात् १/३ भाग में मध्यरेखा में ( Posterior one third in the central line ) में पाये जाते हैं। अजीर्ण अन्य व्रण जिह्वा के अग्र तथा किनारों पर ऊपरी भाग में पाये जाते हैं। ( At the tip and margins on dorsum of Tongue )

**व्रण का स्थानिक धातु नाश के साथ सम्बन्ध**—फिरंगजव्रणों में व्रण के आकार के अनुसार स्थानिक धातुनाश पाया जाता है। परन्तु कैंसर एवं क्षय अन्य व्रणों में आकार से अधिकमात्रा में स्थानिक धातुनाश मिमता है।

**उत्सेध**—जिह्वा में उत्सेध मिलने पर दर्शन-परीक्षा काल में उसका स्थान, रूप ( Appearance ), परिमाण, पृष्ठ, किनारे तथा जिह्वा की गति प्रभृति बातों को देखना चाहिये। जिह्वा के निचले भाग में विभिन्न प्रकार की द्रव ग्रन्थियाँ ( Cyst ) पाई जाती हैं। जिह्वा में सिराजाताबुर्द ( Haemangioma ) बहुत ही कम मिलता है। परन्तु उसकी उपस्थिति होने पर वह नीला रंग लिए हुए रहता है। गोंदोबुर्द प्रायः जिह्वा के पश्चात् भाग में ( ऊपर की ओर ) मध्यरेखा में मिलते हैं। अधःस्तक् द्रव ग्रन्थि ( Dermoid Cyst ) जिह्वा के निचले भाग में मध्यरेखा में मिलती है। अंकुराबुर्द जिह्वा के ऊपरी भाग में उत्पन्न होते हैं। अवटुकाग्रन्थि कभी-कभी जिह्वा के पार्श्व भाग में जिह्वा छिद्र ( Foramen Caecum ) के पास में पाई जाती है। कैंसर के अबुर्द जिह्वा में ऊपर की ओर किनारे की तरफ पाये जाते हैं और इनका प्रारम्भ एक पार्श्वीय ही होता है।

**रूप**—अलासग्रन्थि ( Ranula ) नीलाभ ( Bluish Tinge ) और पारदर्शक दिखलाई पड़ती है। अंकुराबुर्द ( Papilloma ) अंकुर वत दिखलाई ( Horny ) पड़ते हैं।

**जिह्वा की गति**—फिरंग जात अबुर्दों में जिह्वा की चलायमानता के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु अन्य प्रकार के अबुर्दों एवं क्षय में गति में बाधा पड़ती है जिसके परिणामस्वरूप शब्द में लड़खड़ापन, भारीपन, या अस्पष्टता पाई जाती है।

इसके पश्चात् मुखविवर का सम्पूर्णतया दर्शन करते हुए दाँतों की स्थिति एवं दाँतों का व्रण-स्थान के साथ कोई सम्बन्ध है या नहीं? इस बात को देख लेना चाहिये। पुनः जिह्वावनायक ( Spleula ) द्वारा जिह्वा को दबाकर कपोल के भीतरी भाग की दशा देखे। जिह्वा में कैंसर होने से उसके सम्पर्क में आनेवाले कपोल के अंतर्भाग पर कैंसर की उत्पत्ति हो सकती है जिसे चुम्बन कैंसर ( Kiss Cancer ) कहते हैं।

इसके पश्चात् रोगी में कोई भाषण या उच्चारण सम्बन्धी दोष अथवा उसके साँस में दुर्गन्ध की उपस्थिति है या नहीं? इस बात को भी देखे। उच्चारण सम्बन्धी दोष कैंसर एवं क्षय में मिलता है तथा कैंसर तथा फिरंगज जिह्वा-कंटक में साँस से बदबू आती है।

इसके अनन्तर कान का निरीक्षण करे। देखे कि कान में कोई रूई का टुकड़ा तो नहीं पड़ा है। 'कासिनोमा' में पीड़ा का संवहन कान में होता है। इसलिये निदानकालमें इस प्रकार की चीजों के मिलने की संभावना रहती है।

क्षय एवं कैंसर में जिह्वारोगों में स्पष्ट उच्चारण सम्बन्धी दोषों की आशंका रहती है। कैंसर तथा पूतियुक्त जिह्वाशोथ ( Septic Glossitis ) में रोगी के श्वास से दुर्गन्ध आती है।

**स्पर्शन**—जिह्वा-व्रणों में सर्वप्रथम उनके पृष्ठतल ( Surface ) का स्पर्शन आवश्यक होता है। दर्शन द्वारा किये गये परीक्षाओं का विनिश्चय स्पर्शन विधियों से करते हैं—(१) क्षय में स्वच्छ तथा लाल पृष्ठ वाले व्रण होते हैं। (२) फिरंग में पृष्ठ का स्पर्शन करने पर पीले रंग का गाढ़ा पूय निकलता है। (३) जीर्ण जिह्वाकंटक ( Ch. Superficial Glossitis ) में रक्त-वर्ण के चमकते हुए चिकने पृष्ठ ( Red Smooth Patch with glazed tongue ) वाले व्रण मिलते हैं। (४) जीर्णमाला गोलाणु-जन्य जिह्वा-शोथ ( Ch. Streptococcal Glossitis ) में रक्ताधिक्य-युक्त सीमित आकार के धब्बे ( Localised patches of hyperaemia ) व्रण-स्थान पर पाये जाते हैं। (५) कैंसर में अस्वस्थ रोहणाङ्कुर-युक्त पृष्ठ ( Unhealthy Granulating Surface ) वाले व्रण बनते हैं जिनके ऊपर दुर्गन्धयुक्त स्राव आच्छादित किये रहता है। परीक्षा करते समय इनके ऊपर घर्षण होने से रक्त निकलता है।

**ब्रणान्त या किनारे तथा समीपवर्ती धातु**—फिरंग में ब्रणों के किनारे स्वच्छ, कठिन, कटे हुए ( Clear, Punched & hard ) मिलते हैं। क्षय में ब्रणान्त मृदु तथा समीपस्थ धातुओं के ब्रणवस्तु के चिन्हों से युक्त ( With Cicatrix of surrounding tissues ) होते हैं। कैंसर में बाहर की तरफ उल्टे हुए किनारे ( Rolled out Margin ) मिलते हैं तथा समीपवर्ती धातुओं की कठिनता पाई जाती ( Induration ) है।

**आधार**—जिह्वागत फिरंगब्रणों में यह कड़ा रहता है, परन्तु समीपवर्ती धातुओं से संसक्ति ( Adhesions ) नहीं रहती। गोंदोबुँदजन्य ब्रणों में उनके आधार पर गीले चमड़े के जैसा पीलासा गाढ़ा साव पाया जाता है। क्षयज ब्रणों का आधार मृदु रहता है, साथ ही जिह्वा की पेशियों से संसक्त रहता है। कैंसर में आधार पूर्णतया भरणयुक्त ( Infiltrated ) रहता है तथा वह समीपवर्ती सम्पूर्ण धातुओं से संसक्त रहता है।

**अबुँद**—जिह्वागत अबुँदों में सर्वप्रथम स्पर्शन द्वारा इनका गठन, पृष्ठ किनारे तथा समीपवर्ती धातुओं के साथ सम्बन्ध का निश्चय करना होता है।

**गठन**—में कठिन रचना के होनेवाले अबुँद कैंसर, गोंदोबुँद ( Gumma ), अधस्त्रगबुँद ( Dermoid ) प्रभृति होते हैं। मृदु एवं लचकीले गठनवाले अंकुराबुँद, सद्ब्रणथियाँ ( Cysts ), सिराजाताबुँद ( Angioma ) प्रभृति होते हैं।

अबुँदों के पृष्ठतल पर कभी-कभी रक्तवाहिनियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। कभी-कभी उनमें ब्रण या ऊपरी अंकुरों का शोष ( Atrophy ) भी पाया जाता है। जिह्वा के नीचे पाये जानेवाले अलास ( Ranula ) नामक द्रवग्रन्थि ( Cyst ) में नीली आभा दिखलाई पड़ती है।

**किनारे**—सौम्य अबुँद, द्रवग्रन्थि आदि के किनारे स्पष्ट होते हैं और स्पर्शन द्वारा उनका सीमा-निर्धारण करना संभव है; परन्तु कैंसर में उसका समीपवर्ती धातुओं में फैलाव के कारण किनारों का विनिश्चय सम्भव नहीं हो पाता।

जिह्वागत रोगों में ब्रण या अबुँद की उपस्थिति में उनसे सम्बन्धित धातुओं की स्थिति का देख लेना आवश्यक होता है; जैसा कि ऊपर में बतलाया जा चुका है। विकृति का जिह्वा की पेशियों में प्रसार होने पर रोगी अपनी जिह्वा को मुख के बाहर निकालने में असमर्थ होगा।

इसके पश्चात् स्पर्शन विधियों से मुख के बाहर हन्वस्थि के नीचे वाले प्रदेश में लसीका-ग्रन्थियों की वृद्धि के लिये देखना चाहिये। कैंसरजन्य ब्रण या अबुँद में इन ग्रन्थियों की वृद्धि का मिलना संभव है।

जिह्वागत कैंसर में प्रसार निम्नलिखित विधियों से होता है :—

१—सातत्य से ( Continuity )—मुख के आधार और हनु आदि में।

२—सान्निध्य या सामीप्य से—( Contiguity ) जिह्वा के सम्पर्क में आनेवाले मुख-विवर के अन्य पृष्ठ, दन्त-मूल, दन्त, कपोल, तालु आदि।

३—लसीका वाहिनियों के द्वारा।

(क) अधो-हन्वस्थि समुदाय में ( Sub mental glands )

(ख) अधो उर्ध्व-हन्वस्थि समुदाय में। ( Sub maxillary glands )

(ग) उत्तान तथा गम्भीर ग्रीवा की लसीका-ग्रन्थियों में। ( Sup. & deep glands of Neck )

४—रक्त-स्रोत—इस मार्ग से जिह्वागत कैंसर का प्रसार कदापि नहीं होता।

**विशेष परीक्षाएँ—**

**रक्त**—सकल सापेक्ष श्वेतकायागुणगणन रक्तवसादन-गति वान कसौटी।

**क्षकिरण**—फुफुस की परीक्षा क्षय की उपस्थिति के चिन्हों के लिये। दन्त की स्थानिक विकृति के लिये।

**अणुवीक्षण**—विकृत स्थान की धातुओं की परीक्षा।

## शारीरिक परीक्षा—

सार्वदैहिक—मर्माभिघात ( Shock ), रक्तस्राव ( Haemorrhage ), पूर्ति ( Sepsis ), अन्य अभिघात ( Associated Injuries )

स्थानिक—तुलना के लिये दोनों पार्श्वों की परीक्षा सदैव करे। पूर्णतया स्थान को नग्न करना ( Full Exposure )

दर्शन—सूजन।

वैरूप्य ( Deformity ) अंग का छोटा होना या कोण-युक्त होना ( Shortening or angulation )

त्वक् सवर्णता—रक्त-संचय ( Echymosis ); पृष्ठ पर व्रण ( Surface wound )

भग्न अंग के हिलाने में रोगी की समर्थता—( Patients ability to move affected part )

स्पर्शन—भग्न-अंग के अस्थि के उभारों का सम्बन्ध ( Relation of the Bony points of the Region ) मापन ( Measurements ) विशेषतः अंग का छोटापन ( Shortening )

अस्वाभाविक गति।

भग्न-ध्वनि प्राप्य या नहीं। ( Obtainable or not )

उपद्रव—स्थानिक, सार्वदैहिक तथा विलम्बित ( Local, General and delayed ),

रक्तवाहिनी।

वातनाडी ( Nerves )

सन्धि ( Joints )

नीचे आशय यदि हों ( Underlying Vicera, if any )

यदि स्वयं भग्न ( Spontaneous Fracture ) हो तो निम्नलिखित प्रमाणों के लिये परीक्षा :—

## पंचदश योजना

विविध अस्थि या कारणभ्रम एवं तत्सम्बन्धी

विशेष विचार

( Fractures in General : Special Feature )

## आधार

वृत्त -

वर्तमानदशा—आयु अवधि।

हेतु—प्रत्यक्ष या परोक्षवेग ( Direct or indirect force ), प्रकृति ( Nature ) एवं तीव्रता, ( Severity ), भग्नध्वनि ( Crack or Crepitus ) श्रवणीय ( Audible ) सुनने योग्य। पीड़ा।

स्रस्ताङ्कता—स्वकर्म गुणहानि ( Loss of Function ), वैरूप्य ( Deformity ), सूजन या शोफ ( Swelling ), रक्त, संचय ( Echymosis ), अस्वाभाविक या अत्यधिक गति ( Undue or abnormal mobility ).

वृत्त—अन्य भग्न ( Other fractures ) रोग—यदि भग्न स्वयमेव हुआ हो ( Disease, when fracture considered spontaneous )

- १—अस्थि के सर्वसाधारण रोग अस्थिमंगुरता ( *Fragi-  
latus osseum* ) आदि ।
  - २—सर्वसाधारण दशायें ( *General Conditions* )  
जिनके परिणामस्वरूप अस्थिशोष ( *Atrophy of  
the Bone* ) होना सम्भव है । इसमें वातनाडियों  
के घातों का भी विचार आवश्यक है ।
  - ३—अस्थिगत स्थानिक रोग—अबुद ( *Neoplasm* ),  
ब्रणशोफ ( *Inflamation* ) आदि ।
  - ४—प्राथमिक या आदि घातक रोग विशेषतः अन्य अंगों  
के । विशेषतः स्तन का कैंसर, अबटुका, वृक्क तथा  
शीला ( *Prostate* )
- क्षिकरण—दो दिशाओं से ( *Two Views* ), सामने तथा  
पार्श्व से ( *Anterior and lateral* ) ।

## विविध अस्थिभग्न एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार

( *Fractures in General : Special Feature* )

### विस्तार

वृत्त—

आयु—भग्न का वृत्त लेते समय आयु का विचार आवश्यक होता है ।  
बाल्यावस्था में अपूर्ण भग्न, युवावस्था में पूर्ण भग्न तथा वृद्धावस्था में मजानुगत  
( *Impacted* ) भग्न मिलते हैं ।

१. शल्यतन्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में भग्न शब्द से सामान्यार्थ में ( *Fracture of  
the Bone and Dislocation of the joint* ) दोनों ही का ग्रहण हो  
जाता है । विशिष्टार्थ में पुनः भग्न के दो प्रकार बतलाये गये हैं । १. सन्धि-मुक्त  
तथा २. काण्ड-भग्न । इनमें सन्धि-मुक्त का अंग्रेजी ( *Dislocation* ) के पर्याय  
रूप में तथा काण्ड-भग्न का ( *Fracture* ) के अर्थ में ग्रहण किया जाता  
है । काण्ड-भग्न से सरल शब्द अस्थि-भग्न का बनता है फलतः ( *Fracture* )  
के अर्थ में अस्थि-भग्न का प्रस्तुत पुस्तक में प्रयोग किया गया है ।

वर्त्तमान दशा—

अवधि—भग्न होने से रोगी के अस्पताल या चिकित्सक तक पहुँचने में  
कितना समय बीता इसे रोगी से पूछना चाहिये । इस अवधि के ऊपर ही  
चिकित्सा सिद्धान्त बहुत कुछ निर्भर करता है । उदाहरणार्थ अस्थिभग्न के  
परिणामस्वरूप कई बार स्थानिक सूजन पाई जाती है । इस सूजन की उपस्थिति में  
भग्न का स्थिरीकरण ( *Immobilization* ) करने के लिये तुरन्त 'प्लास्टर'  
नहीं लगाना चाहिये । क्योंकि स्थानिक सूजन के कम होने पर 'प्लास्टर' अत्यन्त  
शिथिल ( ढीला ) हो जायेगा । फलतः स्थिरीकरण का उद्देश्य सफल नहीं  
हो सकेगा ।

अस्थिभग्न के पश्चात् यदि दस बारह दिन का समय बीत चुका हो तो  
मृदुचूर्णी भवन ( *Soft Calus formation* ) की क्रिया प्रारम्भ हो  
गई है, ऐसा चिकित्सक को समझना चाहिये । अतएव इस बात को ध्यान में  
रखते हुए चिकित्सा की तदनुकूल व्यवस्था करनी चाहिये । पुराने पूर्ण भग्नो  
( *Complete Fracture* ) में स्थिरीकरण न हो पाया हो, उनमें विकृत  
संयोजन ( *Malunion* ) या असंयोजन ( *Non union* ) की सम्भावना  
रहती है ।

हेतु—भग्न-कर हेतुओं के सम्बन्ध में इस बात का विचार आवश्यक है कि  
आघात प्रत्यक्षस्वरूप ( *Direct* ) का रहा, या परोक्ष ( *Indirect* )  
क्योंकि इन विशिष्ट स्वरूप के आघातों के परिणामस्वरूप शरीर पर विशेष  
प्रकार के भग्न पाये जाते हैं । प्रत्यक्ष आघात से होनेवाले भग्न कपालास्थियों में,  
नासास्थियों में पैर या हाथ के अंगुल्यस्थियों के मिलते हैं । परोक्ष आघात से  
होनेवाले भग्नो में अक्षकास्थि पशुका, कशेरुक, 'कौलीज' का भग्न प्रभृति पाये  
जाते हैं । ऊपर निर्दिष्ट दो हेतुओं के अतिरिक्त पेशियों की प्रतिक्रिया ( *Muscu-*

काण्ड-भग्न या अस्थि-भग्न का बारह प्रकारों का उल्लेख मिलता है जैसे  
कर्कटक ( *Depressed* ) अश्वकर्ण ( *Oblique* ) चूर्णित ( *Comm-  
nuted* ), पिच्छित ( *Crushed* ), अस्थिच्छलित ( *GreenStick* ),  
काण्ड-भग्न ( *Compete* ), मजानुगत ( *Impacted* ), अतिपातित  
( *Fracture with dislocation* ), वक्र ( *Incomplate* ), छिन्न, पाटित  
( *Subperiosteal* ) स्फुटित ( *Fissured* )

इसी प्रकार सन्धिमुक्त के छः प्रकार बतलाये गये हैं जिनका उल्लेख  
प्रसंगानुसार सन्धि के रोगों में किया जायेगा । ( सु० नि० १५२ ) ।

lar action ) द्वारा भी भग्न की सम्भावना रहती है। जैसे ( Patela ), ( Olecranon ) ( Deltoidtubrosity ) प्रभृति के भग्नो की।

वेग प्रकृति—( Nature of Voilence ) अभिघात के बल या वेग की प्रकृति पर भी भग्न की तीव्रता अथवा तीव्रता अवलम्बित रहती है। जैसे पिच्छित अभिघातों (Crushed injuries) में भग्न पिच्छित (Crushed or comminuted) स्वरूप के होते हैं तथा उसकी तीव्रता अभिघात तथा अस्थि के बल या वेग ( Force ) के ऊपर अवलम्बित होती है। इस प्रकार के अभिघात के परिणामस्वरूप समीपवर्ती धातुओं की क्षति अधिक होती है और रोगी में मर्माभिघात ( Shock ) की अवस्था पाई जाती है।

भग्नध्वनि (Crepitus)—कभी-कभी अभिघात के पश्चात् अस्थि के टूटने से उत्पन्न ध्वनि रोगी को या उस स्थान पर उपस्थित व्यक्तियों को सुनाई पड़ती है। इसका ज्ञान रोगी से वा उसके अभिभावकों से पूछकर कर लेना चाहिये। इस प्रकार का इतिहास मिलने पर भग्न का निदान निश्चित हो जाता है। अस्थि के भग्न होने पर इस प्रकार की ध्वनि सदैव मिलेगी ऐसा कहना असम्भव है। साधारणतया यह ध्वनि पूर्ण तथा पिच्छित ( शाखाओं के भग्न ) में निश्चित रूप से मिलती है, परन्तु मज्जानुगत ( Impacted ) तथा अस्थि छल्लित ( Green stick ) प्रकार के भग्नो की उपस्थिति में उस ध्वनि का इतिहास नहीं मिलता।

स्वकर्मगुणहानि—अंगों की स्वकर्मगुणहानि भग्न के स्थानानुसार भग्न से सम्बन्धित अंग की पाई जायगी। यह शाखाओं के भग्न में स्पष्टतया दृश्यमान रहती है; परन्तु अन्य भग्नो में परीक्षा करने से ज्ञात होती है। पशुका के भग्न में रोगी में श्वास लेने में कष्ट का अनुभव (श्वासकृच्छ) तथा कपालास्थियों के अवनत भग्न ( Depressed ) में बेहोशी पाई जायगी। कशेरुका-भग्न में भग्नस्थान के अनुसार उससे नीचेवाले अंग का घात ( Paralysis ) पाया जायगा।

वैरूप्य ( Deformity ) सभी भग्नो में यह लक्षण पाया जाता है। अस्थिछल्लित ( Subperiosteal Fracture ) या दरारयुक्त भग्न में ( Fissured Fracture ) में यह लक्षण नहीं मिलता। इसकी परीक्षा करने के लिये विपरीत शाखा या भाग को ध्यानपूर्वक निरीक्षण एवं दोनों पार्श्वों की तुलना करनी चाहिये।

शाखाओं के भग्न में यह चिन्ह अधिक स्पष्ट रहता है।

प्रत्येक भग्न में एक अपनी विशेष प्रकार की आकृति हो जाती है जिसको देखकर उस विशिष्ट अस्थि के भग्न का निदान होता है। अक्षकास्थि के भग्न में उस भाग का स्कंध ( कंधा ) नीचे को लटक जायेगा। 'कोलीज' के भग्न में एक विशेष प्रकार की विकृति पाई जाती है जिसे वक्रवैरूप्य ( Dinnerfork deformity ) कहते हैं।

श्वथु या सूजन—सभी प्रकार के भग्नो में सूजन कम या अधिक मात्रा में पाई जाती है। इसका कारण भग्न-स्थान पर उपस्थित रक्तस्राव होता है। जिस स्थान पर रक्तवाहिनियाँ प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं उस स्थान पर हुए भग्न में यह चिन्ह अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट मिलेगा। जैसे संधियों या संधियों के समीपवाले भाग में रक्तवाहिनियों की बहुलता के कारण सूजन अधिक होगी। यह स्थानिक सूजन तत्स्थानगत धमनी या शिरा के अभिघातों में अपेक्षाकृत अधिक मिलेगी। कपालास्थियों के भग्नो में इस प्रकार की सूजन गुरुत्वाकर्षण ( Gravity ) के सिद्धान्त पर तथा गंभीरकला की रचना ( Fascial Plane ) के ऊपर निर्भर रहती है। जैसे पूर्वकपाल-खात ( Anterior Cranial fossa ) के भग्न में सूजन नेत्र विवर ( Orbital fossa ) एवं उसके समीपवर्ती भागों में दिखाई देगी। कपालास्थियों के भग्न में यह सूजन पूरे सिर पर मिलेगी।

त्वक् सवर्णता ( Echyrosis )—यह चिन्ह प्रत्यक्ष आघात के परिणामस्वरूप उत्पन्न भग्न में अधिक व्यक्त रहता है। इसका कारण आघात के परिणामस्वरूप त्वचा-गत रक्तस्राव होता है। इसमें कुछ समय के पश्चात् वर्ण का परिवर्तन भी पाया जाता है।

अस्वाभाविक गति ( Abnormal mobility )—यह लक्षण शाखाओं के पिच्छित या पूर्ण प्रकार के भग्न में विशेषतया स्पष्ट मिलता है। मज्जानुगत या अपूर्ण भग्नो में नहीं पाया जाता।

पूर्ववृत्त—भग्न के रोगी में अस्थियों से सम्बन्धित रोग इसके पूर्व हुआ है या नहीं, इस बात का पूछना आवश्यक होता है। अस्थियों में उपस्थित अर्बुद एवं विद्रधि के कारण भी भग्न हो सकता है जिसे वैकारिक भग्न ( Pathological fracture ) कहते हैं। इस प्रकार के भग्न निम्नलिखित अस्थियों के रोग तथा कुछ अन्य अंगों के रोगों में भी पाये जाते हैं। जैसे अस्थिमंगुरता ( Fragilatus Osseum ), मज्जाबुद ( Myeloma ), उपावटका ग्रन्थि के अर्बुद ( Tumour of Parathyroid ), अस्थि की द्रवग्रन्थि

(Bonecyst) या जीर्ण अस्थिमज्जापाक (Chronic osteomyelitis.)  
शारीरिक परीक्षा—

**सार्वदैहिक**—अस्थिभग्न के रोगियों में सार्वदैहिक परीक्षा करते हुए मर्माभिघात के लक्षण ( Shock Symptoms ) उपस्थित हैं या नहीं इस बात की सर्वप्रथम परीक्षा करनी चाहिये। साधारणतया पिच्छित अभिघात ( Crushed ) के परिणामस्वरूप होनेवाले भग्नों में तथा सत्रण भग्नों में ( Compound Fractures ) में स्थानिक धातुओं के नाश और अत्यधिक रक्तस्राव के परिणामस्वरूप मर्माभिघात के लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस लक्षण की उपस्थिति यदि रोगी में मिले तो सर्वप्रथम उसकी मर्माभिघात की ही चिकित्सा करनी चाहिये।

**रक्तस्राव**—सत्रण भग्नों में भग्नस्थान से कितना रक्तस्राव हुआ है इसे रोगी के लक्षणों से जान सकते हैं। कभी-कभी इस प्रकार के रक्तस्राव के स्थान से भग्न-स्थान भी जाना जा सकता है। जैसे शिरोभिघात के पश्चात् यदि रोगी के कान से रक्तस्राव हो रहा हो तो शंखास्थि ( Portion of the temporal Bone ) भग्न समझना चाहिये। अभिघात के पश्चात् नासा से होनेवाला रक्त-स्राव झुंझरास्थि ( Ethmoid ) के भग्न के परिणाम-स्वरूप पाया जाता है। पूर्व-कपाल खात ( Anterior Fossa ) के भग्न में नेत्र के श्वेत मण्डल के नीचे रक्तस्राव की उपस्थिति मिलेगी ( Sub-Conjunctival Hemorrhage ).

**पूति ( Sepsis )**—सभी प्रकार के सत्रण भग्नों में पूति की आशंका रहती है। घर में या साफ सुथरे स्थानों पर हुए भग्नों की अपेक्षा बाहर सड़कों पर के हुए भग्नों में पूति की सम्भावना अधिक मात्रा में मिलती है।

भग्नस्थान पर पूयोत्पत्ति होने पर भग्न की चिकित्सा में थोड़ा सा अन्तर आ जाता है। ऐसी दशा में सर्वप्रथम भग्न की चिकित्सा की अपेक्षा पूति की चिकित्सा अधिक महत्व रखती है।

भग्नस्थान की परीक्षा के पूर्व सम्पूर्ण शरीर की परीक्षा अभिघात के परिणाम-स्वरूप अन्य अंगों पर होनेवाले परिणामों के निरीक्षण के लिये आवश्यक होती है। पिच्छित अभिघात के फलस्वरूप कभी-कभी उदरस्थ आशयों का विदार संभव है। भग्न के कारण तत्स्थानगत धमनी या वात-नाड़ी पर दबाव पड़ने से जो लक्षण उत्पन्न होते हैं उनके चिन्हों को भी सावधानी से देखना चाहिये। जैसे

ऊर्ध्व बाहु के भग्न में ( Upper Arm fracture ) वहिप्रकोष्ठानाडी ( Radial Nerve ) पर अभिघात पहुँचने से मणिबंध स्रंस ( Radial Palsy ) पाया जाता है। पशुकास्थि के भग्न में फुफ्फुसावृत्ति विदार तथा पशुकान्तरीय रक्तवाहिनियों के अभिघात के कारण रक्तस्राव तथा श्वासकृच्छ्रता पाई जाती है।

**स्थानिक परीक्षा—**

**दर्शन**—स्थानिक परीक्षा करते समय उस स्थान के बंधन एवं कपड़ों को हटाकर दोनों पार्श्वों को सामने रख कर तुलनात्मक दृष्टि से देखना चाहिये।

**सूजन**—सूजन की उपस्थिति रहने पर उसका स्थान, आकार, परिमाण प्रभृति बातों को नोट कर लेना चाहिये। कपालास्थियों के भग्नों में इस प्रकार की सूजन भग्नस्थल से दूर आश्रित भागों ( Dependent parts ) पर पाई जाती है।

**वैरूप्य**—कभी-कभी स्थानिक वैरूप्य अथवा रोगी की अंग-संस्थिति ( Attitudes ) को देखने से ही भग्न का अनुमान हो जाता है। जैसे अक्षक के भग्न में रोगी विकृत पार्श्व के केहुनी को मोड़कर दूसरे हाथ के तलवे से उठाये हुए और गर्दन को विकृत पार्श्व में झुकाकर रखता है। अभिघात के पश्चात् स्कंध में अत्यधिक सूजन होने पर प्रणखंडास्थि की ग्रीवा का भग्न ( Fracture of the Neck of Humerus ) की संभावना रहती है।

शाखाओं में वैरूप्य, भग्न के पश्चात् स्थानिक पेशियों के संकोच के कारण पाया जाता है। इसलिये दोनों पार्श्वों की शाखाओं को तुलनात्मक दृष्टि से देखकर, विकृत पार्श्व लम्बाई में छोटा हुआ है या नहीं ? इसे देखना चाहिये। भग्न-स्थान के ऊपर के चर्म का निरीक्षण उसके वर्ण-परिवर्तन, व्रण की उपस्थिति प्रभृति बातों के लिये करनी चाहिये। भग्न के स्थानिक दबाव के कारण भग्न के ऊपर स्थित चर्म में दो या तीन दिनों के पश्चात् छाले ( Blebs ) दिखलाई पड़ते हैं।

इसके पश्चात् रोगी को उस अंग को हिलाने को कहे और अंग की चलायमानता का निरीक्षण करे। भग्न के पश्चात् उस स्थान की गति में भग्न की तीव्रता के अनुपात से अंतर आ जायेगा।

**स्पर्शन**—स्पर्शन-परीक्षा में सर्वप्रथम भग्न-स्थान के समीपवर्ती प्राकृतिक अस्थि के उभारों का स्पर्शन आवश्यक होता है। पश्चात् इन उभारों की दूसरे पार्श्व के स्वाभाविक अंग के साथ तुलना करनी चाहिये। पुनः अस्थि की पूरी लम्बाई का स्पर्शन सावधानी से करे। इस काल में ( स्पर्शन करते समय ) यदि किसी स्थान पर पीड़नाक्षमता पाई जाय तो उसको भी नोट करे। पीड़नाक्षम स्थान से दूर किसी अन्य भाग पर उस अस्थि को दबाने से पीड़नाक्षम स्थान पर पीड़ा हो तो भग्न का निश्चित निदान हो जाता है।

ऊपर बताये गये स्पर्शन विधियों से यदि कोई विदार या उभरा हुआ स्थान प्रतीत हो तो उस पर ध्यान दे।

**अस्वाभाविक गति तथा भग्नध्वनि**—शाखा के भग्न में उस अंग को एक हाथ से नीचे और दूसरे हाथ से ऊपर को पकड़कर गति कराके ( हिलाकर ) देखे। पूर्ण-भग्न में इस प्रकार की विकृत गति उपस्थित मिलेगी। मज्जानुगत भग्न में पूर्ण भग्न होते हुए भी इस प्रकार की गति नहीं पाई जायेगी, इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है। यदि अन्य प्रकार से भग्न का निदान हो गया हो तो इस विधि से परीक्षा न करे। क्योंकि इस प्रकार की अस्वाभाविक गति की परीक्षा करते हुए उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं। यही नियम भग्नध्वनि ( Crepitus ) की परीक्षा के सम्बन्ध में भी लागू है।

अस्वाभाविक गति के लिये ऊपर निर्दिष्ट विधि से परीक्षा करते समय एक प्रकार का शब्द उत्पन्न होता है जिसका अनुभव स्पर्शन तथा श्रवण के द्वारा हो सकता है। दूसरे शब्दों में वह अनुभूत भी होती है और सुनी भी जा सकती है। परन्तु जैसा कि पहले कहा गया है, यदि अन्य प्रकार से निदान हो गया हो, तो इस परीक्षा को न करे।

**मापन ( Measurement )**—अंग ( अस्थि ) को नापने के पूर्व यह जानने की आवश्यकता रहती है कि उस अंग में पूर्व से ही तो उसका छोटापन नहीं रहा? क्योंकि कई बार पूर्व अभिघात के परिणामस्वरूप या जन्मजात इस प्रकार का छोटापन अंगों में पाया जाता है। इसलिये नापने के पूर्व रोगी से इस बात की जानकारी कर लेनी आवश्यक होती है। अस्थिकामापन दो स्थिर बिन्दुओं के बीच में ( एक स्थिर बिन्दु से दूसरे स्थिर बिन्दु Fixed points

तक ) करना होता है और इसकी तुलना दूसरे पार्श्व की प्राकृत शाखा के मापन से करनी चाहिये। जिससे विकृत अंग कितना छोटा हुआ है इस बात का पता लग जायेगा। इस प्रकार मापन करते समय प्राकृत अंग को विकृत अंग के ही समान स्थिति ( Position ) में ही रखना चाहिये।

**उपद्रव**—भग्न के पश्चात् तात्कालिक स्थानिक उपद्रवों की उपस्थिति के लिये परीक्षा करना आवश्यक होता है। ऐसे उपद्रव तत्स्थानगत त्वकू, सिरा, पेशी, धमनी, नाडी प्रभृति के अभिघात के कारण पाये जाते हैं। अस्थि के किसी आशय के समीप होनेपर भग्न के कारण उन आशयों को क्षति पहुँच सकती है। कूर्परसन्धि के समीप होने वाले भग्न में दबाव के फलस्वरूप वाही या धमनी ( Brachial Artery ) के रक्त-संचार में बाधा उत्पन्न हो सकती है; जिसका निदान उस हाथ की नाड़ी की परीक्षा करने से ( नाडी स्पन्दन के अभावों में ) आसानी से हो सकता है। वातनाडियों के घात में उनसे सम्बन्धित पेशियाँ शिथिल हो जाती हैं, एवं उस नाड़ी से पोषितस्थान पर स्पर्शज्ञान का अभाव हो जाता है। भग्नस्थि ( Pubic Bone ) के भग्न में मूत्र-प्रसेक विदार ( Rupture of Urethra ); तथा पशुका के भग्न में प्लीहा अथवा यकृत-विदार की सम्भावना रहती है।

अस्थि-भग्न के उपद्रव :—

- अ. सार्वदैहिक (१) मर्मोभिघात, (२) रक्तस्राव, (३) आगन्तुभय अभिघातजन्य अशोफज-ज्वर ( Aseptic Traumatic fever ), (४) ( Hypostatic Pneumonia ), (५) सकम्प प्रलाप ( Delirium Tremens ), (६) मज्जा की अन्तःशल्यता ( Fat Embolism ), (७) शय्यात्रण।
- ब. स्थानिक (१) पूति ( Sepsis ), (२) सन्धिभग्न ( Dislocations ) (३) शिराधमनी तथा वातनाडियों की क्षति, (४) आशयों की क्षति, (५) पेशियों की क्षति, (६) त्वचा की स्थानिक सूजन, (७) कर्दम ( Gangrene )
- स. विलम्बित उपद्रव (१) स्पांदनयुक्त रक्तसंचय ( Pulsating Haematoma ) (२) धमनी विस्फार ( Aneurysm ), (३) वात नाडियों की क्षति से अंगघात, (४) उपसर्ग के कारण अस्थिमज्जापाक-

विशेष परीक्षाएँ :—

क्ष-किरण—भ्रमनिदान के लिये क्ष-किरण-परीक्षा करते समय चित्रण का दो दिशाओं में करना अत्यन्त आवश्यक होता है। १. सामने से ( Antero Posterior ) तथा २. पार्श्व से ( Lateral )।

यदि भ्रम वैकारिक प्रकार ( Pathological ) का हो, तो उसके कारण का पता लगाना चाहिये। कभी-कभी कैंसर के द्विबुद्धों की उपस्थिति अस्थियों में होने पर भ्रम की सम्भावना रहती है। इस प्रकार के भ्रमों के मिलने पर प्राथमिक या आदि कैंसर कहाँ का है? इस बात का पता लगा लेना चाहिये। निम्नलिखित पाँच अंगों कैंसर अस्थियों में द्विबुद्ध उत्पन्न करते हैं :—

१. अवटुका २. स्तन ३. फुफ्फुस ४. वृक्क ५. छीला।

Osteomyelitis ), ( ५ ) दाखकघात ( Crutch Palsy ), ( ६ ) वोल्कमैन रक्ताल्पतायुक्त संकोच ( Volkmann's Ischimic contracture ), ( ७ ) पेश्यन्तरगत अस्थिमवन ( Myositis ossificans ), ( ८ ) अभिघातज मांसार्बुद ( Traumatic sarcoma ), ( ९ ) संधिजाड्य ( Ankylosis ), ( १० ) सपूय सन्धिशोथ ( Septic Arthritis ), ( ११ ) असंयोजन ( Non union ) ( १२ ) विलम्बित संयोजन ( Delayed union ), ( १३ ) विकृत संयोजन ( Mal. Union ) तथा ( १४ ) विपरीत संयोजन ( Cross union ), तथा ( १५ ) सौत्र संयोजन ( Fibrous union ).

## षोडश योजना

अस्थि के रोग एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार

आधार

इतिहास—

वर्तमान दशा—

अवधि—प्रारम्भिक अभिघात ( Initial injury )

पीडा— आत्मलिङ्ग ( Character )

तीव्रता

रात्रि में या दिन में

स्पर्शनाक्षम स्थान

जाड़ा लगना ( Rigor )

ज्वर

सूजन

नाडी व्रण ( Sinuses )

उस विभाग की सन्धि की चलायमानता एवं पीडा के साथ उसका सम्बन्ध।

पूर्ववृत्त—बीमारी ( Illness )

तीव्र ज्वर ( लोमपाक, संततज्वर ( Typhoid ), फुफ्फुसपाक आदि )

जीर्ण रोग ( क्षय एवं फिरंग )

## द्वैहिक-परीक्षा—

सार्वद्वैहिक—पूतिकेन्द्र की उपस्थिति ( Signs of sepsis )

( गला, मुख, कर्ण, त्वचा पर )

फिरंग

क्षय

घातक अर्बुद

स्थानिक—सदैव दोनों पार्श्वों की तुलना करना

दर्शन : उत्सेध—परिणाम

आकार

स्थिति

पृष्ठतल

स्पर्दन ( Pulsation )

सन्धि के साथ उसका सम्बन्ध ।

अस्थि के विभिन्न भागों के साथ उसका

सम्बन्ध ।

त्वचा—लालिमा ( Redness )

शिराजाल ( Dilated veins )

नाडीव्रण तथा व्रण—स्थिति

स्त्राव

समीपवर्ती सन्धि की स्थिति तथा दन्तव  
के परिणाम ।

मांसक्षय—

( Wasting of muscles )

स्पर्शन ( Palpation )—ताप

स्पर्शनाक्षमता

पीडनाक्षमता

सूजन

विकृत अस्थि की सीमा रेखा सूजन पर

ध्यान दें ।

सूजन की उपस्थिति हो तो उसका

गठन

पृष्ठतल

किनारे, चलायमानता

सम्बन्ध—निम्न अङ्गों से

अस्थि

सन्धि

रक्तवाहिनियाँ

पेशि तथा कण्डरावों से ( Muscles  
Tendons ) लसीकाग्रन्थियों की परीक्षा ।

माप ( Measurement )—परिधि या

घेरा ( Circumference ) लम्बाई

अंगुलिताडन तथा श्रवण

विशेष परीक्षाएँ—

(१) रक्त, (२) मूत्र, (३) स्थानिक स्त्राव की  
तृणान्वीय परीक्षा, (४) स्थानिक घातु की अणुवी  
क्षणात्मक परीक्षा, (५) क्ष-किरण-परीक्षा ( अस्थि  
तथा फुफ्फुसों की ) ।अस्थियों ( विशेषतः लम्बी अस्थियों ) के विविध  
रोग एवं तत्सम्बन्धी विशेष विचार

Diseases of Bone ( Specially long Bones );

Special feature

विस्तार

इतिवृत्त—

वर्तमान दशा—

अवधि—वर्तमान रोग की अवधि का पता लगाने से निदान में सरलता  
हो सकती है । अस्थि के रोगों में अवधि काल छोटा होना तीव्रता का सूचक  
है ; अस्थियों के सामान्य अर्बुदों में अवधिकाल अत्यन्त दीर्घ पाया जाता है  
( अस्थ्युर्बुद Osteoma, तरुणास्थ्युर्बुद Chondroma ) । शरीर सर्व-

साधारण रोग जैसे क्षय, फिरंग प्रभृति के परिणामस्वरूप होने वाले अस्थि के रोगों में भी अवधि का काल लम्बा पाया जाता है।

आयु—बाल्यावस्था में अस्थियों में फ्रैक्चर ( Rickets ) के परिणामस्वरूप होने वाले विविध विकार देखे जाते हैं। तीव्र अस्थिमज्जा पाक ( Acute osteomyelitis ) यह विशेष करके बालकों का ही रोग है। अस्थिक्षय ( T.B. of Bones ) यह युवावस्था में अधिक पाया जाता है। कभी-कभी युवावस्था में भी अस्थियों के घातक अर्बुद मिल सकते हैं इस बात को ध्यान में रखना चाहिये। जैसे अस्थिजात मांसाबुद ( Osteogenic Sarcoma )। साधारणतया चालीस वर्ष की आयु के पश्चात् अस्थियों में इतर स्थानों में स्थित घातक अर्बुदों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले द्विबुदों की उपस्थिति पाई जाती है। अस्थियों में होने वाले द्विबुद बहुधा निम्नलिखित स्थानों के प्राथमिक कैंसर के उपद्रवस्वरूप में पाये जाते हैं।

१. अण्डकान्ति ( Thyroid ) कैंसर।
२. स्तनगत कैंसर ( Breast )
३. श्वसनिकागत कैंसर ( Bronchus )
४. वृक्कगत कैंसर ( Kidney )
५. धोलागत कैंसर ( Prostate )

आघात का वृत्त—प्रायः अस्सी प्रतिशत अस्थिरोगों में किसी न किसी प्रकार के आघात का इतिहास मिलता है जिससे वर्तमान दशा का प्रत्यक्ष या परोक्ष ( Direct or indirect ) सम्बन्ध लगाया जा सकता है। रोगी में आघात के पश्चात् अस्थि में स्थानिक पीडा, तीव्र शोथ और उच्च तापक्रम की उपस्थिति का पाया जाना तीव्र अस्थिमज्जापाक का विशेष लक्षण है। अस्थि के क्षय रोगों में भी आघात का इतिहास मिलता है, इस बात को ध्यान में रखना चाहिये।

पीडा—के विषय में उसका आत्मलिङ्ग, तीव्रता, वह दिन में अधिक होती है या रात्रि में। साथ ही स्पर्शान्द्रम-स्थान ( Tender spot ) का भी पता लगाना चाहिये।

तीव्र अस्थि मज्जापाक में रोगी को अस्थि में भी तनाव तथा टपकनयुक्त पीडा निरन्तर रहती है। रोगी के उस अंगको हिलाने पर यह पीडा बढ़ जाती है। पीडा की तीव्रता विशेष रूपसे उपसर्ग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं की तीव्रता

तथा विकार के प्रसार के ऊपर निर्भर रहती है। रात्रि में पीडा की तीव्रता विशेषतः फिरंगज अस्थि रोगों में पाई जाती है। शोथ की उपस्थिति होने पर रोगी स्पर्शान्द्रम-स्थान को अंगुलि द्वारा बता सकता है। विकृति का स्थान संधियों के समीप होने पर कभी-कभी पीडा संधियों में संवहित होकर उस संधिको अप्रत्यक्ष रूप से कार्यहीन कर देती है जिससे संधि के रोगों का भ्रम उत्पन्न हो सकता है। रोगी से यह पूछ कर पता लगाना चाहिये कि उत्सेध और पीडा का प्रारंभ साथ ही साथ हुआ या आगे-पीछे। क्यों कि कई अर्बुदों में उत्सेध के पूर्व ही पीडा रहती है बाद में उत्सेध व्यक्त होता है। इसके विपरीत कई अर्बुदों में उत्सेध पहले उत्पन्न होता है और उनमें पीडा का प्रारंभ कई वर्षों के पश्चात् होता है। जैसे अस्थिजात मांसाबुदों ( Osteogenic Sarcoma ) में पीडा उत्सेध के पूर्वसे ही रहती है, तथा ( Osteoclasoma ) में उत्सेध के उत्पन्न होने के कई वर्षों के बाद पीडा प्रारंभ होती है। तीव्र अस्थिशोथों में पीडा और उत्सेध दोनों साथ ही साथ प्रारंभ होते हैं।

इसके पश्चात् रोगी से ज्वर, शीत, स्थानिक सूजन तथा नाडीवृत्त के विषय में पूछना चाहिये। साथ ही रोगी से विकृत अस्थि से सम्बन्धित संधियों की चलायमानता एवं उनमें पीडा की उपस्थिति के सम्बन्ध में भी पूछना आवश्यक होता है। लम्बी अस्थियों में विकृति के संधियों के समीप होने पर इस प्रकार का वृत्त मिलना संभव है।

पूर्ववृत्त—पूर्ववर्ती रोगों का इतिहास लेते समय विशेषतः विषम ज्वर, क्षय, फिरंग, फुफ्फुस पाक ( Pneumonia ) लोम पाक ( Furunculosis ), रोमान्तिका ( Measels ) प्रभृति रोगों के विषय में पूछना चाहिये। अस्थिमज्जापाक बहुधा इस प्रकार की जीर्ण व्याधियों के उपद्रवस्वरूप में हो सकता है इस बात को ध्यान में रखें।

### दैहिकपरीक्षा—

सार्व दैहिक—इस परीक्षा में विशेषतः गला मुख, तथा चर्म की परीक्षा प्राथमिक फोकस ( Primary focus ) के उपस्थिति के लिये करना आवश्यक होता है। विशेषतः उपावटुका-ग्रन्थि ( Parathyroid ) अर्बुदों के लिये गले की परीक्षा करनी चाहिये। इसी प्रकार क्षय तथा फिरंग के लक्षणों एवं चिन्हों की उपस्थिति के लिये सम्पूर्ण स्थानों की सार्वदैहिक परीक्षा कर लेनी चाहिये। क्षय के प्राथमिक केन्द्र की उपस्थिति देखने के लिये वक्ष की

परीक्षा ध्यानपूर्वक करनी चाहिये। क्वचित्, अस्थियों के द्विबुद् (Metastasis of osteogenic sarcoma) फुफ्फुस में पाये जा सकते हैं। जिनके परिणाम स्वरूप रक्तवमन की संभावना रहती है। नेत्र की परीक्षा से भी क्वचित् कुछ अस्थि रोगों का निदान संभव है। जैसे (Generalised osteitis fibrosa) का नेत्र में श्वेत मण्डल (Sclera) नीलाभ (Blue sclera) हो जाता है।

#### स्थानिक परीक्षा—

**दर्शन**—दर्शन-परीक्षा सदैव दोनों पार्श्व के अंगों की तुलना करते हुए करनी चाहिये। इस परीक्षाको करते समय उभार या उत्सेध की उपस्थिति होने पर उसका परिमाण (Size) आकार (Shape) स्थिति (Situation) पृष्ठतल (Surface) स्पंदन (Pulsation) प्रभृति बातों को देखे। स्थान का निर्देश करते समय वह अस्थिके (Epiphysis) (Metaphysis) या (Diaphysis) के किस भाग में है इस बात का निर्देश करना चाहिये।<sup>१</sup> तदनन्तर उसके आकार और परिमाण का विचार भी अपेक्षित है। ग्लोबुलर (Globular) उभार अर्बुदों में, विस्तृत (Diffuse) आकार उपसर्गों (Infections) में या सवृन्त उभार (Pedunculated) अस्थि के किसी अस्वाभाविक उत्थान (Exostosis) में पाया जाता है। तदनन्तर उत्सेध के पृष्ठतल का निरीक्षण करे कि वह चिकना या गाँठदार (Lobular) या शिराजालयुक्त है। स्पंदन विशेषतः अस्थिमांसाबुद् या अस्थिगत शिराजाताबुद् (Bone Haemangioma) में मिलता है।

तत्पश्चात् ऊपरी चर्मका निरीक्षण शोथ के लक्षण की उपस्थिति के लिये करे। अस्थिजात मांसाबुद् में ऊपरी चर्म तनावयुक्त एवं रक्ताधिक्य के कारण लालिमा

#### अस्थि के विभिन्न भागों में होने वाले रोग।

1. Epiphysis :— Epiphysitis, Osteoclastoma, Chondroma

Metaphysis :— Osteomyelitis Broadies Abscess, Tuberculosis, Osteoma, Chondroma, Osteal, Periosteal and Endosteal Sarcomas, Cysts & Haemangioma of the Bone.

Diaphysis :— Syphilis, Malignant secondary Carcinoma, Osteomyelitis.

लिये हुए रहता है और उसका पृष्ठ शिराजालयुक्त पाया जाता है। त्वचा के ऊपर व्रण या नाडी व्रणों के मिलने पर उनकी परीक्षा उनकी स्थिति और सावोंका निर्देश करते हुए व्रण-परीक्षा विधियों से करे। विकृत स्थान से सम्बन्धित पेशियों की परीक्षा उनके शोष (Atrophy) के लिये करे। समीपवर्ती संधियों में यदि कोई विरूपता (Deformity) हो तो उसे भी नोट कर लेना चाहिये। साथही उत्सेध के दबाव के परिणामस्वरूप होने वाले लक्षणों (Pressure Effects) को भी ध्यान में रखना चाहिये। जैसे उत्सेध से दूरवर्ती स्थान की सूजन अथवा वातनाडियों या रक्तवाहिनियों के दबाव के कारण उत्पन्न चिन्हों को भी देखना चाहिये।

**स्पर्शन**—सर्वप्रथम स्पर्शन परीक्षा से स्थानिक स्पर्शानामता, सूजन, स्थानिक ताप आदि बातों को देखे। उत्सेध की उपस्थिति होने पर उसका स्थान, सीमा, गठन, पृष्ठतल, किनारे तथा उसका अस्थि, संधि और समीपवर्ती धातुओं के साथ सम्बन्ध का निश्चय करना चाहिये। शोथके लक्षण तीव्र अस्थि-मज्जा पाकमें मिलते हैं। यह भी ध्यान में रखे कि अस्थिजात मांसाबुद् भी स्थानिक रक्ताधिक्य के परिणामस्वरूप स्पर्शन परीक्षा में उष्ण प्रतीत होगा। शोथजन्य उभार की सीमा अस्पष्ट (Diffuse outline) रहती है। अर्बुदों में यह सीमा निश्चित एवं एक स्थान विशेष पर सीमित मिलेगी, उत्सेध के गठन की कोटि का लिखना (Degree of Consistency) भी आवश्यक है। मांसाबुद् (Sarcoma) अस्थि का अर्बुद् होते हुए भी मृदु एवं लचकीला (Soft & Elastic) रहता है, परन्तु अस्थियों के अन्य अर्बुद् गठन में अस्थि-सदृश (Bony hard) होते हैं। गठन सम्पूर्ण अर्बुद् में एक ही कोटि का है या भिन्न-भिन्न यह भी देखना आवश्यक है। एक ही अर्बुद् में भिन्न-भिन्न प्रकार का गठन विभिन्न स्थानों पर मिलना अस्थिजात मांसाबुद् का विशिष्ट लक्षण है।

(Osteoclastoma) में स्पर्शन परीक्षा द्वारा गठन का अनुभव करते समय अण्डे के छिड़के के टूटने की प्रतीति होती है। (Egg Shell Crackling).

गठन की परीक्षा करते समय दबाने से यदि उसके आकार या विस्तार में परिवर्तन हो अर्थात् वह छोटा हो जाय तो अस्थिजन्य शिराजाताबुद् (Bone Haemangioma) का निदान होता है। ऐसी अवस्था में हाथ को हटा

लेने पर वह तुरन्त ही भर जाता है और उसमें स्पन्दन की भी प्रतीति होती है । अस्थ्यबुद् स्थिर होते हैं, परन्तु अस्थ्यबुद् के कारण यदि वैकारिक भंग ( Pathological Fracture ) हुआ हो तो आंशिक चलायमानता पाई जा सकती है ।

उत्सेध का समीपवर्ती वातनाडियों, रक्तवाहिनियों और पेशियों पर हुए प्रभावों का तथा उनके साथ पाये जानेवाले सम्बन्ध का भी स्पर्शन परीक्षा द्वारा निर्णय कर लेना चाहिये । इसके पश्चात् शाखा से सम्बन्धित लसीकाग्रन्थियों की टनकी उपस्थिति या वृद्धि के लिये परीक्षा कर लेनी चाहिये ।

**अंगुलिताडन एवं श्रवण**—इन परीक्षाओं का क्षेत्र अस्थियों के रोगों में सीमित होने पर कुछ रोगों में इन परीक्षाओं द्वारा अत्यन्त महत्व की बातों का पता लग सकता है । अंगुलिताडन ऐसी ही अस्थियों में संभव है जो उत्तान तथा त्वचा के सम्पर्क में हों ( Subcutaneous ) । यह परीक्षा फिरिंग तथा अस्थि-विद्रधि में अस्थ्यात्मक पाई जाती है । अर्थात् अंगुलिताडन से रोगी पीड़ा का अनुभव करता है । अस्थिजातमांसाबुद् ( Osteogenic Sarcoma ) तथा अस्थिगत शिराजाबुद् ( Bone Haemangioma ) में श्रवण परीक्षा से रक्ताधिक्य के कारण मर्मरध्वनि सुनाई पड़ती है ।

**मापन**—नापने की विधि का उल्लेख पूर्व के अध्याय में आ चुका है । इसका उल्लेख दोनों पार्श्व के अंगों की तुलना करते हुए करना चाहिये । मापन करते हुए अस्थि की लम्बाई तथा उसके घेरे ( परिधि ) दोनों का माप करके उल्लेख करना चाहिये । परिधि का समय-समय पर मापन करने से अबुद् की वृद्धि की प्रगति का ज्ञान हो सकता है ।

### विशेष परीक्षाएँ—

- रक्त की—(१) सकल सापेक्षश्वेत कायाणु गणन के लिये ।  
 (२) कान तथा वाशरमैन की कसौटी ।  
 (३) रक्तकणों की अवसादन ( Sedimentation ) गति ।  
 (४) रक्तगत चूर्णात्सुस्तर ( Blood Calcium Level ) के लिये करे ।

मूत्र की—सामान्य तथा विशेषतः

“वेनिसजोन प्रोटीन” के लिये । ( इसकी मूत्र में उपस्थिति बहुमज्जाबुद् ( Multiple Myeloma ) में पाई जाती है ।

साव की—अणुवीक्षणालम्क परीक्षा हेतुभूत जीवाणुओं के लिये करनी चाहिये ।

स्थानिक धातु—सूची वेध द्वारा साव को निकाल कर ( Aspiration ) अणुवीक्षणालम्क परीक्षा करनी चाहिये ।

### ज्ञाकरण परीक्षा—

**सामान्य**—साधारणतया निम्नलिखित बातों को ध्यान से देखना चाहिये ।

१—अस्थियों में ( Metaphysis Diaphysis Epiphysis ) के स्थानों में विकार की उपस्थिति । यदि उपस्थिति हो तो वह विकृति अस्थ्या-वृत्ति ( Perisoteal ), अस्थि ( Osteal ), अन्तरस्थि ( Endosteal ) या मज्जा ( Medullarycavity ) से सम्बन्धित है इसे देखें ।

२—अस्थि की सामान्य घनता ( Density )—प्राकृत है या प्राकृत से अधिक ( Increased Density ) या प्राकृत से कम ( Rarefaction ) इनकी उपस्थिति होने पर यह एक स्थान पर सीमित है या फैला हुआ ( Localised or Diffuse ) यह भी देखें ।

३—नव अस्थिजनन का प्रमाण ( Evidence of New Bone-formation )

४—अस्थि की बाह्य रेखा में विदार ( Solution of Continuity of Bony margin due to perforation )

५—अस्थि-मज्जा विवर—या मज्जनलिका का एकदेशीय विस्फार की उपस्थिति का निरीक्षण करे । साथ ही यदि चित्र में निम्न मधुमक्खी के छूाते के समान (Honey Comb) या साबुन के फेन की तरह ( Soap Bubble appearance ) की छूाया की उपस्थिति का भी ध्यानपूर्वक निरीक्षण करे ।

विशेष—नाडीत्रणों की उपस्थिति होने पर उसके मार्ग में जम्बुकी तैल ( Iodised oil ) नामक क्षिकरणाद्यमेद्रव्य का प्रवेश करके नाडी की गति का विनिश्चय करना चाहिये ।

*(Faint bleed-through text from the reverse side of the page, including words like 'Metaphysis', 'Density', and 'formation')*

